CC0. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust eGangotri

संस्कृत भाषा एवं साहित्य का संक्षिप्त इतिहास

6-50

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

संस्कृत भाषा एवं साहित्य का संक्षिप्त इतिहास

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

संस्कृत भाषा एवं साहित्य का संक्षिप्त इतिहास

(कक्षा XI और XII के लिए संस्कृत की पाठ्यपुस्तक)

लेखक
डा० टी० जी० माईणकर
आचार्य एवं अध्यक्ष,
संस्कृत विभाग,
बम्बई विश्वविद्यालय, बम्बई

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अक्तूबर 1978
आश्विन 1900

P.D. 9 T.

© राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, 1978

मूल्य : [illegible]

प्रकाशन विभाग में श्री विनोद कुमार पंडित, सचिव, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, श्री अरविन्द मार्ग, नई दिल्ली 110016 द्वारा प्रकाशित तथा ग्रन्थ भारती प्रेस, शाहदरा, दिल्ली 110032 में मुद्रित।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रस्तावना

प्रस्तुत पुस्तक राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् के सामाजिक विज्ञान एवं मानविकी शिक्षा विभाग के तत्वावधान में चल रही संस्कृत पाठ्य-पुस्तक-विकास-परियोजना के अन्तर्गत नवीन शिक्षा पद्धति के अनुसार कक्षा XI-XII के लिए प्रो॰ टी॰ जी॰ माईणकर, संस्कृत विभागाध्यक्ष, बम्बई विश्वविद्यालय द्वारा लिखित A Concise History of Sanskrit Language and Literature का हिन्दी रूपान्तर है। विद्वान लेखक ने इसमें विशाल संस्कृत वाङ्मय की सभी विधाओं के प्रमुख साहित्य का संक्षिप्त एवं सारगर्भित परिचय प्रस्तुत करने का प्रशंसनीय प्रयास किया है। आशा है, न केवल छात्रों के लिए अपितु शिक्षकों एवं संस्कृत वाङ्मय के जिज्ञासु सामान्य पाठकों के लिए भी यह पुस्तक परम उपयोगी सिद्ध होगी।

परिषद् के अनुरोध पर प्रो॰ माईणकर ने इस पुस्तक को बड़े ही मनोयोग से लिखा है, जिसके लिए मैं उनका अत्यन्त आभारी हूँ। मूल अंग्रेजी पाण्डुलिपि का हिन्दी अनुवाद श्री बी॰ डी॰ तिवारी प्रभृति जिन विद्वानों ने तत्परता से किया है, वे धन्यवाद के पात्र हैं। अपने व्यस्त कार्यक्रम के बावजूद पुस्तक के सुसम्पादित होने में सहयोग देने के लिए संस्कृत सम्पादक मण्डल के संयोजक डा॰ मा॰ गो॰ चतुर्वेदी का मैं आभारी हूँ। पाण्डुलिपि को बड़े ही मनोयोग से अल्पावधि में संशोधित एवं सम्पादित कर उसकी मुद्रण प्रतिलिपि (Press Copy) तैयार करने तथा प्रूफ संशोधन आदि कार्यों के लिए विभाग के नवागत रीडर (संस्कृत) डा॰ कमलाकान्त मिश्र धन्यवाद के पात्र हैं। पुस्तक को वर्तमान रूप देने में जिन विषय-विशेषज्ञों एवं संस्कृत शिक्षकों का अनुभवपूर्ण परामर्श एवं सहयोग मिला है, उनके प्रति परिषद् अपनी हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करती है। पुस्तक को और अधिक छात्रोपयोगी बनाने की दिशा में अनुभवी शिक्षकों एवं विद्वानों के परामर्शों का हम सदैव स्वागत करेंगे।

शिवकुमार मित्र
निदेशक
राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्

नई दिल्ली
जुलाई 1978

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आमुख

संस्कृत भाषा एवं साहित्य के इतिहास पर विन्टरनिट्ज़, मैक्डोनेल, कीथ एवं एस० के० डे जैसे वरिष्ठ विद्वानों द्वारा रचित उत्कृष्ट पुस्तकें हैं और इनमें से कुछ का भारतीय विद्वानों ने अनुवाद भी किया है। वेद, उपनिषद्, पुराण, संस्कृत नाटक आदि से भी सम्बद्ध उत्कृष्ट ग्रन्थ हैं। तथापि इन सभी पहलुओं के एकत्र उल्लेख से युक्त संस्कृत साहित्य के संक्षिप्त इतिहास की आवश्यकता बहुत समय से अनुभव की जा रही थी। यह ग्रन्थ इस आवश्यकता की कुछ मात्रा में पूर्ति करने के लिए किया गया एक विनम्र प्रयास है। चूंकि यह ग्रन्थ संस्कृत साहित्य के प्रारम्भिक छात्रों के लिए है, अतः मैंने विवादास्पद विषयों तथा जटिल समस्याओं को जानबूझ कर नहीं उठाया है, क्योंकि इनकी आवश्यकता साहित्य के केवल उच्चस्तरीय छात्रों को ही पड़ती है। जिन पाठकों को ऐसे विचार-विमर्शों में रुचि हो, वे उन पुस्तकों का अध्ययन करें, जो ऐसी समस्याओं पर विचार करती हैं। यदि यह पुस्तक पाठकों के लिए उपयोगी सिद्ध हो सके और संस्कृत साहित्य में उनकी रुचि जागृत करने में समर्थ हो सके, तो मुझे बड़ा ही हर्ष होगा।

मैं उन सभी महान् पूर्ववर्ती लेखकों का ऋणी हूँ जिनकी कृतियों से मुझे इस कार्य में सहायता मिली है और इससे मेरा कार्य सरल हो गया है। मेरे इस कार्य में डा० (श्रीमती) नलिनी चापेकर ने मेरी बहुत अधिक सहायता की है, जिन्हें मैं सचमुच पर्याप्त धन्यवाद नहीं दे सकता। श्री रा० य० लेले ने इस पुस्तक के टंक-लेखन में सहयोग दिया है, इसलिए मैं उनका भी आभारी हूँ। इस पुस्तक को प्रस्तुत रूप प्रदान करने में राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् के सामाजिक विज्ञान एवं मानविकी शिक्षा विभाग के डा० माणिक लाल चतुर्वेदी, रीडर, (भाषा विज्ञान) एवं डा० कमलाकान्त मिश्र, रीडर (संस्कृत) के सहयोग के लिए मैं आभारी हूँ।

टी० जी० माईणकर
आचार्य एवं अध्यक्ष, संस्कृत विभाग
बम्बई विश्वविद्यालय, बम्बई

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विषय-सूची

	पृष्ठाङ्क
प्रस्तावना	V
आमुख	VII
I. संस्कृत भाषा	3
II. वैदिक साहित्य	
II.1 वैदिक साहित्य	9
1. ऋग्वेद	13
2. अथर्ववेद	25
3. यजुर्वेद	29
4. सामवेद	32
5. ब्राह्मण ग्रंथ	34
6. आरण्यक	38
7. उपनिषद्	40
8. सूत्र साहित्य	43
लौकिक साहित्य	
III.1 महाकाव्य तथा पुराण	47
1. महाभारत	48
2. रामायण	53
3. पुराण	57
III.2 नीतिकथा साहित्य	60
1. पञ्चतंत्र	60

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

2. हितोपदेश 63
3. बृहत्कथा 64
4. बृहत्कथाश्लोकसंग्रह 65
5. कश्मीरी बृहत्कथा 66
6. बृहत्कथामञ्जरी 66
7. कथासरित्सागर 67
8. वेतालपञ्चविंशतिका 68
9. शुकसप्तति 68
10. सिंहासनद्वात्रिंशतिका 69

III.3 गद्य आख्यान 70

1. दशकुमारचरित 70
2. वासवदत्ता 72
3. हर्षचरित 74
4. कादम्बरी 76
5. वाण का अनुकरण 78
6. चम्पू 78

III.4 ऐतिहासिक काव्य 79

1. प्रारंभिक ग्रन्थ 81
2. विक्रमाङ्कदेवचरितम् 82
3. राजतरङ्गिणी 83
4. अन्य ऐतिहासिक ग्रन्थ 86

III.5 अलङ्कृत काव्य 87

1. बुद्धचरित एवं सौन्दरनन्द 89
2. बौद्ध संस्कृत काव्य 90
3. ऋतुसंहार 92
4. कुमारसम्भव 93
5. रघुवंश 94
6. मेघदूत 95
7. किरातार्जुनीय 96
8. रावणवध 97
9. जानकीहरण 98

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

10. शिशुपालवध 98
11. नैषधचरित 99
12. अन्य काव्य 100

III.6 गीतिकाव्य, सुभाषित एवं अन्य काव्य संग्रह 103

1. श्रृङ्गार, वैराग्य एवं नीति शतक 103
2. अमरुशतक 104
3. चौरपञ्चाशिका 105
4. गीतगोविन्द 106
5. सूर्यशतक 107
6. लघु काव्य 108
7. काव्यसंग्रह एवं स्तोत्र 108
8. प्राकृत काव्य 109
9. नीति काव्य 110
10. उपदेशपरक काव्य 110

III.7 नाटक 112

1. शारिपुत्रप्रकरण 112
2. भास-नाटक 113
3. मृच्छकटिक 115
4. मालविकाग्निमित्र 117
5. विक्रमोर्वशीय 117
6. अभिज्ञानशाकुन्तल 118
7. चतुर्भाणी 119
8. मत्तविलास 120
9. कुन्दमाला 120
10. वेणीसंहार 121
11. मुद्राराक्षस 122
12. देवीचन्द्रगुप्त 123
13. अभिसारिकावञ्चितक 124
14. महावीरचरित 124
15. मालतीमाधव 125
16. उत्तररामचरित 126
17. प्रियदर्शिका एवं रत्नावली 127

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

18. नागानन्द	128
19. अनर्घराघव	128
20. बालरामायण एवं विद्धशालभञ्जिका	128
21. तापसवत्सराजचरित	129
22. प्रकीर्ण नाटक	130
IV. शास्त्रीय साहित्य	135
1. कोशशास्त्र	137
2. छन्दःशास्त्र	139
3. व्याकरणशास्त्र	141
1. अष्टाध्यायी	141
2. वार्तिक एवं महाभाष्य	142
3. अन्य ग्रन्थ	143
4. अन्य सम्प्रदाय	144
5. प्राकृत व्याकरण	145
IV.4 धर्मशास्त्र	146
1. मनुस्मृति	147
2. याज्ञवल्क्यस्मृति	148
3. अन्य स्मृतिग्रन्थ	148
4. निबन्ध	149
IV.5 अर्थशास्त्र, नीतिशास्त्र	151
1. अर्थशास्त्र	152
2. नीतिशास्त्र	154
3. अन्य शास्त्र	155
IV.6 कामशास्त्र	157
1. कामसूत्र	157
2. अन्य ग्रन्थ	158
IV.7 मोक्षशास्त्र	159
1. पूर्वमीमांसा	160
2. उत्तरमीमांसा	161

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

3. न्याय 163
4. वैशेषिक 164
5. साङ्ख्य 164
6. योग 165
7. पाञ्चरात्र 165
8. चार्वाक 166
9. बौद्ध धर्म 166
10. जैन धर्म 167

IV.8 वैद्यकशास्त्र 168

1. चरक संहिता 169
2. सुश्रुत संहिता एवं भेड संहिता 169
3. अष्टाङ्गहृदय 170
4. काशगर पाण्डुलिपि 170
5. अन्य कृतियाँ 170

IV.9 ज्योतिष एवं गणित 172

1. पञ्चसिद्धान्त 172
2. अन्य रचनाएँ 172
3. गणित 173
4. फलित ज्योतिष 173

IV.10 अलंकारशास्त्र 175

1. नाट्यशास्त्र 175
2. काव्यादर्श एवं काव्यालंकार 176
3. काव्यालङ्कारसूत्र 177
4. ध्वन्यालोक 177
5. वक्रोक्तिजीवित 178
6. काव्यमीमांसा 178
7. व्यक्तिविवेक 178
8. काव्यप्रकाश 178
9. साहित्यदर्पण 179
10. रसगंगाधर 179
11. औचित्यविचारचर्चा और कविकण्ठाभरण 179

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उपसंहार
परिशिष्ट—1. लेखकानुक्रमणिका 183
परिशिष्ट—2. ग्रन्थानुक्रमणिका 193

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कक्षा बारह के लिए इस पुस्तक के पाठ्यांश

1. संस्कृत भाषा (केवल परिचयात्मक ज्ञान) — अध्याय I
2. वैदिक साहित्य (केवल परिचयात्मक ज्ञान) — अध्याय II
   ऋग्वेद, अथर्ववेद, यजुर्वेद, सामवेद, ब्राह्मण ग्रन्थ,
   आरण्यक, उपनिषद्, सूत्र साहित्य।
3. लौकिक साहित्य — अध्याय III

   (1) महाभारत, रामायण, पुराण। (महाकाव्य तथा पुराण III-2)

   (2) पञ्चतन्त्र, हितोपदेश, बृहत्कथा,
   कथासरितसागर, वेतालपञ्चविंशतिका,
   सिंहासनद्वात्रिंशतिका। (नीतिकथा साहित्य III-2)

   (3) दशकुमारचरित, वासवदत्ता, हर्ष-
   चरित्र, कादम्बरी, चम्पू। (गद्य आख्यान III-3)

   (4) बुद्धचरित एवं सौन्दरनन्द, ऋतुसंहार,
   कुमारसम्भव, रघुवंश, मेघदूत,
   किरातार्जुनीय, शिशुपालवध,
   नैषधचरित। (अलङ्कृत काव्य III-5)

   (5) शृङ्गार, वैराग्य एवं नीति शतक,
   गीतगोविन्द, नीति काव्य,
   उपदेशपरक काव्य। (नीति काव्य III-6)

   (6) भास-नाटक, मृच्छकटिक,
   मालविकाग्निमित्र, विक्रमोर्वशीय,
   अभिज्ञानशाकुन्तल, वेणीसंहार,
   मुद्राराक्षस, मालतीमाधव, उत्तर-
   रामचरित, रत्नावली, नागानन्द। (नाटक III-7)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

I

संस्कृत भाषा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

I

संस्कृत भाषा

अधिकांश भारतीय वाङ्मय संस्कृत तथा संस्कृत से उत्पन्न भाषाओं में विद्यमान है। भाषा-परिवार की दृष्टि से भारतीय महाद्वीप मुख्यतः दो भागों में विभाजित है—उत्तर एवं दक्षिण। उत्तर की भाषाएँ बहुधा भारोपीय परिवार की हैं और दक्षिण की भाषाएँ मूलतः द्राविड़ समूह की हैं। जिस साहित्य से हम यहाँ संबंधित हैं वह एकमात्र संस्कृत तथा उससे उत्पन्न भाषाओं का साहित्य है। ये भाषाएँ तीन अवस्थाओं से गुजरी हैं जो क्रमिक एवं समानान्तर दोनों हैं।

ये तीन अवस्थाएँ हैं—(1) प्राचीन भारतीय भाषाएँ (2) मध्य भारतीय भाषाएँ एवं बोलियाँ और (3) आधुनिक भारतीय भाषाएँ एवं बोलियाँ।

वेदों की भाषा को प्राचीन भारतीय या वैदिक या वैदिक संस्कृत या प्राचीन उच्च भारतीय कहते हैं। यह भाषा बोलियों पर आधारित थी। ऐसा प्रतीत होता है कि इस भाषा को पुरोहितों के समाज ने परम्परा द्वारा जीवित रखा है। ऐसा प्रतीत नहीं होता है कि यह कभी एक वास्तविक लोक-प्रचलित भाषा रही होगी। जिस बोली पर यह प्राचीन उच्च भारतीय भाषा आधारित है, वह आर्यों द्वारा भारत के उत्तर-पश्चिम में बोली जाती थी। इस बोली का प्राचीन फारसी एवं अवेस्ता से घनिष्ठ सम्बन्ध था और यह प्राचीन भारत—ईरानी भाषा से बहुत अधिक मिलती-जुलती थी। जब वेदों की भाषा की तुलना प्राचीन फारसी (कीलाक्षर लिपि में प्राप्त अभिलेखों) तथा अवेस्ता की भाषा से की जाती है तब हमें इस प्राचीन भारत—ईरानी भाषा का अनुमान होता है। वेद एवं अवेस्ता की भाषाएँ एक दूसरे से इतनी अधिक समानता रखती हैं कि कुछ नियमों को याद करके एक भाषा का दूसरी भाषा में सहज अनुवाद किया जा सकता है। वैदिक भाषा एवं लौकिक संस्कृत की ध्वनियों में परस्पर बहुत अधिक साम्य है। अन्तर केवल इतना है कि वैदिक भाषा बहुत अधिक प्राचीन है तथा इसमें व्याकरण मूलक रूपों की बहुलता प्राचीन उच्च भारतीय भाषा में एक संभाव्य क्रियार्थ हैं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जो संस्कृत में नहीं है। वैदिक में एक दर्जन क्रियार्थक संज्ञा प्रत्यय हैं जब कि संस्कृत में केवल एक। इसी तरह वैदिक में सामान्य भूत की प्रचुरता है जब कि संस्कृत में यह धीरे-धीरे लुप्त हो गया है। कारक एवं पुरुष वाचक विभक्तियाँ प्राचीन भाषा में उत्तरकालीन संस्कृत की अपेक्षा कहीं अधिक पूर्ण हैं।

ऋग्वेद का दसवाँ मण्डल तथा अथर्ववेद व यजुर्वेद के कुछ भाग, प्राचीन उच्च भारतीय भाषा की परवर्ती अवस्था का प्रतिनिधित्व करते हैं। ब्राह्मण, आरण्यक तथा उन उपनिषदों में जो वैदिक गद्य का प्रतिनिधित्व करते हैं, प्राचीन उच्च-भारतीय भाषा के अवशेष बहुत ही कम हैं। इनकी भाषा को संस्कृत कह सकते हैं। अन्त में वेदांग साहित्य के सूत्र अनिवार्यतः शुद्ध संस्कृत में हैं, इनमें वैदिक रूप केवल अपवाद से ही मिलते हैं। केवल मन्त्र ही प्राचीन उच्च भारतीय भाषा में हैं, जो प्राचीन वैदिक सूक्तों से उद्धृत हैं।

ब्राह्मणों, आरण्यकों व उपनिषदों तथा सूत्रों की संस्कृत उस संस्कृत के बहुत अधिक समान है जिसका वर्णन पाणिनि अष्टाध्यायी में करते हैं। इसे हम प्राचीन संस्कृत कह सकते हैं। यह शिक्षितों, पुरोहितों तथा विद्वानों की भाषा थी। इसी कारण से संभवतः पतञ्जलि (द्वितीय शताब्दी ई० पू०) ने कहा है कि शुद्ध भाषा शिष्टजनों से सीखी जा सकती है। पतञ्जलि रोचक ढंग से यह भी बताते हैं कि शिक्षित लोगों का क्षेत्र उनके समय में बहुत अधिक विस्तृत हो गया था। जैसे कि उन्होंने उल्लेख किया है कि उनके समय में वैयाकरण और सारथी शब्दों की व्युत्पत्ति पर विचार-विमर्श किया करते थे। संस्कृत नाटकों से प्रकट होता है कि संस्कृत राजाओं, ब्राह्मणों और कुलीन पुरुषों तक ही सीमित थी, जब कि महिलाएँ, सामान्य जन, जिनमें अशिक्षित ब्राह्मण भी सम्मलित हैं, प्राकृत का प्रयोग करते थे। परन्तु शिक्षित महिलाएँ संस्कृत का प्रयोग करती थीं। इसका अर्थ यह है कि न केवल ईसा के बाद बल्कि इससे काफी पहले की शताब्दियों में भी संस्कृत लोक प्रचलित भाषा नहीं थी। अधिक से अधिक हम यह कह सकते हैं कि संस्कृत शिक्षित लोगों के व्यापक क्षेत्र में बोली जाती थी और इससे भी अधिक व्यापक क्षेत्र में समझी जाती थी, चाहे सभी इसे बोल न भी पाते हों। महाकाव्यों की भाषा संस्कृत है जो कि शास्त्रीय संस्कृत से थोड़ी ही भिन्न है। चारण लोग महाकाव्य सुनाते थे और लोग उन्हें समझते थे। महाकाव्यों की संस्कृत व्याकरण के नियमों का उतनी कठोरता से पालन नहीं करती तथा यह सामान्य जन की भाषा का प्रतिनिधित्व करती है। महाकाव्यों की संस्कृत में रचना, इस तथ्य का स्पष्ट संकेत करती है कि यह संस्कृत बहुत व्यापक रूप से समझी जाती थी। संस्कृत व प्राकृत शब्दों के प्रयोग ही संभवतः इस बात के सूचक हैं कि संस्कृत एक प्रतिष्ठित या साहित्यिक भाषा है और प्राकृत स्वाभाविक एवं सामान्य।

संस्कृत को मृतभाषा कहना बहुत असंगत होगा। इसका विकास व्याकरण के

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नियमों द्वारा वाधित और अवरुद्ध कर दिया गया। पाणिनि ने इस भाषा के लिए एक नियत मानदण्ड बनाया जो आने वाले सारे समय के लिए आदर्श बना रहा। पाणिनि व्याकरण के नियमों के अनुसार केवल संस्कृत ही शुद्ध भाषा है। व्याकरण के इस अवरोधक प्रभाव के होते हुए भी संस्कृत जीवित रही। यही लौकिक संस्कृत है। इसी लौकिक संस्कृत में महत्त्वपूर्ण नाटक, पद्यात्मक तथा वैज्ञानिक साहित्य की रचना की गई। आज की संस्कृत में नाटक तथा महाकाव्यों की रचना की जा रही है और संस्कृत पत्रिकाएँ लोकप्रिय हैं।

इसलिए संस्कृत का विकासक्रम निम्नलिखित ढंग से प्रस्तुत किया जा सकता है।

1. प्राचीन उच्च भारतीय भाषाएँ
   (क) ऋग्वेद के प्राचीनतम सूक्तों की भाषा।
   (ख) ऋग्वेद और अन्य वेदों के परवर्ती सूक्तों की भाषा।
2. संस्कृत
   (क) प्राचीन संस्कृत—वैदिक गद्य एवं पाणिनि की भाषा।
   (ख) महाकाव्य संस्कृत—महाकाव्यों की भाषा, तथा
   (ग) लौकिक संस्कृत—पाणिनि के बाद संस्कृत साहित्य की भाषा।

यहां मध्य भारतीय भाषाओं तथा बोलियों और आधुनिक भारतीय भाषाओं तथा बोलियों पर विचार करना आवश्यक नहीं है। मध्य भारतीय भाषाएँ संस्कृत से सीधी उत्पन्न नहीं हुई हैं, वल्कि भारतीय आर्य भाषा की प्रचलित बोलियों से उत्पन्न हुई हैं, जो कि प्राचीन उच्च भारतीय भाषा तथा संस्कृत से निःसृत हैं। प्राचीनतम भारतीय शिलालेख इन बोलियों की विविधता को प्रकट करते हैं। इस संदर्भ में हम पालि का उल्लेख कर सकते हैं जिस भाषा में बौद्ध धर्म की संहिताएँ एवं बौद्ध-साहित्य में उपलब्ध गाथाओं की बोली सुरक्षित है, जैन-प्राकृत या अर्ध मागधी जो कि जैन धर्म संहिता की भाषा है, जैन-महाराष्ट्री—जिस भाषा में जैन धर्म संहिता की व्याख्या है तथा अन्य धर्म-निरपेक्ष जैन काव्य हैं, महाराष्ट्री, महाराष्ट्र की भाषा जो कि उत्कृष्ट प्रकार की प्राकृत थी और जिसमें गीति-काव्यों की रचना की गई। प्राकृत की अन्य महत्त्वपूर्ण बोलियाँ हैं—शौरसैनी, शूरसेन की बोली जिसकी राजधानी मथुरा थी; मागधी, मगध की बोली; पैशाची समाज के न्यूनतम वर्ग की भाषा तथा अपभ्रंश, लोक प्रचलित कविता, जैन प्रेम-कथाओं तथा कभी-कभी नाटकों में प्रयोग होने वाली भाषा।

1000 ई० के लगभग मध्य भारतीय बोलियों से आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं का विकास हुआ। साहित्य की रचना इन्हीं भाषाओं में हुई और इस प्रसंग में हम यहाँ हिन्दी का उल्लेख कर सकते हैं जिसकी बोलियों में कन्नौजी, तुलसीदास की पूर्वी हिन्दी, ऊपरी दोआब की उच्च हिन्दी, बुन्देली तथा ब्रजभाषा,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हिन्दुस्तानी—हिन्दी एवं फारसी, पंजाबी, राजस्थानी व अरबी के तत्त्वों का एक मिश्रण है। इसी प्रकार गुजराती, नेपाली तथा मारवाड़ी का भी उल्लेख इसी प्रसंग में कर सकते हैं। अन्य भाषाओं में लहँदा, सिंधी, मराठी, बिहारी, उड़िया, बंगाली तथा असमी हैं। कश्मीरी दार्दिक समूह की भाषा है। श्रीलंका की सिंहल भाषा भी एक परिवार की है, जो कि मध्य भारतीय भाषा की वंशज है। भारत में इन आर्य भाषाओं के अतिरिक्त मुण्डा भाषाएँ, तिब्बत-बर्मी भाषाएँ तथा द्राविड़ भाषाएँ (जिनमें मलयालम, कन्नड, तेलुगु तथा तमिल प्रमुख हैं।) भी हैं।

संस्कृत के विद्यार्थियों को सदा स्मरण रखना चाहिए कि संस्कृत भारतीय-जर्मन परिवार की भाषाओं से सम्बद्ध है तथा यह भारतीय-आर्य परिवार की है। इस रूप में यह ग्रीक तथा जर्मन जैसी इसी वर्ग की अन्य भाषाओं से बहुत समानता रखती है, क्योंकि इन सभी का मूल एक ही है, और इन सबकी उत्पत्ति भारोपीय भाषाओं से हुई है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

II

वैदिक साहित्य

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

II

वैदिक साहित्य

संस्कृत साहित्य के आदि युग में ऐसा बहुत सारा साहित्य मिलता है जिसे वैदिक साहित्य कहते हैं। इस साहित्य को संहिताओं, ब्राह्मणों, आरण्यकों, उपनिषदों तथा सूत्रों इत्यादि के सुविधाजनक वर्गों में बाँटा जा सकता है। इनमें से प्रत्येक वर्ग में अनेक रचनाएँ हैं। इस प्रकार से चार संहिताएँ हैं—ऋग्वेद, अथर्ववेद, यजुर्वेद और सामवेद। इन संहिताओं से सम्बद्ध अनेक ब्राह्मण ग्रन्थ हैं, जैसे ऐतरेय, कौषीतकि, तैत्तिरीय, शतपथ, गोपथ इत्यादि। इन ब्राह्मणों से सम्बद्ध आरण्यक ग्रन्थ हैं, जैसे ऐतरेय, कौषीतकि, तैत्तिरीय इत्यादि। आरण्यकों की परिपूर्णता उपनिषदों से होती है जो कि 108 या इससे भी बहुत अधिक हैं। इस युग को वैदिक साहित्य का सर्जनात्मक युग कह सकते हैं। इस युग के बाद वह युग आया जब कि इस महत्त्वपूर्ण साहित्य का विश्लेषण एवं संक्षेपण किया गया। विभिन्न वैदिक शाखाओं तथा चरणों में इस साहित्य के अध्ययन के लिए पर्याप्त चेष्टा की गई एवं मार्ग-दर्शन के लिए नियमावलियाँ तैयार की गईं। ऐसे चरणों (वैदिक सम्प्रदायों) में बौधायन आपस्तम्ब, हिरण्यकेशी, मानव तथा वसिष्ठ आदि का उल्लेख किया जा सकता है। इन सम्प्रदायों ने व्यक्ति के जीवन के विभिन्न पहलुओं से सम्बन्ध रखनेवाले विभिन्न सूत्र-मण्डल तैयार किए। इस प्रकार श्रौतसूत्र बड़े यज्ञों का, गृह्यसूत्र पारिवारिक यज्ञों का, धर्मसूत्र धार्मिक तथा सामाजिक नियमों का तथा ब्रह्मसूत्र दार्शनिक तथ्यों का वर्णन करते हैं। यह वास्तव में वेदान्त-साहित्य है। इस साहित्य का अध्ययन अत्यधिक महत्त्वपूर्ण हो गया, क्योंकि परवर्तीकाल में जो भी साहित्य विकसित हुआ उसके लिए इस साहित्य की अपेक्षा बनी रही। इसके ज्ञान के बिना भारतीय संस्कृति तथा सभ्यता को समझना कठिन होगा जिसका अद्भुत तारतम्य भारतीय जन-समाज ने हमेशा बनाए रखा है। इस साहित्य का कालक्रमिक अध्ययन हमें विचारों तथा प्रथाओं, शैलियों तथा साहित्य की विधाओं के विकास को समझने में सक्षम बनाता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इसलिए हम अपना अध्ययन संहिताओं से आरम्भ करते हैं।

ऋग्वेद संहिता तथा अथर्ववेद संहिता को साहित्यिक संहिता कहना उपयुक्त होगा, क्योंकि वास्तव में इनका ब्राह्मण साहित्य से कोई विशेष सम्बन्ध नहीं है। ऋग्वेद के सूक्त तथा अथर्ववेद के मन्त्र निस्सन्देह यज्ञों तथा जादू में प्रयुक्त किए जाते थे, परन्तु दोनों संहिताओं में इस प्रकार का कोई स्पष्ट उद्देश्य प्रतीत नहीं होता। इन संहिताओं का जिन सिद्धान्तों पर सम्पादन किया गया है उनसे इनके विशुद्ध साहित्यिक स्वरूप की पुष्टि होती है। यजुर्वेद तथा सामवेद की स्थिति इससे पूर्णतः भिन्न है। इन संहिताओं में सामग्री ठीक-ठीक उसी क्रम में है जिस क्रम में वह यज्ञों में प्रयुक्त होती है। इन दोनों को हम पुरोहितों के व्यावहारिक प्रयोग के लिए प्रार्थना-पुस्तक तथा गीति-पुस्तक—अध्वर्यु तथा उद्गातृ—मान सकते हैं। इसलिए इन संहिताओं को पूजा-पद्धति-सम्मत या कर्मकाण्डी समझना चाहिए।

वैदिक ब्राह्मण धर्म से हमें दो प्रकार की उपासना का पता चलता है। ऋग्वेद तथा अथर्ववेद में ऐसी सामग्री मिलती है जिसका व्यवहार जन्म, विवाह, मृत्यु, श्राद्ध जैसे अवसरों पर किया जाता था। इसी सामग्री का ऐसे अनुष्ठानों में प्रयोग किया जाता था जिसके द्वारा पशुधन भरपूर प्राप्त किया जा सके। पारिभाषिक अर्थ में इन्हें 'गृह्यकर्माणि'—पारिवारिक संस्कार—कहते हैं। इनके लिए केवल एक ही अग्नि पर्याप्त है। पारिवारिक यज्ञकुण्ड में एक ही अग्नि में आहुतियाँ दी जाती थीं। इसके विपरीत, सोम-यज्ञ के अनुष्ठान हैं, जिन्हें केवल अभिजात वर्ग ही सम्पन्न कर सकता था। सोम अनुष्ठान का योद्धाओं के देवता इन्द्र के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध इसी दिशा की ओर संकेत करता है। इस अनुष्ठान में तीन पवित्र अग्नियों के लिए वेदियाँ बनाई जाती थीं तथा चार मुख्य पुरोहित भाग लिया करते थे। इसमें बहुत सारे जटिल संस्कार एवं धार्मिक क्रियाएँ होती थीं। यह यज्ञ वास्तव में पुरोहितों द्वारा किया जाता था, जो कि अपने शास्त्र में निपुण होते थे और यजमान को बहुत कम या कुछ भी नहीं करना पड़ता था। फिर भी उसकी व्यक्तिगत उपस्थिति आवश्यक थी और उससे आशा की जाती थी कि वह अपने पद पर कार्य करने वाले पुरोहितों की उदारता से सहायता करेगा। ब्राह्मणों (पुरोहित वर्ग) ने यज्ञ-शास्त्र का विकास किया और इसका नियमन ब्राह्मण ग्रन्थों में किया जो कि श्रुति साहित्य का एक अमूल्य अंग है। इस श्रुति साहित्य की दैवी उत्पत्ति मानी जाती है, इसलिए इसमें जिन यज्ञों का वर्णन है, उनकी उत्पत्ति भी बताई गई है और उन्हें प्रामाणिक एवं दोष रहित बताया गया है। इन यज्ञों को गृहयज्ञों के विपरीत श्रौतयज्ञ कहा जाता है जो कि अधिकतर परम्परा तथा स्मृति पर निर्भर रहता है। अनुष्ठान कराने वाले चार पुरोहित होते थे जिनमें 'होता' ऋग्वेद की ऋचाओं का उच्चारण करके देवताओं का आवाहन करता था,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उद्गाता, जो सोमयज्ञ के समय सामवेद के सामों का उस समय गायन करता था जबकि सोम को पीसकर तैयार किया जाता था और दूसरों को दिया जाता था। अध्वर्यु जो कि प्रमुख पुरोहित होता था और यज्ञीय कार्यों को सम्पन्न करता था तथा यजुः मन्त्रों—यजुर्वेद की गद्य प्रार्थनाओं तथा यज्ञीय सूत्रों का—पाठ करता था, तथा अन्त में ब्रह्मा जो अथर्ववेद से सम्बन्धित था, उसका काम यज्ञ को विघ्न-बाधाओं से बचाना था विशेषकर दक्षिण से आने वाली बाधाओं से, जिनका सम्बन्ध मृत्यु के देवता तथा असुरों से होता था। ऋचाओं का पाठ, सामों का गायन, यज्ञीय कर्मों का सम्पादन, तथा यज्ञ की सुरक्षा आदि कार्य बहुत सावधानी से करना पड़ता था। यज्ञीय पुरोहितों में ब्रह्मा को चिकित्सक की तरह समझा जाता था। उसे वास्तव में हर चीज़ जाननी पड़ती थी क्योंकि उसे इस बात का ध्यान रखना पड़ता था कि कोई भी भूल न हो जाय। इस तरह उसे तीनों वेदों तथा अथर्ववेद की भी अच्छी जानकारी रखनी पड़ती थी। 'होता' को ऋग्वेद-संहिता को कण्ठस्थ करना पड़ता था, क्योंकि उसका काम शास्त्रों का संकलन करना था। सोमयज्ञ के समय उसे स्तुति-गान करना होता था, साथ ही अनुवाक् का भी उच्चारण करना होता था, जो आवाहन-मन्त्र हुआ करते थे। वे आहुति गाने 'याज्या' भी गाया करते थे।

इस प्रकार ऋग्वेद 'होता' से सम्बन्धित है पर उसे इस उद्देश्य से व्यवस्थित नहीं किया गया है। इसके विपरीत सामवेद संहिता उद्गाता द्वारा गाए जाने वाले पाठों के संग्रह के अलावा कुछ नहीं है। वे साम वास्तव में ऋग्वेद की ऋचाएँ हैं जो संगीतमय हैं। इसी प्रकार अध्वर्यु पुरोहित को भी मन्द स्वर में छोटे तथा लम्बे गद्य सूत्रों तथा गद्य-पद्यमय प्रार्थनाओं का पाठ करना पड़ता है, जिन्हें यजुर्वेद से संकलित किया गया है और जो 'यजूंषि' कहलाते हैं। इसलिए यजुर्वेद-संहिता मात्र गद्य सूत्रों तथा प्रार्थनाओं का संग्रह है जिन्हें अध्वर्यु के प्रयोग के लिए उसी क्रम में रखा गया है जिसमें उनका पाठ करना होता है। इसी कारण, यजुर्वेद-संहिता तथा सामवेद-संहिता पूजा पद्धति-सम्मत संहिताएँ हैं और ऋग्वेद-संहिता तथा अथर्ववेद-संहिता साहित्यिक संहिताएँ हैं।

यह विपुल साहित्य बहुत ही व्यवस्थित विधि से विकसित हुआ है और इन सब रचनाओं में घनिष्ठ सम्बन्ध है। वास्तव में परवर्ती ग्रन्थों का विकास पूर्ववर्ती ग्रन्थों से हुआ है। इस प्रकार ब्राह्मण, आरण्यक एवं उपनिषद्, वेदांत साहित्य तथा सूत्र साहित्य का शाखाओं से गहन सम्बन्ध है जो पुनः वैदिक संहिता से सम्बद्ध हैं। इसलिए सामान्यतः एक परम्परागत विद्वान् ब्राह्मण के लिए इन दस ग्रन्थों का ज्ञान अपेक्षित है। वेदों की संहिता तथा इसके ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद् एवं छः वेदांग—यह सारा साहित्य प्राचीन भारत में मौखिक रूप में गुरु से प्राप्त होता था तथा निरन्तर पाठ द्वारा इसका परिरक्षण किया जाता था।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

परम्परा ने इस साहित्य के प्रति दैवत्व, पवित्रता एवं प्रामाणिकता का वातावरण स्थापित कर दिया है और 'श्रुति' शब्द भारतीय मनोवृत्ति की वैदिक साहित्य के प्रति श्रद्धा का प्रतीक है। परम्परागत ढंग से इस साहित्य को श्रुति-साहित्य (सुना हुआ साहित्य) कहते है। प्रारम्भिक युग के ऋषियों को यह साहित्य स्वयं प्रकाशित हुआ था। उन्होंने इसे सुना था, इसकी रचना नहीं की थी। इसलिए यह साहित्य अपौरुषेय है, मनुष्य द्वारा रचित नहीं बल्कि दैवी उत्पत्ति वाला साहित्य है। इस तथ्य से इस साहित्य को पूर्ण प्रामाणिकता एवं पवित्र स्वरूप प्राप्त हुआ है जिसने सदा भारतीय मस्तिष्क पर बहुत अधिक प्रभाव डाला है।

इस महत्त्वपूर्ण साहित्य में ऋग्वेद सबसे पुराना है तथा अथर्ववेद उसका समकालीन है। फिर ब्राह्मण, आरण्यक तथा उपनिषद् इसी क्रम में आए। जब इस साहित्य का अध्यापन सम्प्रदायों, छोटे समुदायों में होने लगा तब इनके अध्ययन एवं अध्यापन की आवश्यकता की पूर्ति के लिए विभिन्न सूत्रों एवं सम्पूर्ण वेदांग साहित्य की उत्पत्ति हुई। वेदांग साहित्य का उद्देश्य वेद संहिताओं का ठीक-ठीक पाठ निश्चित करना, उनकी उचित व्याख्या करना तथा संहिताओं एवं ब्राह्मणों के अनुसार यज्ञों को यथाविधि शुद्धता से सम्पादित करना है। सूत्र साहित्य का उद्देश्य व्यक्ति के जीवन के संस्कारों का वैदिक संहिताओं की दृष्टि से मार्गदर्शन करना है। यह मार्गदर्शन पारिवारिक तथा सामाजिक धर्म तथा सामाजिक एवं नैतिक सिद्धान्तों के क्षेत्र में प्राप्त होना चाहिए। इस प्रकार इस साहित्य को दैविक प्रकटीकरण माना जाता है। भारतवासियों की अनेकानेक पीढ़ियों ने इस साहित्य को सुरक्षित रखा है और आजीवन इसकी मर्यादा के पालन का प्रयास किया है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

II. 1 ऋग्वेद

वास्तव में यह कहना अतिशयोक्तिपूर्ण नहीं होगा कि सारे संस्कृत साहित्य के क्षेत्र में ऋग्वेद की तुलना में कोई अन्य रचना इतनी महत्त्वपूर्ण एवं रुचिकर नहीं है। इसका रचनाकाल इसे और भी अधिक महत्त्वपूर्ण बना देता है, क्योंकि यह आज संसार में सबसे प्राचीन मानवीय प्रलेख है। ऋग्वेद के मन्त्र आर्यों ने रचे जो सात नदियों के देश अर्थात् 'सप्तसिन्धु' में रहते थे। उन्होंने इस देश में रहकर अपनी संस्कृति तथा सभ्यता का जो विकास किया, वह बहुत सीमा तक आज भी भारत में चल रहा है। इसका अर्थ यह नहीं है कि भारतीय जीवन में कोई भी परिवर्तन नहीं हुआ है, अपितु इससे भारतीय संस्कृति एवं जीवन की असाधारण निरन्तरता की पुष्टि होती है तथा यह भी सिद्ध होता है कि ऋग्वेद ने भारतीय मस्तिष्क एवं संस्कृति पर बहुत प्रभाव डाला है। यहाँ ऋग्वेद के काल की समस्या पर विचार करना अपेक्षित नहीं है, क्योंकि भिन्न-भिन्न विद्वानों ने विविध कालों का सुझाव दिया है। इन विद्वानों की गणना में मतभेद हो सकता है, परन्तु वे सामान्यतः इस बिन्दु पर सहमत हैं कि ऋग्वेद संसार में सबसे प्राचीन कृति है। ऋग्वेद एक साहित्यिक रचना या स्तुतिपरक काव्य है और इसलिए अपने रचयिताओं की मनोवृत्ति को प्रचुरता से प्रदर्शित करता है और यह तथ्य इसके अध्ययन को रुचिकर बनाता है। ऋग्वेद हमें मानव जाति के इतिहास के ऐसे युग में ले जाता है जहाँ आधुनिक पुरातत्त्व जैसे अन्य विज्ञान झाँक भी नहीं सकते हैं। ऋग्वेद के अध्ययन ने तुलनात्मक धर्म, तुलनात्मक पौराणिक कथाएँ, तुलनात्मक भाषा शास्त्र तथा दर्शन शास्त्र जैसी चिन्तन की नवीन शाखाओं को जन्म दिया है। ऋग्वेद के अध्ययन से हम संसार की संस्कृति में भारतीयों के योगदान को समझने में समर्थ होते हैं, तथा उसकी यूनानी तथा रोमन लोगों के योगदान से तुलना कर सकते हैं। इस प्रकार संसार, मानव तथा भारत के सांस्कृतिक इतिहास के दृष्टिकोण से ऋग्वेद के महत्त्व को कभी भी बढ़ा-चढ़ाकर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नहीं कहा जा सकता। ऋग्वेद की अपनी संहिता है। 'संहिता' शब्द अपने आपमें रुचिकर है क्योंकि यह ऋग्वेद के पाठ के इतिहास पर महत्त्वपूर्ण प्रकाश डालता है। 'संहिता' का अर्थ है पाठों का एकत्र संग्रह, जिसका अभिप्राय है कि इस संहिती-करण की दशा से पूर्व सामग्री इधर-उधर बिखरी पड़ी थी। यह वैसा ही है जैसा होना चाहिए। इसकी कल्पना सरलता से की जा सकती है कि प्रारम्भ के आर्य कवि जो कि विभिन्न पुरोहित परिवारों से थे, जीवन की विभिन्न आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए मन्त्रों की रचना करते थे। प्राकृतिक दृश्य की सुन्दरता एवं वैभव को देखकर वे निश्चित ही मन्त्रों की रचना करने के लिए प्रेरित हुए होंगे। देवताओं की आराधना एवं उन्हें आहुति स्वीकार करने के लिए आमन्त्रित करने हेतु उन्होंने निश्चित ही मन्त्रों की रचना की होगी। उन्होंने एक प्रकार के अनुष्ठानों का विकास किया होगा जिनके द्वारा मनुष्यों के जीवन की विवाह या मृत्यु जैसी महत्त्वपूर्ण घटनाओं को संस्कार रूप में मनाते थे। उन्होंने मनोरंजन की आवश्यकता का भी अनुभव किया होगा और उसकी पूर्ति के लिए भी कुछ मन्त्र बनाए होंगे। अन्त में, देवताओं एवं मनुष्यों का प्रिय पान अर्थात् सोम को बनाने की भी उनकी अपनी धर्मविधि रही होगी। समय बीतने के साथ-साथ इस प्रकार से रचित मन्त्र बहुत अधिक हो गए होंगे, और परिणामस्वरूप यह आवश्यक समझा गया होगा कि इस संपूर्ण वैदिक काव्य को एकत्र किया जाय और इसे संरक्षित करने का प्रयास किया जाय। संहिता का जन्म निश्चित ही इसी प्रकार हुआ होगा। संहिता के सम्पादकों ने इस सारी बिखरी हुई सामग्री को एक सुव्यवस्थित रचना में संकलित करके एक असाधारण कार्य किया। उन्होंने इन मन्त्रों का संकलन वंश के आधार पर किया। इस प्रकार संपूर्ण ऋग्वेद-संहिता दस मण्डलों में विभाजित की गई है। पहले तथा दसवें मण्डलों में छोटे वंशों की रचनाएँ हैं। नवम मण्डल में सोम मन्त्रों को एकत्र किया गया है। दूसरे मण्डल में गृत्समद गोत्र के सदस्यों की रचनाएँ हैं। तीसरे मण्डल में विश्वामित्र गोत्र के सदस्यों की रचनाएँ हैं, चौथे में वामदेव गोत्र की रचनाएँ हैं। पाँचवें में अत्रि गोत्र की रचनाएँ हैं। छठे में भारद्वाज गोत्र के सदस्यों की रचनाएँ हैं। सातवें में वसिष्ठ गोत्र के सदस्यों की तथा आठवें में कण्व तथा अङ्गिरस गोत्रों के सदस्यों की रचनाएँ हैं। यह सामान्यतः स्वीकार किया जाता है कि इन विभिन्न मण्डलों में से दूसरे से सातवें मण्डलों में सबसे पुरानी सामग्री संकलित है और इसके बाद लगभग काल-क्रम में आठवाँ, नौवाँ तथा अन्त में दसवाँ मण्डल आते हैं जो ऋग्वेद के स्तुतिपरक काव्य की नवीनतर सामग्री का वर्णन करते हैं। इस प्रकार स्तुतिपरक काव्य का सावधानी से वर्गीकरण करके इसे एक समरूप गोत्रीय संग्रह बनाने के बाद सम्पादकों ने सामग्री को प्रत्येक मण्डल में एक निश्चित पद्धति के आधार पर व्यवस्थित किया। उन्होंने इन सूक्तों को देवताओं के अनुरूप व्यवस्थित किया। इस प्रकार उन्होंने

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अग्निसूक्तों को इस गोत्रीय संग्रह में सबसे पहले रखा। इन अग्निसूक्तों के संग्रह के वाद इन्द्र सूक्तों का संग्रह रखा गया और इनके बाद के सूक्तों में विभिन्न देवताओं को सम्बोधित किया गया है। एक संग्रह में सूक्तों को अवरोही क्रम में रखा गया है। पुनः सबसे लम्बे सूक्तों के संग्रह को सबसे ऊपर रखा गया है और इसके बाद मन्त्रों की संख्या के अनुसार सूक्त हैं। इसी व्यवस्था में लम्बे छन्द छोटे छन्दों से पहले आते हैं, जगती सबसे पहले आते हैं, तथा गायत्री सबसे अन्त में। इन सिद्धान्तों के अपवाद बहुत कम हैं। इसलिए इन सिद्धान्तों को हम संहिता की आन्तरिक व्यवस्था नियन्त्रित करने वाले नियम कह सकते हैं। ऋग्वेद के विभिन्न संस्करणों में से हमारे पास केवल शाकल संस्करण है, और अपने अध्ययनों में जब कभी भी हम ऋग्वेद का उल्लेख करते हैं, तो हमारा अर्थ इसी से होता है। इस संस्करण में 1017 सूक्त हैं और ऐसा प्रतीत होता है कि यह पूर्णतः परिरक्षित है। इस विचार को स्वीकार करना कठिन है कि सब सूक्तों को मूलभूत धार्मिक अनुष्ठानों के महत्त्व के अनुसार स्वीकार तथा परिरक्षित किया गया है, क्योंकि वे बहुत सरल हैं और उनमें से बहुत सारे सूक्तों का धार्मिक अनुष्ठानों से कोई सम्बन्ध नहीं है। वास्तव में ऐसे कारण हैं जिनके आधार पर यह विश्वास किया जा सकता है कि ऋग्वेद कालीन धार्मिक अनुष्ठान इसके बाद में आने वाले युग के धार्मिक अनुष्ठानों से बहुत अधिक सरल थे। शाकल संस्करण, जो आज हमें उपलब्ध है, शिशिर शाखा से है। ब्राह्मण ग्रन्थों में कुछ ऐसे मन्त्रों का उल्लेख है जो ऋग्वेद संहिता में नहीं पाए जाते हैं। इस परिस्थिति का स्पष्टीकरण इस तथ्य से किया जा सकता है कि सारे विकीर्ण सूक्तों को संहिता में सम्मिलित नहीं किया गया है। हिल्लेब्राँ का यह कथन संदेहजनक है कि ऋग्वेद संहिता की धार्मिक परम्परा साहित्यिक परम्परा से भिन्न है। हमने ऋग्वेद की प्राचीन स्थिति तथा उत्तर कालीन स्थिति का वर्णन किया है। इन भागों में प्रयुक्त भाषा को देखने से इस विचार को बल मिलता है। ऋग्वेद के कवि स्वयं अपनी तीन पीढ़ियों—प्राचीन, मध्य एवं आधुनिक का उल्लेख करते हैं। वे प्राचीनतम युग के ऋषियों जैसे उसिज्, जामदग्नि एवं अन्य की चर्चा करते हैं जिनके सूक्त संहिता में नहीं मिलते हैं। एक बहुत महत्त्वपूर्ण तथा सतत् परम्परा ऋग्वेद को अपौरुषेय मानती है। इसका अर्थ यह है कि इन ऋषियों को मन्त्रों का प्रकटीकरण हुआ था और इनकी रचना सामान्य रूप से नहीं हुई थी। ये मन्त्र सर्वोच्च सत्ता (ईश्वर) का निःश्वास अर्थात् 'निःश्वसितम्' कहे जाते हैं। यह मानव आत्मा द्वारा श्रुत अनन्त की स्वरलहरी है। यह सब तो संभव है, परन्तु स्वयं वेद मन्त्रों में ही पर्याप्त आन्तरिक प्रमाण हैं जो हमें स्पष्ट रूप से इनके निर्माण में मानवीय कृतित्व का बोध कराते हैं। इनके ऋषियों के अनुसार ये मन्त्र हैं तथा उसी प्रवीणता से रचे गए हैं जिससे कि एक काष्ठकार या 'तक्षा' रथ बनाता है, या एक पुरोहित प्रवीणता से 'बर्हिस्'

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(कुशा) को छाँटता है। ऋषियों ने शब्दों को दक्षता से चुना है मानो चलनी से छाना हो। ऋषियों को यह आशा थी कि मन्त्र सम्बोधित देवताओं के हृदयों को छू लेंगे और अभीष्ट सिद्धि मिल जाएगी।

इस मत को स्वीकार करना कठिन होगा कि ऋग्वेद केवल पुरोहितों की रचना है। ऋग्वेद की विषय-वस्तु इतनी विविध है कि उसे कोई एक विशेष नाम देना तर्कसंगत नहीं होगा। वास्तव में यह एक पुस्तकालय है, न कि पुस्तक। यह बहुत-सी पीढ़ियों की लम्बे समय तक फैली हुई बौद्धिक गतिविधियों का प्रतिनिधित्व करता है। फलस्वरूप, ऋग्वेद की विविध विषय-वस्तु एक रुचिकर विकास प्रदर्शित करती हैं। ऋग्वेद में हम प्रारम्भ के आर्यों के धर्म, दर्शन एवं संस्कृति के प्रति विचारों की प्रगति देख सकते हैं। यह उस समय की ऐतिहासिक घटनाओं का भी विवरण देता है और हम इसमें उस समय की राजनैतिक परिस्थितियों की झलक देख सकते हैं। यह संस्कृतियों का संघर्ष चित्रित करता है—आर्यों तथा दस्युओं का संघर्ष—और इस प्रकार यह उस समय का सांस्कृतिक इतिहास बतलाता है। यह पर्यटनशील जातियों से विकसित आर्यों के दृढ़ समाज का विकास भी प्रदर्शित करता है, और इस रूप में यह आदिकालीन समाज के विकास का विवरण देता है। इस प्रकार ऋग्वेद भारतीय संस्कृति के विद्यार्थी के लिए उत्कृष्ट महत्त्व का लिखित प्रमाण है।

ऋग्वेद में हमें अग्नि, इन्द्र, वरुण, अश्विनी एवं अन्य अनेक विभिन्न देवताओं को सम्बोधित मन्त्र मिलते हैं। इन मन्त्रों में वरदान एवं दीर्घ आयु की प्रार्थना की गई है। देवताओं को सोमरस पान में भाग लेने के लिए आमन्त्रित किया जाता है और बदले में उनकी कृपादृष्टि की अपेक्षा की जाती है। ऋग्वेद के प्रारम्भिक युग में बहुत सारे देवताओं में यह विश्वास आर्यों की विचारधारा में पहला चरण प्रतीत होता है। धीरे-धीरे उन्होंने विभिन्न देवताओं की समानताओं पर विचार करना प्रारम्भ किया और इसके फलस्वरूप उनकी विचारधारा ने एक ईश्वर की सत्ता को स्वीकार किया। विभिन्न देवता इस ईश्वर की अभिव्यक्ति हैं। इस प्रकार एक सर्वशक्तिशाली ईश्वर की धारणा बहुत सारे देवताओं की भावना के विकसित हुई। गृहसुख का देवता अग्नि माना गया है, जबकि वरुण का सम्बन्ध मनुष्य के आचरण से है। इन्द्र युद्ध का नेता माना गया है जो शत्रुओं का ध्वंसक है तथा अश्विनी श्रेष्ठ चिकित्सक के रूप में माने गए हैं। इनके अतिरिक्त सूर्य, उषा, अरुण एवं पर्जन्य भी हैं। इन सभी देवताओं के विशेष कार्य-क्षेत्र हैं, पर इनमें से अधिक महत्त्वपूर्ण जैसे इन्द्र और वरुण पृथ्वी का विस्तार करने तथा सूर्य और चन्द्रमा का आकाश में स्थान निश्चित करने इत्यादि के कार्य से सम्बद्ध हैं। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि उन्हें कुछ हद तक सृष्टिकर्ता समझा जाता है। धीरे-धीरे उन्हें यह अनुभव होता है कि सभी देवता उसी एक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ईश्वर के विभिन्न नाम हैं। यह देखा जाता है कि वे उसे विभिन्न नामों—अग्नि, यम तथा मातरिश्वा के नामों से पुकारते हैं। देवता एक ही ईश्वर के विभिन्न रूप हैं—यह अनुभूति एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण चरण है; क्योंकि देवताओं के एकत्व की अनुभूति शीघ्र ही सृष्टि में एकत्व की अनुभूति की ओर अग्रसर होती है। इसलिए यह कहा जा सकता है कि ऋग्वेद के ऋषि अपने पौराणिक विचारों में देवताओं की विभिन्नता से उनके एकत्व की ओर अग्रसर हुए थे। ऋग्वेद में इस पौराणिक तत्व से सम्बद्ध एक और रोचक विकास है। हम इस धारणा पर पहुँचते हैं कि इन्द्र अपने प्रतिद्वन्द्वी वरुण से आगे निकल जाते हैं। एक सूक्त में ये दोनों देवता श्रेष्ठता के लिए अपना-अपना दावा करते हैं और अन्त में इन्द्र की श्रेष्ठता स्वीकार कर ली जाती है। वरुण की तुलना अवेस्ता के 'अहुर मजदा' से की जाती है, क्योंकि ऋग्वेद में वरुण को 'असुर मेधावी' कहा गया है। भारत-ईरानी युग में जब सब ओर शान्ति थी तब लोगों के लिए यह स्वाभाविक था कि इस नैतिकता के देवता को सबसे श्रेष्ठ देवता माना जाय। परन्तु फिर जब संघर्ष का जीवन प्रारम्भ हुआ, तब यह पूर्णतः सम्भव है कि लोग इन्द्र जो कि युद्ध के देवता थे, की ओर मुड़ गए, जिसने उन्हें विजयी बनाया। वरुण के इस पतन एवं इन्द्र के सत्तारूढ़ होने को ऋग्वेद व्यक्त करता है। एक और महत्त्वपूर्ण एवं रुचिकर विषय है जिसकी ओर ध्यान आकृष्ट करने की आवश्यकता है। ऋग्वेद में 'असुर' शब्द का अर्थ अवश्य ही अच्छी भावना में है और वह अर्थ नहीं है जो कि बाद के साहित्य में मिलता है। ऐसा देखा गया है कि ऋग्वेद देवताओं के असुरत्व को प्रशंसनीय एवं महत्त्वपूर्ण घोषित करता है। ऋग्वेद में दस्यु एवं दास शत्रु हैं न कि असुर, जिन्हें कि ब्राह्मणों में देवताओं का शत्रु कहा गया है और जो सब प्रकार का कपट करते हैं। डा० आर० जी० भण्डारकर ने सुझाव दिया है कि असुर शायद असीरियन रहे होंगे। इस संबंध में यह चर्चा उचित होगी कि अवेस्ता में 'दहेवा' जो सम्भवतः ऋग्वेद के देवता के सदृश हैं स्वभाव से दानव हैं। इन परिस्थितियों ने सम्भवतः विद्वानों को भारतीयों एवं ईरानियों के बीच एक प्रारम्भिक धर्म-विच्छेद में विश्वास करने के लिए बाध्य किया है। अवेस्ता में इन्द्र का वह वैभव नहीं है जो कि ऋग्वेद में है। ऋग्वेद में इन्द्र वृत्र तथा अन्य दानवों जैसे शुश्न, शम्बर तथा वल का ध्वंसक है। इन्द्र-वृत्र का युद्ध एक ऐसा विषय है, जिसका गुणगान ऋग्वेद निरन्तर करता है। विद्वानों ने इस घटना-वृत्त के विविध अर्थ लगाए हैं। यास्क के निरुक्त के अनुसार प्रारम्भिक भारतीय परम्परा में वृत्र को मेघ और इसके फलस्वरूप इन्द्र को वर्षा का देवता माना गया है। अन्य लोग इन्द्र को प्रकाश का देवता मानते हैं और कुछ अन्य इन्द्र को एक ऐतिहासिक व्यक्ति के रूप में देखते हैं। यदि हम इस तथ्य पर उचित ध्यान दें कि इन्द्र के अधिकतर शत्रु दुर्गों एवं प्राकारों में रहते थे, जिन्हें इन्द्र हमला करके नष्ट कर देता

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

है, तो हमें विश्वास करना पड़ेगा कि आर्य पर्यटनशील (खानाबदोश) थे और ये प्राय: स्थिर सभ्यता वाले लोगों से संघर्ष करते थे जो कि सुरक्षित घरों में रहते थे। इस दृष्टिकोण से इन्द्र की उपाधि 'पुरभिद्' अर्थात् नगरों का ध्वंसक, महत्त्वपूर्ण है। मोहनजोदड़ो एवं हड़प्पा की संस्कृति अवश्य ही नगरों की संस्कृति है जिसकी खुदाई से इसके विनाश का संकेत मिलता है। इस परिस्थिति में ऋग्वेद की संस्कृति सिंधु-घाटी संस्कृति के बाद की प्रतीत होती है। दास समृद्ध थे और आर्यों ने इन्द्र के नेतृत्व में उन्हें पराजित किया। ऋग्वेद की पौराणिक कथाओं के विषय में एक और रोचक तथ्य यह है कि विष्णु एवं शिव या रुद्र दोनों ही देवताओं को उतना महत्त्व नहीं मिला जितना कि बाद के पौराणिक धर्म में उन्हें मिलता है। यह स्पष्ट है कि बाद में ऋग्वेदकालीन देवताओं को वह विशिष्टता नहीं प्राप्त होती। उत्तरकाल में वरुण जल-देवता और इन्द्र विलास-प्रिय देवताओं के राजा के रूप में प्रसिद्ध होते हैं। बाद में पौराणिक एवं महा-काव्यीय धर्म में अन्य देवता भी दृष्टिगोचर होते हैं, परन्तु उनका स्वरूप बहुत ही क्षीण हो गया है। विष्णु, कृष्ण एवं शिव उत्तरकालीन युग के प्रमुख देवता हैं, परन्तु इनका ऋग्वेद में कोई भी महत्त्व नहीं है। ऋग्वेद के लोग प्राकृतिक देवताओं के उपासक थे और इनमें से अधिकतर देवता प्राकृतिक शक्तियों के मानवीकृत रूप हैं। वे अपने सरल यज्ञों में इन देवताओं को अपना परमप्रिय पेय सोम रस अर्पित करते थे और बदले में उनकी कृपादृष्टि की अपेक्षा रखते थे। ऋग्वेदकालीन लोगों की सरल मनोवृत्ति, देवताओं से उनके सम्बन्धों से नितान्त स्पष्ट है। पश्चिम के विद्वानों ने इन सम्बन्धों को आदान-प्रदान का धर्म कहा है। ऋग्वैदिक लोगों की श्रद्धा वस्तुतः उनकी अनेक ऋचाओं से बहुत ही स्पष्ट हो जाती है और हम यह निश्चयपूर्वक कह सकते हैं कि भक्ति सम्प्रदाय का प्रारंभ ऋग्वेद में देखा जा सकता है। इस सम्बन्ध में हम वसिष्ठ द्वारा वरुण को सम्बोधित मन्त्रों का उल्लेख कर सकते हैं जो कि सचमुच एक धर्मनिष्ठ भक्त हृदय के उद्गार हैं और जिनमें गीतात्मक मनोहरता है। कुछ पश्चिमी विद्वानों का यह मत कि भक्तिसम्प्रदाय पश्चिम से उधार लिया हुआ है, निराधार है। परन्तु इस सम्बन्ध में हम यह कह सकते हैं कि ऋग्वेद में पर्याप्त सामग्री है, जिससे भक्ति-सम्प्रदाय का विकास सम्यक् रूप से हो सकता था। इस प्रकार ऋग्वेद की पौराणिक कथाएँ अपना एक महत्त्व रखती हैं, क्योंकि उत्तरकालीन पौराणिक युग की बहुत-सी महत्त्वपूर्ण विचार धाराएँ ऋग्वेद के विचारों से उत्पन्न हुई हैं।

ऋग्वेद के दार्शनिक विचारों के विषय में भी यही सत्य है। ऋग्वेद में ही सवप्रथम हमें मानव द्वारा सृष्टि, सृष्टिकर्ता तथा संसार के विकास के विषय में मूल प्रश्न पूछे गए मिलते हैं। बहुत सारे सूक्तों में ऐसे प्रश्न उठाए गए हैं और इन प्रश्नों का उत्तर पाने की गम्भीर चष्टा की गई है। ऐसा कहा जाता है कि दर्शन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

की उत्पत्ति सन्देह से होती है, और ऋग्वेद में हम ऋषियों को इन्द्र के अस्तित्व पर ही सन्देह प्रकट करते हुए पाते हैं। ऐसा भी अनुमान किया जाता है कि देवता सृष्टि के उत्तरवर्ती हैं और ऐसी स्थिति में मूल दार्शनिक प्रश्नों के उपयुक्त उत्तर शायद उन्हें भी ज्ञात नहीं होंगे। यह निश्चित ही भूल होगी, यदि हम ऋग्वेद को एक सुसंगत एवं सुव्यवस्थित दार्शनिक मत प्रदान करने वाला ग्रन्थ समझें। जैसा कि यह उपलब्ध है, इसमें हम विविध दार्शनिक मत पाते हैं, जो कि भिन्न-भिन्न ऋषियों के विचार हैं। इसमें विश्वकर्मा (X.82) के बारे में एक धारणा है कि वे विश्व के स्रष्टा हैं। इसे हम ईश्वरवादी दृष्टिकोण कह सकते हैं। विश्वकर्मा के पास सभी आवश्यक शक्तियाँ, ज्ञान एवं साधन हैं, जिससे कि वह विविध संसार की रचना कर सके। इस विचार के साथ-साथ पुरुष सूक्त (X.90) का भी एक विचार है, जिसके अनुसार सृष्टि एक यज्ञ का परिणाम है। यह स्पष्ट रूप से एक कर्मकाण्डीय धारणा है। देवताओं ने एक यज्ञ किया, जिसमें उन्होंने विराट् का बलिदान किया और उस बलिपशु के विभिन्न अंगों से विभिन्न जीव, तत्त्व, देवता जैसे सूर्य और चन्द्रमा तथा चार वर्णों पर आधारित सुसंगठित समाज उत्पन्न हुए। ब्रह्माण्ड तथा लघु ब्रह्माण्ड के भाव जो यहाँ प्रकट होते हैं, महत्त्वपूर्ण हैं, क्योंकि ये दो भाव मानव एवं ब्रह्माण्ड की संगतता की ओर संकेत करते हैं। यह समरूपता की धारणा की ओर पहला चरण है और इससे फिर दोनों की प्रख्यात एकात्मकता की धारणा उत्पन्न हुई। मानव ब्रह्माण्ड से अनिवार्य रूप से सम्बद्ध है और शायद उसी अनादि-अनन्त सामग्री का बना है। 'हिरण्यगर्भसूक्त' (X:121) में आदिम जलाशय एवं स्वर्ण डिम्ब के बारे में चर्चा है। सृष्टिकर्ता इस डिम्ब में रहता था, जो कुछ समय बाद दो गोलार्धों में विभक्त हो गया था और इस संसार का प्रारम्भ हुआ था। इसे सृष्टि की रचना का पौराणिक मत समझा जा सकता है जिसमें कल्पना, अतिशयोक्ति एवं कवित्व के तत्त्व सम्मिलित हैं। परन्तु ऋग्वैदिक विचारधारा यहीं पर इन ईश्वरीय, पुरोहितों या सृष्टि सम्बन्धी देवताओं के विषय में काल्पनिक विचारों पर समाप्त नहीं हो जाती; क्योंकि यह 'नासदीयसूक्त' (X.129) में एक रहस्यात्मक ढंग से उत्पन्न हुई, जहाँ यह एक ऐसे मत की पुष्टि करती है जिसे उपनिषद् दर्शन की उत्पत्ति कह सकते हैं। यह मत दृढ़ता से कहता है कि प्रारम्भ में न तो सत् था और न ही असत्। प्रारम्भ में तो केवल अन्धकार था जिससे प्रत्येक वस्तु घिरी हुई थी। सृष्टि से पहले न मृत्यु थी और न ही अमरता। केवल एक तत्त्व था जो कि श्वास लेता था चाहे वायु न भी हो। देवता भी जो कि अन्य तत्त्वों के समान सृष्टि के बाद अस्तित्व में आए, स्वभावतः सृष्टि की रचना के मूल कारण तथा विश्व में इसकी स्थिति के बारे में नहीं जानते हैं। यह सूक्त विचार एवं अभिव्यक्ति दोनों के लिए असाधारण है। हमें सन्देह है कि क्या मानव विचारशक्ति, गूढ़ समस्याओं का इससे आगे परीक्षण कर सकती

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

है। इस सूक्त को मैक्समूलर ने उचित ही ऋग्वैदिक ऋषि की तेजस्वी उपलब्धि माना है। पुराणशास्त्र में ऋग्वेद की विचारधारा अनेक देवतावाद के भाव से एक ईश्वरवाद के भाव की ओर बढ़ी। दर्शनशास्त्र में एक ईश्वरीय स्रष्टा की कल्पना से एकेश्वरवाद का यह सिद्धान्त सांसारिक 'द्वय' से भी आगे विकसित हुआ। नासदीयसूक्त ने न केवल उपनिषद् को ही सामग्री प्रदान की है बल्कि इसके अतिरिक्त बाद के दार्शनिक विचारों, जैसे सांख्य एवं वेदान्त को भी सामग्री दी है। इसलिए हम कह सकते हैं कि भारतीय दर्शनशास्त्र ऋग्वेद से ही प्रारम्भ होता है।

'संवादसूक्त' लगभग बीस सूक्तों का समूह है जो कि महाकाव्य एवं नाट्य काव्य की संयोजक कड़ी है। ये हैं—विश्वामित्र एवं नदी, पुरूरवा एवं उर्वशी (×.95), सरमा एवं पणि; यम एवं यमी (×.10) तथा अगस्त्य एवं लोपामुद्रा के बीच के संवाद एवं 'वृषाकपिसूक्त' आदि। ये संवाद जिन्हें पात्र आगे बढ़ाते हैं प्रेम, हास्य, करुणा एवं वीरता जैसे मानवीय भावों का चित्रण करते हैं। इन संवाद सूक्तों का अनुष्ठानों से कोई सम्बन्ध प्रतीत नहीं होता है। इन सूक्तों एवं मायाजाल में सम्बन्ध की कल्पना करने में भी कठिनाई आती है। संवाद श्लोकों में हैं और कहानी की कल्पना वार्तालाप से करनी पड़ती है। प्रेमी पुरूरवा को उसकी हृदयहीन प्रेमिका उर्वशी छोड़कर चली जाती है। भ्राता यम अपनी बहन यमी के प्रेम को अस्वीकार कर देता है। इन्द्र एवं इन्द्राणी में बन्दर 'वृषाकपि' की चपलता के कारण झगड़ा हो जाता है। विश्वामित्र विपाश् एवं शुतुद्री नदियों से प्रार्थना करते हैं कि वे उनका पथ सुगम बनाएँ। सरमा देवताओं को चुराई गई गायों का समाचार देतीं है। ओल्डेनबर्ग का मत है कि ये 'आख्यान-सूक्त' हैं और इनके गद्य भाग लुप्त हो गए हैं; क्योंकि पात्रों को अपनी इच्छा के अनुसार गद्य में बोलने की स्वतन्त्रता थी; परन्तु उनसे आशा की जाती थी कि वे दिए हुए मन्त्रों के अनुकूल ही बोलेंगे। समुचित प्रमाण न मिलने के कारण ओल्डेनबर्ग के मत को स्वीकार करना बहुत कठिन है। इनका वास्तविक स्वरूप जो भी हो ये सूक्त साहित्यिक सौन्दर्य से भरपूर हैं। इनमें प्रवाह एवं ओज भी है और हमें यहाँ संस्कृत नाटक का प्रारम्भिक रूप मिलता है। इसी प्रकार 'दानस्तुति' सूक्तों में जिनमें कि उदार संरक्षकों की प्रशंसा की गई है, हमें बाद के वीरगाथा काव्य का प्रारम्भिक स्वरूप देखने को मिलता है।

भारतीय इतिहास के दृष्टिकोण से ऋग्वेद बहुत ही अधिक महत्त्वपूर्ण है। प्राचीन भारतीय इतिहास के विद्वान् समान रूप से दो परम्पराओं का वर्णन करते हैं—ब्राह्मणों तथा क्षत्रियों या पौराणिक परम्परा की। कीथ पुराणों की विश्वसनीयता पर सन्देह करते हैं, जबकि पारजीटर का झुकाव उन्हें बहुत अमूल्यवान् एवं महत्त्वपूर्ण मानने की ओर है। वास्तव में ऐसा प्रतीत होता है कि ऋग्वेद की प्राचीनता

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

और इसका विशुद्ध रूप परिरक्षण पुराणों की तुलना में इसके महत्त्व को सिद्ध कर देते हैं। इसके अतिरिक्त, पुराणों में सामान्यतः वेदकालीन विवरण हैं और इनमें कोई विशेष मतभेद नहीं है। ऋग्वेद एवं पुराणों का उचित महत्त्व समझने के लिए हमें इन दोनों ग्रन्थों में प्रतिबिम्बित सामाजिक एवं राजनैतिक परिस्थितियों का अन्तर ध्यान में रखना होगा। ऋग्वेद वास्तव में कुरु-पाञ्चालों की रचना है। हमें यहाँ ऋग्वेद से जो ऐतिहासिक ज्ञान प्राप्त होता है, उसे संग्रह करने का प्रयास नहीं करना चाहिए; परन्तु हम ऋग्वेद के युग के केवल प्रमुख ऐतिहासिक तथ्यों का उल्लेख करके ही सन्तोष करेंगे। 'दाशराज्ञयुद्ध' अर्थात् दस राजाओं का युद्ध एक महत्त्वपूर्ण घटना है जिसका संकेत बार-बार ऋग्वेद में मिलता है (VII. 3)। इस युद्ध में ऋग्वेद-कालीन प्रमुख जातियों तथा लोगों ने भाग लिया था। सुदास पिजवन त्रित्सु वंश का एक भरत राजा था। विश्वामित्र कौशिक उसका पुरोहित था और उसने अपने राजकीय संरक्षक को विपाश् एवं शुतुद्री के तटपर युद्ध में सफल बनाया। ऐसा प्रतीत होता है कि कुछ समय बाद सुदास ने विश्वामित्र को उच्चपद से सेवामुक्त कर दिया और वसिष्ठ को उसके स्थान पर नियुक्त कर दिया। इस सेवामुक्ति से रुष्ट होकर विश्वामित्र ने उसके विरोध में दस राजाओं या जन-जातियों के षड्यन्त्र का नेतृत्व किया, जिसमें पुरु, यदु, तुर्वश, अनु, द्रुह्यु तथा पाँच अन्य राजा—अलिन, पक्थस्, भलानस्, शिव एवं विषाणिन् ने भाग लिया। यह युद्ध परुष्णि नदी के किनारे हुआ। वसिष्ठ के नेतृत्व में भरत विजयी हुए। वसिष्ठ को हम यह घोषणा करते देखते हैं—'वसिष्ठ का पौरोहित्य सत्य सिद्ध हुआ, जब उसने त्रित्सुओं का नेतृत्व किया।' द्रुह्यु राजा डूब गए और पुरुवंश का पुरुकुत्स मारा गया। भरतों ने इस प्रकार अपने आधिपत्य के विरोध को सफलता से समाप्त कर दिया। सुदास की सत्ता को एक और आशंका थी और उसे तीन अनार्य जनजातियों—अजस्, शिग्रस् तथा यक्षुप् से जो भेद राजा के नेतृत्व में थीं, इस बार यमुना नदी के तटों पर युद्ध करना पड़ा। सुदास ने अपने शत्रुओं को पूर्णतः परास्त कर दिया और इस तरह एक विशाल हत्याकाण्ड हुआ। इन्हीं भरत लोगों ने अपना नाम इस देश को दिया जिसे भारत कहते हैं। वे यमुना एवं सरस्वती नदियों के बीच के प्रदेश में बसे हुए थे। सुदास के अधीन तथा त्रित्सुओं के साथ उन्होंने उन्नति की और सरस्वती, दृषद्वती तथा अपाया नदियों के तटों पर अपने यज्ञ किए। यह वही क्षेत्र है जो बाद में प्रख्यात कुरुक्षेत्र के नाम से प्रसिद्ध हुआ। पुरु इन भरतों के शत्रु थे और सरस्वती के तट पर बस गए थे। त्रित्सु तथा भरत दोनों जातियों के यथार्थ सम्बन्धों पर विद्वान लोगों ने बहुत अनुमान लगाया है। ओल्डेनबर्ग को त्रित्सु भरतों के पुरोहित प्रतीत होते हैं और वह उन्हें तथा वसिष्ठों को एक ही समझता है। गेल्डनर को वे भरतों के राजवंशी प्रतीत होते हैं। जिमर उन्हें भरतों के शत्रु मानता है। त्रित्सु, भरत, तथा पुरु मिलकर बाद में कुरु बने। महाभारत

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

युग के कुरु-पाञ्चाल युद्ध की चर्चा की आवश्यकता यहाँ नहीं है, हम इससे भली-भाँति परिचित हैं। हम ऋग्वेद में चर्चित अन्य जन-जातियों, जिन्होंने बाद में भूमिका निभाई है, का वर्णन भी यहाँ नहीं करना चाहते। परन्तु यह कहना पर्याप्त होगा कि भारत की ऐतिहासिक घटनाओं की चर्चा हमें सर्वप्रथम ऋग्वेद में ही मिलती है। यह मत कि महाभारत का युद्ध ऋग्वैदिक दाशराज्ञयुद्ध का परिवर्धन है कठिनाई से ही माना जा सकता है।

ऋग्वेद में केवल आर्यों का ही नहीं अपितु दासों का भी जीवन प्रतिबिम्बित है। दासों के पास काफी धन था। वे बहुत शक्तिशाली थे तथा उनके अपने राज्य थे। इलिबिस, धुनि, शम्बर, वर्चिन एवं पिप्रु उनके नेता प्रतीत होते हैं। आर्यों के इन शत्रुओं को, जो कि सांसारिक राजा थे, पौराणिक स्तर पर इन्द्र के शत्रु माना गया है। कुछ दास जन-जातियाँ, जिनका वर्णन किया गया है, किरात, कीकट, पर्णक, सिन्यु आदि हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि दस्यु लोगों का धर्म आर्यों से भिन्न था; क्योंकि उन्हें अनुष्ठान रहित, ईश्वर रहित, यज्ञ न करने वाले, धार्मिक नियमों से रहित, और अजीब-सी प्रथाओं को मानने वाले कहा गया है। इस प्रकार ऋग्वेद प्राचीन भारत के सांस्कृतिक तथा राजनैतिक जीवन एवं घटनाओं के विषय में बहुत महत्त्वपूर्ण ज्ञान प्रदान करता है। उस जीवन का घटनास्थल पंजाब है जैसा कि विभिन्न नदियों के नाम से साफ-साफ पता लगता है। ये नदियाँ शुतुद्री, विपाश्, परुष्णि, असिक्नी तथा वितस्ता क्रमशः आज की सतलज, व्यास, रावी, चिनाव एवं झेलम ही हैं, और इन्हें पहचानने में कोई भी कठिनाई नहीं होती है। ऋग्वेद के सूक्तों में अफगानिस्तान का कुछ भाग, पंजाब, सिंध एवं राजपुताना का कुछ भाग, उत्तर-पूर्वी सीमान्त तथा कश्मीर का कुछ भाग प्रतिबिंबित होता है। मैक्समूलर, वेवर तथा अन्य विद्वानों का मत है कि ऋग्वेद का मुख्य भाग पंजाब में लिखा गया था, जबकि हापकिन्स एवं कीथ का मत है कि इसकी रचना सरस्वती के आसपास अम्बाला के दक्षिण में हुई। हर्टेल, ब्रनहाँफर तथा अन्य कुछ विद्वानों का विचार है कि यह अफगानिस्तान एवं ईरान में लिखा गया। ऐसी अटकलबाजी में पड़ना बिल्कुल व्यर्थ है; क्योंकि ऋग्वेद के अध्ययन से यह पूर्ण रूप से स्पष्ट होता है कि लोग संपूर्ण पंजाब से परिचित थे और ऐसा प्रतीत होता है कि लोगों ने उसके सबसे अच्छे एवं सबसे उपजाऊ भाग को अपने अधिकार में कर रखा था।

ऋग्वेदकालीन सामाजिक जीवन एवं संस्कृति का उल्लेख स्पष्ट रूप से 'पुरुषसूक्त' में है। परिवार समाज का आधार था जिसमें चार वर्ण स्पष्ट रूप से थे। यह संभव है कि यह जाति प्रथा उतनी कठोर नहीं रही होगी, जितनी कि बाद में हो गई। परन्तु हम यह कह सकते हैं कि 'दस्यु' एवं अन्य आदिवासी लोगों को जब परास्त करके ऋग्वैदिक समाज में मिला लिया जाता था तो उन्हें शूद्र के

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नाम से पुकारा जाता था। महिलाओं को सामाजिक जीवन में स्वतन्त्रता थी और वे अपने पतियों का चयन स्वतन्त्रता से कर सकती थीं। विवाह सूक्तों में हमें मनुष्यों के मन के उच्च आदर्शों का अच्छा अनुमान लगता है। वैवाहिक जीवन के उच्च आदर्श बहुत स्थानों में प्रतिविम्बित हैं। शिक्षा मौखिक रूप में दी जाती थी। ऐसा प्रतीत होता है कि संगीत, नृत्य एवं दौड़ मनोरंजन के साधन थे। आभूषणों एवं उत्तम वस्त्रों का प्रयोग होता था। ऋग्वेद के लोग ग्रामीण थे और कृषि तथा गाय-बैलों का उनके लिए बहुत अधिक महत्त्व था। धातुओं के गलाने, चर्म शोधन, बढ़ई द्वारा रथ बनाने एवं जुलाहे के उत्तम वस्त्र बुनने के उल्लेख हैं। राजा का एक विशाल महल था और दो समितियाँ उसकी सहायता करती थीं, जिन्हें सभा एवं समिति कहा जाता था। सभा में विशिष्ट वर्ग के प्रतिनिधि होते थे जबकि समिति एक विशाल सभा थी जिसमें समाज के अन्य वर्गों का प्रतिनिधित्व होता था। ग्राम एवं कुल उस समय की प्रणाली की प्रशासनिक इकाइयाँ प्रतीत होती हैं। सेनानी तथा पुरोहित सबसे महत्त्वपूर्ण राजकीय पदाधिकारी थे। अपराधों के लिए नरम दण्ड थे परन्तु अग्निपरीक्षा की प्रथा विद्यमान थी। जीवन के प्रति ऋग्वैदिक लोगों का दृष्टिकोण बहुत ही आशावादी एवं स्वस्थ था। वे अमरत्व या देवताओं के साथ मित्रता की कामना करते रहे होंगे, परन्तु निष्कर्षतः ऐसा प्रतीत होता है कि वे लम्बे जीवन, सुखी परिवार, समृद्धि, गाय-बैलों तथा शत्रुओं के भय से स्वतन्त्रता प्राप्त करने के लिए उत्सुक रहे होंगे। हम यह निश्चित रूप से कह सकते हैं कि निराशावाद, जो कि उपनिषद् युग की विचारधारा में प्रबल था, का यहाँ कोई संकेत नहीं है। हम यहाँ वीर, योद्धा एवं प्रसन्न मुख पुरुषों को पाते हैं जो कि इस जीवन में तीव्र रुचि रखते थे न कि जीवन से हतोत्साह होते थे।

साहित्यिक मूल्यांकन की दृष्टि से ऋग्वेद मूलतः काव्य है जिसके पीछे परम्परा, अभ्यास तथा उत्प्रेरणा की भावना है। कतिपय कवि अपने पूर्वजों की भाँति गीत लिखते थे। उनकी शैली रूढ़िवादी है क्योंकि ऐसा प्रतीत होता है कि वे अनुकरण से आनन्दित होते थे। इसके अतिरिक्त नए गीत 'ब्रह्म-नव्यम्' की रचना करने की इच्छा भी अक्सर मिलती है जिससे कि देवताओं के हृदयों का स्पर्श हो सके और उन्हें कवि को वरदान देने के लिए प्रेरित किया जा सके। इसलिए यह कहना कि ऋग्वेद केवल पुरोहितों का एवं अनुष्ठानों से पूर्ण काव्य है व्यर्थ होगा और इसकी अन्धाधुन्ध निन्दा करना निरर्थक होगा। न ही यह कहना उचित होगा कि यहाँ मानवता अपने उषा काल में गाती हुई प्रतीत होती है; क्योंकि यह इस संग्रह का अत्यधिक उत्साहपूर्ण मूल्यांकन होगा। ऋग्वेद विभिन्न प्रकार की सामग्री, अनुष्ठानों के वर्णन, धार्मिक सामग्री आदि से भरा है। स्वर्णिम मध्यम मार्ग सबसे विश्वसनीय एवं उपयुक्त मार्ग प्रतीत होता है। कवियों को अपने कृतित्व का

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विचार सर्वदा रहता है। हमें गीतात्मक मणियाँ, रोचक एवं ओजस्वी संवाद तथा एकालाप, युद्धगाथा, तथा देवताओं से निष्कपट निवेदन मिलते हैं और ये सब मानव इतिहास, उसकी सभ्यता एवं साहित्य के लिए ऋग्वेद को एक अत्यधिक मूल्यवान लिखित प्रमाण बना देते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

II. 2 अथर्ववेद

अथर्ववेद विषय वस्तु एवं भाव की दृष्टि से ऋग्वेद से तत्त्वतः भिन्न है। ऋग्वेद में यदि हम देवताओं का उल्लेख पाते हैं जिन्हें प्रकृति की शुभ शक्तियाँ एवं ईश्वरीय प्राणी माना जाता है, तो अथर्ववेद में हमें भूत-प्रेतों का वर्णन मिलता है। ऋग्वेद के सूक्त वास्तव में प्रार्थनाएँ हैं जिनका उपयोग एक भक्त अपने इष्टदेव से वरदान प्राप्त करने के लिए करता है। इसके विपरीत, अथर्ववेद के सूक्त विभिन्न प्रकार के मन्त्र-तन्त्र एवं वशीकरण-मन्त्र हैं जिनके द्वारा तन्त्रजालिक प्रेतात्माओं को वश में करने के प्रयास करते हैं। ऋग्वेद के मन्त्रों एवं अनुष्ठानों का लक्ष्य प्रायः सामाजिक है क्योंकि प्रार्थनाएँ समाज के हित के लिए की जाती हैं। इसके विपरीत अथर्ववेद के सूक्त अधिकतर व्यक्तिगत है, क्योंकि इसके द्वारा व्यक्ति अपनी अभिलाषाओं एवं आकांक्षाओं की पूर्ति करने का प्रयास करता है। हम यह कह सकते हैं कि ऋग्वेद के मन्त्र एवं अनुष्ठान सामाजिक वर्ग पर केन्द्रित हैं जबकि अथर्ववेद के इन्द्रजाल का केन्द्र गृह-क्षेत्र है। यह प्रायः कहा जाता है कि अथर्ववेद के मन्त्रों का लक्ष्य संतुष्ट करना, वरदान देना एवं अभिशाप देना है। इस कथन से वास्तव में अथर्ववेद के इन्द्रजाल एवं मन्त्र-तन्त्र के दोनों पहलुओं का उल्लेख होता है। इन्द्रजाल एवं इससे सम्बद्ध मन्त्र-तन्त्र का कुछ भाग ऐसे शत्रुओं का नाश करने के लिये प्रयुक्त किया जाता है जिनसे कोई घृणा करता हो और इसीलिए उसका नाश करना चाहता हो। इसलिए इनका स्वरूप अभिशापों का होता है, जिसका शत्रु पर उच्चार किया जाता है। इस इन्द्रजाल का दूसरा भाग इस अर्थ में शुभ होता है कि इसके द्वारा हम अपना गृह-सुख, कृषि एवं भौतिक समृद्धि प्राप्त करने का प्रयास करते हैं। इस प्रकार अथर्ववेद के दो स्वरूप हैं—अभिशाप एवं वरदान। अभिशाप से सम्बन्धित अनुष्ठानों का समुचित नाम 'अभिचार क्रिया' है। राजकीय पुरोहित से आशा की जाती थी कि वह इसमें निपुण होगा। तदनुसार अथर्ववेद के दो रचयिता हैं। अथर्ववेदद को अथर्वाङ्गिरस वेद कहना

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उपयुक्त ही है। दुर्भावपूर्ण अभिचार का सम्बन्ध अंगिरस से तथा सद्भावपूर्ण इन्द्रजाल का सम्बन्ध अथर्वन् से है। अथर्वन् वास्तव में अवेस्ता का अथर्वन है और इसलिए अथर्ववेद में ऐसे तत्त्व हैं जो वस्तुतः भारत-ईरानी युग से चले आ रहे हैं। अथर्ववेद के इन्द्रजालों में उपलब्ध अन्धविश्वास एवं अन्य बातें वास्तव में भारत-जर्मनी काल से ही आ रहे हैं। जल-परियों (अप्सराओं) में विश्वास और मानव शरीर में हड्डियों के होने की धारणा इत्यादि इसके उदाहरण हैं। इसलिए अथर्ववेद ऋग्वेद से अधिक रोचक है, क्योंकि यह प्रागैतिहासिक युग के विश्वासों एवं अन्धविश्वासों का चित्र प्रस्तुत करता है।

अथर्ववेद 731 सूक्तों का संग्रह है, जिसमें लगभग 6000 मन्त्र हैं और यह 20 काण्डों में विभाजित है। अन्तिम दो काण्ड संहिता के भाग नहीं थे बल्कि बाद में जोड़े गए हैं। लगभग सम्पूर्ण 20वें काण्ड की रचना ऋग्वेद से अक्षरशः लिए हुए मन्त्रों के रूप में की गई है। सच तो यह है कि अथर्ववेद का बहुत बड़ा भाग ऋग्वेद से मिलता-जुलता है। अथर्ववेद के प्रथम 18 काण्डों को इसके सम्पादकों ने एक निश्चित योजना के अनुसार क्रमबद्ध किया है। पहले सात काण्डों में छोटे सूक्त हैं जो मन्त्रों की गणना के अनुसार क्रमबद्ध किए गए हैं। इस प्रकार प्रथम काण्ड में चार मन्त्रों के सूक्त हैं, दूसरे काण्ड में पाँच मन्त्रों के, तीसरे काण्ड में छह मन्त्रों के तथा चौथे काण्ड में सात मन्त्रों के और पाँचवें काण्ड में कम से कम आठ और अधिक से अधिक अठारह मन्त्रों से हैं। छठे काण्ड में 142 सूक्त हैं, जिनमें से प्रत्येक में तीन मन्त्र हैं। सातवें काण्ड में 118 सूक्त हैं जो केवल एक या दो मन्त्रों के हैं। आठवें, चौदहवें, सतरहवें और अठारहवें काण्डों में बड़े-बड़े मन्त्र हैं, सबसे छोटे काण्ड में 21 मन्त्र हैं और सबसे लम्बे काण्ड में 89 श्लोक हैं। पन्द्रहवें और सोलहवें काण्ड गद्य में हैं और भाषा एवं शैली में ब्राह्मण ग्रन्थों से मिलते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि सम्पादकों ने विषय सामग्री पर भी कुछ ध्यान दिया है। एक से सात काण्डों तक के प्रथम खण्ड में विविध विषय के छोटे-छोटे सूक्त हैं, आठवें से बारहवें काण्ड तक विविध विषय के लम्बे-लम्बे सूक्त हैं। तेरहवें काण्ड में केवल वैवाहिक प्रार्थनाएँ तथा अठारहवें काण्ड में केवल अन्त्येष्टि सम्बन्धी सूक्त हैं।

अथर्ववेद को क्षत्रवेद भी कहते हैं ,क्योंकि इसमें राजा के राज्याभिषेक एवं उसके प्रशासन से सम्बद्ध अनुष्ठानों का उल्लेख है। अथर्ववेद का राजकर्माणि नाम राजकर्मों से सम्बद्ध सूक्तों के कारण पड़ा है। राज्याभिषेक से सम्बद्ध अनुष्ठान में इन्द्र-जाल का भी प्रयोग मिलता है। बाघ की खाल वीरता एवं प्रभुत्व की सूचक थी। यह तथ्य इस बात की ओर संकेत करता है कि आर्य भारत के पूर्व भाग में भी गए थे और वे बाघ से परिचित थे। परन्तु नीरोग करने वाले मन्त्र 'भैषज्यानि' अत्यन्त रोचक हैं। इन मन्त्रों का लक्ष्य रोगी को विभिन्न रोगों एवं व्याधियों से आराम

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दिलवाना है। सद्भावपूर्ण इन्द्रजाल यहाँ भी अत्यावश्यक भूमिका निभाता है। भारतीय चिकित्सा-शास्त्र के इतिहास के दृष्टिकोण से अथर्ववेद का यह भाग रुचिकर है। अथर्ववेद के चिकित्सासूक्त और बाद के बौद्ध ग्रन्थ 'महावग्ग' भारतीय चिकित्सा-शास्त्र के इतिहास की दृष्टि से आदि स्रोत हैं। इसी प्रकार प्रायश्चित्त से सम्बद्ध मन्त्र भी बहुत रुचिकर हैं। इन गीतों का लक्ष्य मनुष्य को उसके किए हुए नैतिक पापों एवं अपराधों से मुक्ति दिलाना है और इस सम्बन्ध में ये बाद के धर्म-शास्त्रों के लिए स्रोत सामग्री सिद्ध होते हैं।

स्वास्थ्य एवं दीर्घायु की प्रार्थनाएँ 'आयुष्याणि' वस्तुतः स्वास्थ्य के निमित्त प्रयुक्त मन्त्र-तन्त्र से भाव में विशेष भिन्न नहीं हैं। ये मन्त्र अधिकतर पारिवारिक उत्सवों, जैसे बालक के मुण्डन तथा उपनयन आदि के अवसर पर पढ़े जाते थे। इन मन्त्रों से सम्बद्ध 'पौष्टिकानि' नामक मन्त्र हैं जिनके माध्यम से कृषक पशु-पालक और व्यापारी सुख एवं समृद्धि प्राप्त करने की आशा करते हैं। इनमें भवन-निर्माण करते समय की प्रार्थनाएँ एवं चक्की चलाने, बोआई, अनाज की पैदावार, वर्षा, लाभप्रद व्यापार, अच्छे भाग्य, जुआ के खेल में लाभ इत्यादि के लिए मंगल-कामनाएँ सन्निविष्ट हैं। इनमें खेत के कीड़े-मकोड़ों, अग्नि, जंगली जानवरों तथा डाकुओं के विरुद्ध मन्त्र-तन्त्र भी हैं। 'मृगार सूक्तानि' (1.23-25) सात-सात मन्त्रों के सात सूक्तों की स्तुति-माला है, जिसमें अग्नि, इन्द्र, वायु तथा सविता, द्यावा-पृथिवी, मरुत्, भव, शर्व, मित्र एवं वरुण की प्रार्थना विपत्तियों से मुक्ति पाने के लिए की जाती है। 'कुन्तापसूक्त' (20.127-36) एक बहुत ही रोचक संकलन है। इसमें उपासना-पद्धतियाँ भरी हैं जो ऋग्वेद की 'दानस्तुतियों' से मिलती-जुलती है। अंशतः ये 'ब्रह्मोदय' से मिलती-जुलती हैं जिनमें पहेलियाँ और उनके समाधान दिए हुए हैं। शेष में लोकप्रिय सूक्त है जिनमें कुछ अश्लील सूक्त एवं अश्लील परिहास हैं।

अथर्ववेद के दार्शनिक सूक्त एक प्रकार से अद्वितीय हैं। ऋग्वेद में भी दार्शनिक सूक्त हैं, परन्तु अथर्ववेद के सूक्तों का उनसे सम्बन्ध नहीं के बराबर है। इसके दार्शनिक विचार एवं पारिभाषिक शब्दावली ब्रह्मन्, तपस्, असत्— जो यहाँ प्रयुक्त हैं, से इनकी उत्पत्ति की एक अन्य दिशा की ओर संकेत मिलता है जो कि पुरोहितों के क्षेत्र से भिन्न है और जिससे संभवतः ऋग्वेद के दार्शनिक सूक्तों की उत्पत्ति हुई होगी। इस संदर्भ में काल एवं स्कम्भ के प्रति सम्बोधित सूक्त विचारणीय हैं। इस बात को ध्यान में रखते हुए कि अथर्ववेद को क्षत्रवेद माना जाता है, कुछ विद्वानों का विचार है कि इन दार्शनिक विचारों के पीछे क्षत्रियों का हाथ रहा होगा। इन विद्वानों के अनुसार ये विचार बाद में उपनिषदों में पूर्ण रूप से विकसित हुए हैं। अतः सम्भवतः ऋग्वेद एवं ब्राह्मण ग्रन्थों से हमें ब्राह्मणों की विचारधारा मिलती है और उपनिषद् एवं अथर्ववेद से क्षत्रिय

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विचारधारा का परिचय मिलता है।

अथर्ववेद का वास्तविक महत्त्व इस तथ्य में है कि इसमें हमें विशुद्ध लोक-प्रचलित विश्वास, धर्म एवं जादू-टोना का ज्ञान प्राप्त होता है जो कि पुरोहितों के धर्म से प्रभावित नहीं हुआ था। मानवविज्ञान-वेत्ता के लिए यह अथर्ववेद अत्यधिक महत्वपूर्ण है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

II. 3 यजुर्वेद

यजुर्वेद संहिता वास्तव में अध्वर्यु पुरोहित की प्रार्थना पुस्तक है। पतञ्जलि कहते हैं कि यजुर्वेद की 101 शाखाएँ थीं। ऐसा प्रतीत होता है कि यज्ञीय अनुष्ठान, उनके सम्पादन की विधि एवं उनके महत्त्व के विषय में मत-वैभिन्य के कारण इसकी इतनी अधिक शाखायें रही होंगी। हमें यजुर्वेद की 5 संहिताएँ ज्ञात हैं। वे हैं—काठक संहिता, कपिष्ठल-कठ संहिता, मैत्रायणीय संहिता, तैत्तिरीय संहिता (आपस्तम्ब संहिता) तथा वाजसनेय संहिता। ध्यान देने की बात यह है कि पहली चार शाखाएँ आपस में सम्बन्धित हैं और कृष्ण-यजुर्वेद से सम्बन्ध रखती हैं और अन्तिम वाजसनेय संहिता दो पाठों में प्राप्त हैं—एक काण्व शाखा का एवं दूसरा माध्यन्दिन शाखा का जो शुक्ल यजुर्वेद से सम्बन्ध रखते हैं।

अब हम कृष्ण यजुर्वेद एवं शुक्ल यजुर्वेद की चर्चा करते हैं। इन दोनों में भेद यह है कि शुक्ल यजुर्वेद अर्थात् वाजसनेयि संहिता में केवल मन्त्र, प्रार्थनाएँ एवं यज्ञीय सूत्र हैं जिनका उच्चारण पुरोहित द्वारा होता है, जबकि कृष्ण यजुर्वेद में मन्त्रों के अतिरिक्त यज्ञ की विधि का विवरण और उसके विषय में विचार-विमर्श भी हैं। यह वास्तव में ब्राह्मण ग्रन्थ है, इसलिए हम यह कह सकते हैं कि कृष्ण यजुर्वेद संहिताएँ संहिता एवं ब्राह्मण के मिश्रित रूप हैं। इसके विपरीत शुक्ल यजुर्वेद केवल मन्त्रों का वर्णन करता है, ब्राह्मण ग्रन्थों का नहीं। इस बात की भी सम्भावना बहुत अधिक है कि पुरोहित, जो यज्ञों में यज्ञीय मन्त्रों का उच्चारण करते थे, यह जानने के लिए उत्सुक रहते थे कि उच्चारित मन्त्रों एवं सम्पादित कार्य में क्या सम्बन्ध है। इसलिए कृष्ण यजुर्वेद की संहिताओं की रचना हुई। ये संहिताएँ वाजसनेय संहिता से पुरानी हैं, जिन्हें धर्म विषयक विचार-विमर्श के बिना संकलित किया गया होगा और जिनमें अन्य संहिताओं की भाँति केवल मन्त्र है।

यजुर्वेद एक अनुष्ठान विषयक संहिता है जो अनिवार्य रूप से यज्ञ से सम्बद्ध

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

है। वाजसनेय संहिता शुक्ल यजुर्वेद की संहिता है जिसमें केवल प्रार्थनाएँ एवं यज्ञीय सूत्र हैं। इनमें यज्ञीय अनुष्ठानों के बारे में धर्म विषयक चर्चाएँ नहीं हैं अर्थात् वे ब्राह्मण भाग से रहित हैं। वाजसनेय संहिता की विषय-वस्तु के निम्नलिखित संक्षिप्त विवरण से हमें यजुर्वेद के स्वरूप का अनुमान होता है। वाजसनेय में कुल 40 अध्याय हैं जिनमें से अन्तिम 22 बाद के हैं। प्रथम 25 अध्यायों में अत्यधिक महत्वपूर्ण यज्ञों के लिए प्रार्थनाएँ हैं। प्रथम दो अध्यायों में 'दर्शपूर्णमास' तथा 'पिण्डपितृयज्ञ' के लिए प्रार्थनाएँ हैं। तृतीय अध्याय में दैनिक अग्निपूजा के लिए प्रार्थनाएँ हैं, जिन्हें 'अग्निहोत्र' तथा 'चातुर्मास्य' कहते हैं। चौथे से आठवें तक के अध्यायों में सामान्य रूप से सोमयज्ञ और इससे सम्बद्ध पशुयज्ञ के लिए प्रार्थनाएँ हैं। सोमयज्ञ के दो प्रकार होते हैं—एक वह जो एक दिन में समाप्त हो जाता है (एकाह) और दूसरा वह जो कई दिनों तक चलता है (सत्र)।

'वाजपेय' एवं 'राजसूय' इन विभिन्न प्रकारों से सम्बद्ध हैं और इन दो प्रकार के यज्ञों के लिए प्रार्थनाएँ नवम एवं दशम अध्यायों में दी गई हैं। अग्नि-चयन, जो पूरे एक साल तक चलता है, के लिए प्रार्थनाएँ एवं यज्ञीय सूत्र ग्यारह से अठारह तक के अध्यायों में हैं। अग्निवेदी को अग्नि से अभिन्न समझा जाता है और वह 10800 ईंटों से बनाई जाती है। इसका आकार एक पंख पसारे हुए पक्षी जैसा होता है। प्रत्येक विस्तृत कार्य के लिए एक सूत्र दिया गया है। सौत्रामणि उत्सव के लिए चौदह से इक्कीस तक के अध्यायों में प्रार्थनाएँ हैं। इस उत्सव में सोम के स्थान पर सुरा रहती है और इन्द्र, सरस्वती एवं अश्विनी को भेंट चढ़ाई जाती है। सफलता चाहने वाले ब्राह्मण, विजय चाहने वाले क्षत्रिय, धन चाहने वाले वैश्य और देश से निष्कासित राजा को इस उत्सव को मनाने के लिए परामर्श दिया जाता था। बाईस से पच्चीस तक के अध्यायों में 'अश्वमेध' यज्ञ के लिए प्रार्थनाएँ दी गई हैं जिसे एक महान सम्राट् ही कर सकता था। इस अध्याय से आगे जो विवरण है वह परवर्ती काल का है। छब्बीस से पैंतीस तक के अध्यायों को परवर्ती काल की रचना मानते हैं और ये खिल (परिशिष्ट) कहलाते हैं। इनमें छब्बीस से उन्तीस तक के अध्यायों में पूर्व अध्यायों में की गई प्रार्थनाओं की अनुक्रमणिकाएँ हैं। तीसवें अध्याय में उन 184 लोगों की सूची है जिनकी बलि पुरुषमेध यज्ञ में होती है। इकतीसवें अध्याय में पुरुष यज्ञ का वर्णन है। पुरुषमेध एक रहस्यमय सिद्धान्त है और सम्भवतः यथार्थ नहीं है। यह निष्कर्ष हम इस तथ्य से निकालते हैं कि पुरुषमेध को 'उपनिषद्' कहा जाता है जिसका अर्थ रहस्यमय सिद्धान्त है। बत्तीसवाँ अध्याय उपनिषद् की तरह है, क्योंकि यहाँ सृष्टिकर्ता प्रजापति को ब्रह्मन् एवं पुरुष से अभिन्न समझा जाता है। चौंतीसवें अध्याय में कुछ मन्त्र हैं जिन्हें शिवसंकल्पोपनिषद् कहते हैं। 'सर्वमेधयज्ञ' के लिए

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रार्थनाएँ वत्तीस से चौंतीस तक के अध्यायों में हैं। पैंतीसवें अध्याय में अन्त्येष्टि क्रिया से सम्बन्धित मन्त्र हैं जिन्हें अधिकतर ऋग्वेद से लिया गया है। अध्याय 36-39 में प्रवर्ग्य अनुष्ठान के लिए प्रार्थनाएँ हैं। यह सूर्य से सम्बद्ध एक प्रतीकात्मक अनुष्ठान है। अन्तिम चालीसवाँ अध्याय प्रसिद्ध ईशोपनिषद् है। परवर्ती अध्यायों की विषयवस्तु स्पष्टत: वाद में जोड़ी हुई है, क्योंकि स्वरूप में यह प्रतीकात्मक एवं रहस्यमय है।

यजुर्वेद में विभिन्न प्रकार की प्रार्थनाएँ एवं यज्ञीय सूत्र हैं। ये आंशिक रूप से पद्य में एवं आंशिक रूप से गद्य में हैं। इस गद्य भाग को 'यजुस्' कहते हैं और इसलिए इसका नाम यजुर्वेद है। प्रार्थनाएँ यज्ञीय भेंट के समर्पण, यज्ञीय कर्म का संकेत, देवताओं की प्रशंसा या याचना, यज्ञकर्ता की इच्छाओं को अभिव्यक्त करने के लिए की जाती हैं। परन्तु, वहुत-सी प्रार्थनाओं का ठीक-ठीक लक्ष्य निश्चित करना कठिन है। अथर्ववेद के मन्त्रों की भाँति ये मन्त्र पुराने नहीं हैं परन्तु ये पुरोहितों की कूट कल्पना है। इसमें प्रहेलियाँ या ब्रह्मोद्य हैं। यजुर्वेद के शतरुद्रीय अध्याय में एक देवता को उसके हजारों नामों का उच्चारण करके प्रसन्न करने का उपाय देखने को मिलता है। देवताओं को यज्ञीय आहुति देते समय 'स्वाहा' शब्द का उच्चारण तथा पितरों को पिण्ड-दान करते समय 'स्वधा' का उच्चारण करते हैं। वषट्, वेत्, वत् तथा ओम् अन्य दुर्बोध्य सूत्र हैं। बाद के तन्त्रों में हम इन रहस्यमय अक्षरों का प्रयोग पाते हैं। यजुर्वेद के विषय-वस्तु के सर्वेक्षण से यह पूर्णत: स्पष्ट हो जाएगा कि यह नीरस ग्रन्थ केवल धर्म एवं प्रार्थना के दृष्टिकोण से महत्त्वपूर्ण है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

II. 4 सामवेद

पुराणों से हमें ज्ञात होता है कि सामवेद की 1000 संहिताएँ थीं। इनमें से हमें केवल तीन ही उपलब्ध हैं—कौथुमस, राणारणीय एवं जैमिनीय की संहिताएँ। इनमें से कौथुमस की संहिता सबसे अधिक प्रसिद्ध है। इस सामवेद संहिता के दो भाग हैं—अर्चिका एवं उत्तरार्चिका जो कि मन्त्रों के संग्रह हैं। अधिकतर छन्द ऋग्वेद से लिए गए हैं। इनके 1810 मन्त्रों में से लगभग 1735 ऋग्वेद संहिता में पाए जाते हैं, विशेषकर आठवें एवं नवम मण्डल में। सामान्य रूप से इसमें गायत्री छन्द का प्रयोग हुआ है और प्रगाथ शब्द की 'गा' धातु उनका सम्वन्ध गाने से सूचित करती है। शेष छन्द भी अन्य संहिताओं तथा अनुष्ठानों से सम्बन्धित रचनाओं में मिलते हैं। ऋग्वेद के छन्दों के भिन्न-भिन्न पाठ सामवेद प्रस्तुत करता है परन्तु आलोचनात्मक दृष्टिकोण से इनका महत्त्व लगभग नहीं के बराबर है, क्योंकि ये कई प्रकार के परिवर्तन हैं—मनमाने, संयोग से और कई बार स्वेच्छा से।

अर्चिका एवं उत्तरार्चिका में मूल पाठ लय के अधीन है। उद्गाता अर्चिका की सहायता से लय सीखता है और उत्तरार्चिका से गाने योग्य स्तोत्रों को कण्ठस्थ कर लेता है अर्थात् सीखता है। सामन् शब्द का मूल अर्थ लय या स्वर है। भारतीय मत है कि लय ऋग्वेदीय छन्दों से उत्पन्न हुई है। दूसरे शब्दों में ऋक् सामन् की 'योनि' (मूल) है। अर्चिका में पाँच सौ पच्चासी (58.5) एक श्लोकात्मक मन्त्र हैं, जो बहुत सारी योनियाँ हैं। इसके विपरीत उत्तरार्चिका में चार सौ गीत हैं जिनमें से प्रत्येक वहुधा तीन पद्यों का है। अर्चिका में पद्यों की व्यवस्था छन्द तथा देवता के अनुसार है—अग्नि, इन्द्र, सोम इत्यादि। उत्तरार्चिका में गीत की व्यवस्था यज्ञों की प्रधानता के अनुसार है। एक स्तोत्र में साधारण रूप से तीन अवतरण होते हैं और ये सभी अर्चिका से सीखी हुई किसी लय से गाए जाते हैं। इसलिए उत्तरार्चिका एक संगीत की पुस्तक है और अर्चिका एक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लय ग्रन्थ है। अर्चिका में ऐसी बहुत सारी लय हैं जिनका प्रयोग उत्तरार्चिका के गीत के लिए नहीं होता है और उत्तरार्चिका में ऐसे बहुत से गीत हैं जिनके लिए अर्चिका में कोई लय नहीं है। इस तथ्य से यह विश्वास किया जाता है कि उत्तरार्चिका की उत्पत्ति बाद में हुई। यह स्मरण रखना आवश्यक है कि उत्तरार्चिका एवं अर्चिका दोनों गान प्रस्तुत करती हैं—जहाँ लय संगीत के स्वरों से निर्दिष्ट की जाती हैं और मूल पाठ वैसे ही दिया गया है, जैसे गाया जाता है अर्थात् अक्षरों के विस्तार से, अक्षरों को दोहराने एवं विलोपन से तथा स्तोभ प्रस्तावना से। सात स्वरों को अंकों—1, 2, 3, 4, 5, 6, 7 से सूचित किया जाता है। ग्राम-गेयगान एवं अरण्यगान भी हैं, जो गाँवों एवं जंगलों में गाए जाने वाले गीत हैं, अरण्यगानों में संकटपूर्ण या वर्जित रागों को एकत्र किया जाता था और इन्हें स्पष्ट कारणों से जंगलों में गाया जाता था, ग्रामों में नहीं। ऊहगान एवं ऊह्य गान इनसे सम्वद्ध हैं जो सामन् को यज्ञ कार्य के लिए क्रमबद्धता प्रदान करते हैं। ऊहगान ग्रामगेय गान से सम्वद्ध है एवं ऊह्यगान अरण्यगान से सम्वद्ध है।

यह बहुत हद तक सम्भव है कि कुछ राग प्रारम्भ के अर्धधार्मिक गीतों से प्राप्त किए गए हैं जिन्हें समारोहों एवं त्योहारों में गाया जाता था। प्राचीन ऐन्द्रजालिक तथा वैद्यों से इन्हें लिया जाता था जो अपनी कार्यविधि में जंगली गानों का प्रयोग करते थे। यह तथ्य शायद इस विश्वास के लिए उत्तरदायी है कि सामवेद में सम्मोहन शक्ति है। सामविधान ब्राह्मण जो कि सामवेद का अनुष्ठान-ग्रन्थ है, का द्वितीय भाग लगभग इन्द्रजाल की एक नियमित पुस्तिका जैसी है। यह तथ्य शायद इस बात को स्पष्ट करता है कि साम की ध्वनि पर अन्य संहिताओं का गायन वर्जित था। यज्ञ के दृष्टिकोण से सामवेद उतना महत्त्वपूर्ण नहीं है जितना कि यजुर्वेद है, और साहित्य के दृष्टिकोण से यह ऋग्वेद से कम महत्त्वपूर्ण है। यह सामाजिक विश्वासों, अन्धविश्वासों एवं प्रथाओं के इतिहास के लिए अथर्ववेद की तरह महत्त्वपूर्ण नहीं है। भारतीय संगीत के इतिहास के दृष्टिकोण से सामवेद बहुत ही अधिक महत्त्वपूर्ण है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

II. 5 ब्राह्मण ग्रन्थ

ब्राह्मण ग्रन्थ वेदों के महत्त्वपूर्ण अंग है और साहित्य एवं धर्म के छात्रों के लिए अत्यधिक रोचक हैं। ये रचनाएँ यज्ञीय सूत्रों एवं अनुष्ठानों से सम्बद्ध हैं और इनमें पुरोहितों द्वारा दिए गए धर्म विषयक स्पष्टीकरण एवं विचार-विमर्श हैं। ये गद्य रचनाएँ हैं, जो विभिन्न वेदों से सम्बद्ध हैं। ब्राह्मण (नपुंसक लिंग) शब्द का अर्थ एक विद्वान् पुरोहित द्वारा कृत अनुष्ठान के किसी तथ्य स्पष्टीकरण या व्याख्या है। बाद में इसका अर्थ इस प्रकार व्याख्याओं का संग्रह हो गया और इस तरह से ब्राह्मण एक संग्रह ग्रन्थ है। ब्राह्मणों में सृष्टि से सम्बद्ध पौराणिक कथाएँ, प्राचीन कथाएँ तथा कहानियाँ भी हैं, परन्तु ये सब केवल यज्ञीय अनुष्ठानों के स्थापना-सन्दर्भ में ही हैं। ये मूल ग्रन्थ हमें प्रतीकात्मक व्याख्याएँ एवं विभिन्न संस्कारों के रहस्यात्मक कारणों के बारे में बतलाते हैं तथा प्रार्थना-मन्त्र एवं क्रिया-विधि में सम्बन्ध स्पष्ट करने का प्रयास करते हैं। विभिन्न क्षेत्रों में विभिन्न यज्ञ-पद्धतियाँ प्रचलित थीं और यह स्वाभाविक है कि हमें इनमें मतवैभिन्य मिलता है। यज्ञीय पुरोहित की दक्षिणा, यजमान की फल-प्राप्ति जैसे विषयों का स्पष्टीकरण इनमें किया गया है। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि ब्राह्मण ऐसे ग्रन्थ हैं जो यज्ञ-शास्त्र पर विचार-विमर्श करते हैं।

चारों वैदिक संहिताएँ ब्राह्मण ग्रन्थों से सम्बद्ध हैं और ब्राह्मण साधारण रूप से एक या दूसरे वेद से सम्बद्ध हैं। अनुष्ठानों के विभिन्न सम्प्रदाय विभिन्न ब्राह्मण ग्रन्थों की रचना के लिए उत्तरदायी थे। ब्राह्मण साहित्य का प्रारम्भ कृष्ण यजुर्वेद के गद्य भाग के व्याख्या-खण्डों से होता है। प्रत्येक वैदिक सम्प्रदाय में अपना ब्राह्मण होता था, जो संहिता से सम्बद्ध होता था। वास्तविक ब्राह्मण साहित्य के अनुकरण से परवर्ती तथाकथित ब्राह्मण साहित्य की उत्पत्ति हुई, जो कि ब्राह्मणों की अपेक्षा वेदांगों के अधिक अनुरूप हैं। सामवेद के ब्राह्मण एवं अथर्ववेद के गोपथ ब्राह्मण इस वर्ग से सम्बद्ध है। अथर्ववेद की विषय वस्तु एवं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इसके स्वरूप को ध्यान में रखते हुए यह पूर्ण रूप से स्वाभाविक लगता है कि प्रारम्भ में इसका कोई ब्राह्मण ग्रन्थ नहीं था।

इस वर्ग की महत्वपूर्ण रचनाएँ निम्नलिखित हैं—ऐतरेय ब्राह्मण एवं कौषीतकि या सांख्यायन ब्राह्मण। ये ऋग्वेद से सम्बद्ध हैं। इन दो ब्राह्मणों में घनिष्ठ सम्बन्ध है। ऐतरेय ब्राह्मण में आठ पंचक अर्थात चालीस अध्याय हैं। किंवदन्ती के अनुसार इस ग्रन्थ की रचना महीदास ऐतरेय ने की। ऐतरेय ब्राह्मण सोम यज्ञ, अग्नि-होत्र तथा राजसूय यज्ञ में राजा के अभिषेक के समारोह का उल्लेख करता है। कौषीतकि ब्राह्मण में तीस अध्याय हैं जिनके प्रथम छः में अग्नि-स्थापना, अग्नि-यज्ञ चान्द्रायण व्रत एवं ऋतुओं के यज्ञों पर विचार-विमर्श किया गया है। इसके शेष भाग सोम यज्ञ का विवरण देते हैं। ऐतरेय ब्राह्मण से इसकी घनिष्ठ समानता है। कौषीतकि ब्राह्मण एक समरूप रचना है और यह ऐतरेय ब्राह्मण के बाद रची गई है, जो एक संकलन-सा है।

ताण्ड्य महाब्राह्मण या पञ्चविंश ब्राह्मण में पच्चीस अध्याय हैं और यह सामवेद से सम्बद्ध है। यह ब्राह्मण इसलिए महत्त्वपूर्ण है कि यह प्राचीन दन्तकथाओं का वर्णन करता है और इसमें प्रख्यात व्रात्यस्तोम का वर्णन भी है, जो यज्ञीय अनुष्ठानों से सम्बद्ध था। इनके द्वारा व्रात्यों को ब्राह्मणों के समुदाय में प्रवेश दिया जाता था। षड्विंश ब्राह्मण में ताण्ड्य के अंशों के अतिरिक्त एक और अन्तिम अध्याय है जिसे अद्भुत ब्राह्मण कहते हैं। यह चमत्कार एवं शकुन से सम्बद्ध है। जैमिनीय ब्राह्मण ताण्ड्य महाब्राह्मण से प्राचीन है और इसका महत्त्व इसकी दन्तकथाओं एवं इसके द्वारा धर्म पर प्रकाश डालने के कारण है। यह आंशिक रूप में मिलता है।

तैत्तिरीय ब्राह्मण वास्तव में तैत्तिरीय संहिता का अनुभाग है और कृष्ण यजुर्वेद से सम्बद्ध है। इस ब्राह्मण में बाद के 'पुरुषमेध' यज्ञ का वर्णन है। शतपथ ब्राह्मण शुक्ल यजुर्वेद का है और इसमें एक सौ अध्याय हैं। यह सबसे महत्त्वपूर्ण ब्राह्मण ग्रन्थ है, क्योंकि इसका स्वरूप व्यापक है और यह विविध प्रकार की महत्त्वपूर्ण जानकारी देता है। इस ब्राह्मण के दो संस्करण मिलते हैं—एक काण्व शाखा का एवं दूसरा माध्यन्दिन शाखा का। माध्यन्दिन शतपथ ब्राह्मण में चौदह काण्ड हैं, जिनमें से प्रथम नौ काण्ड वाजसनेय संहिता के प्रथम 18 अध्यायों की एक प्रकार से व्याख्या करते हैं। यह ब्राह्मण याज्ञवल्क्य को प्रामाणिक मानता है। किन्तु अग्निचयन से सम्बद्ध अध्याय शाण्डिल्य को प्रामाणिक मानता है। शाण्डिल्य ही अग्नि रहस्य की शिक्षा देते हैं। बाद के अध्याय उपनयन, स्वाध्याय, श्राद्ध संस्कार (पितृमेध), अश्वमेध, पुरुषमेध, सर्वमेध तथा प्रवर्ग्य जैसे विषयों का वर्णन करते हैं। प्रख्यात बृहदारण्यक उपनिषद् इस ब्राह्मण का अन्तिम भाग है।

एक ब्राह्मण एक वेद से सम्बद्ध है। इस कथन का अभिप्राय यह है कि वह

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ब्राह्मण होता के मन्त्रोच्चारण में सहायक पुरोहित को महत्त्वपूर्ण विषयों की व्याख्या देता है। सामवेद के ब्राह्मण उद्‌गाता के कर्तव्यों को निर्दिष्ट करते हैं और यजुर्वेद के ब्राह्मण अध्वर्यु के कर्तव्यों की ओर निर्देश करते हैं। ब्राह्मण ग्रंथ हमें प्रचुर मात्रा में रोचक सामग्री देते हैं, जिसके कारण वे अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। वंश अध्याय यज्ञ के सिद्धान्त की उत्पत्ति का वर्णन करते हुए हमें ऐतिहासिक व्यक्तियों के नामों की सूची देता है। इन नामों से तथा ब्राह्मणों में दिए हुए अन्य बहुत-से नामों से यह स्पष्ट हो जाता है कि ब्राह्मण साहित्य कई शताब्दियों में विकसित हुआ है। ब्राह्मणों का विकास संहिता युग की समाप्ति पर हुआ और उनसे प्राप्त भौगोलिक सूचना के अनुसार आर्यों की जन-जातियों का विस्तार पूर्व में गंगा और यमुना के बीच के क्षेत्र में हुआ। ब्राह्मण ग्रन्थों से यह पता चलता है कि सप्तसिन्धु के दक्षिण में स्थित कुरुक्षेत्र ऋग्वेद काल से ही यज्ञस्थली रहा है।

ऋग्वेदकालीन प्राचीन प्रभावशाली देवताओं की महत्ता अब क्षीण हो गई और वे पुरोहितों के अधीन हो गए। इस सन्दर्भ में ब्राह्मणकालीन पुरोहित अथर्ववेद के ऐन्द्रजालिक के सदृश हैं। विष्णु, रुद्र, शिव एवं प्रजापति जैसे ऋग्वेद के नए तथा अप्रधान देवता अब प्रभावशाली हो गए। ऋग्वेद के समय का शब्द 'असुर' जिसमें अवेस्तिक पुट था और जिसका अर्थ चमत्कारी क्षमता वाला व्यक्ति था, अब परिवर्तित हो गया और इसका अर्थ दानव हो गया। इन्द्र-वृत्र युद्ध का गौरव, भयंकरता, यथार्थवाद एवं महत्त्व अब समाप्त हो गया और ब्राह्मण ग्रन्थ देवों एवं असुरों के संघर्षों का वर्णन करने लगे। यज्ञ अब एक लक्ष्य हो गया, न कि लक्ष्य को प्राप्त करने का साधन। अप्रधान अनुष्ठानों को भी अत्यधिक महत्त्वपूर्ण समझा जाने लगा और उनकी उत्पत्ति परम्परा एवं महत्त्व को स्पष्ट करने हेतु कहानियाँ सुनाई जाने लगीं। पुरोहित वर्ग को 'भूसुर' समझा जाने लगा। वे देवताओं के समान ही नहीं, अपितु उनसे भी ऊपर माने जाने लगे। ज्ञान एवं पवित्रता के आधार पर मानव की देवताओं से भी उत्कृष्टता की विचारधारा कालान्तर में भारतीय दर्शन-शास्त्र का मूल कारण बनी। इसके परिणामस्वरूप तपस्या एवं पवित्रता के कारण बुद्ध एवं महावीर भी देवताओं से उत्कृष्ट माने जाने लगे। जैसा कि पहले कहा जा चुका है, ब्राह्मणों में अनुष्ठानों की व्याख्या, विविध गुरुओं के मत, शब्दों की व्युत्पत्ति, देवताओं एवं असुरों के विषय में रुचिकर कहानियाँ तथा पुरानी दन्तकथाओं का उल्लेख अनुष्ठानिक प्रवृत्ति से किया गया है। इस सम्बन्ध में हम पुरूरवा एवं उर्वशी की कथा, शुनःशेप की कथा, सुकन्या भार्गव की कथा तथा 'वाच्' की दन्तकथा आदि का उल्लेख कर सकते हैं। ब्राह्मण ग्रन्थों की सृष्टि कथाओं में यज्ञीय अनुष्ठान अध्यात्मवाद की अपेक्षा अधिक प्रधान है। ब्राह्मण ग्रन्थों का सबसे महत्त्वपूर्ण विचार उनका बन्धुत्व दर्शन,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रत्यक्ष समरूपता के आधार पर एकात्मकता को बनाए रखने का भाव है। ब्राह्मणों की यह तादात्म्य स्थापित करने की प्रवृत्ति एक अस्पष्ट रहस्यमय बन्धन की अनुभूति है जिससे जगत में एकत्व की भावना उत्पन्न हुई है। भारतीय दार्शनिक विचारधारा को ब्राह्मणों की यह अत्यधिक महत्त्वपूर्ण देन है, क्योंकि इन रहस्यमय तादात्म्यों से ही उपनिषदों के महान् तादात्म्य का विकास हुआ है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

II. 6 आरण्यक

आरण्यकों की रचना वनों में हुई और इनमें विचारकों का चिन्तन है जो इन्होंने वनों में रहकर किया। ब्राह्मणों के प्रचुर कर्मकाण्डवाद, अनुष्ठान की उत्पत्ति, अभिप्राय एवं महत्त्व के विषय में उनका चिन्तन और उसमें प्रतीकात्मकता ढूंढ़ने के उनके प्रयास आदि ने विचारकों की आत्मा को वास्तव में जाग्रत किया। वस्तुत: ऋग्वैदिक समय से ही समाज में ऐसे विचारक थे, जो ब्राह्मणों के कर्मकाण्डीय समुदाय से अलग थे और चिन्तन में अधिक विश्वास रखते थे। ये लोग निरर्थक कर्मकाण्डों में और देवताओं को हवि अर्पण करने में विश्वास नहीं करते थे। ऋग्वैदिक समय के इन समुदायों में सन्यासधर्म की उत्पत्ति हुई। भ्रमणशील संन्यासियों की संस्था चिन्तनशील एवं विचारशील दर्शन के विकास के लिये उत्तरदायी थी। ब्राह्मणों में कल्प अर्थात् अनुष्ठानों के नियम, इतिहास अर्थात् पौराणिक कथाएँ एवं दन्तकथाएँ, पुराण अर्थात् सृष्टि की उत्पत्ति की पौराणिक कथाएँ, गाथा अर्थात् महाकाव्यीय गीत एवं नाराशंसी अर्थात् वीरों की प्रशस्तियाँ मिलती हैं। ब्राह्मणों में व्याकरण, ध्वनिविज्ञान एवं ज्योति:शास्त्र की उत्पत्ति की पूर्वकल्पना मिलती है। दार्शनिक चिन्तन की जागृति ब्राह्मणों से पहले हुई न कि बाद में। ऋग्वेद तथा अथर्ववेद के सूक्तों और यजुर्वेद के कुछ भागों में यह दार्शनिक विचार-धारा दिखाई देती है जो उपनिषदों एवं आरण्यकों में परिपक्व होती है। आरण्यक ब्राह्मणों के परिशिष्ट के रूप में हैं। इनमें यज्ञ के नियमों एवं विधि पर विचार-विमर्श नहीं है; परन्तु यज्ञ एवं पुरोहितों के दर्शन का अध्यात्मवाद एवं प्रतीकवाद मिलता है। कर्मकाण्डीय ब्राह्मण ग्रन्थ, जो यज्ञ विधि के बारे में निर्देशन करते हैं, गृहस्थ के लिए बने थे। इसके विपरीत आरण्यक एकान्तवासी वानप्रस्थों के लिए थे। आरण्यक एवं उपनिषद् दोनों वेद के अन्तिम भाग हैं। इसलिए इन्हें सामान्य रूप से वेदान्त कहते हैं। आरण्यक ब्राह्मणों की तरह जिनके वे अंग हैं, विविध वैदिक शाखाओं से सम्बद्ध हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ऐतरेय आरण्यक ऋग्वेद के ऐतरेय ब्राह्मण का अंग है। इसी प्रकार कौषीतकि आरण्यक कौषीतकि ब्राह्मण का अंग है। कृष्ण यजुर्वेद का तैत्तिरीय आरण्यक तैत्तिरीय ब्राह्मण का अग्रभाग है। शुक्ल यजुर्वेद शतपथ ब्राह्मण में चौदहवें अध्याय का एक भाग आरण्यक है। प्रसिद्ध छान्दोग्य उपनिषद् एक आरण्यक भी है और सम्भवत: सामवेद के ताण्ड्य महाब्राह्मण से सम्बद्ध है। जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण भी सामवेद की जैमिनीय शाखों का एक आरण्यक है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

II. 7 उपनिषद्

आरण्यकों की पराकाष्ठा उपनिषदों में मिलती है जो वास्तविक दर्शन के महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ हैं। उपनिषद् शब्द उप+नि+सद् से व्युत्पन्न हुआ है, जिसका अर्थ है गुरु के निकट शिक्षा प्राप्ति के लिए बैठना। यह शिक्षा साधारण रूप से गोपनीय होती थी और इसलिए शिष्य और गुरु का यह उपवेशन गुप्त होता था। इसलिए जो कुछ सिखाया जाता था वह गुप्त सिद्धान्त होता था। यही कारण है कि 'रहस्यम्' उपनिषद् का पर्यायवाची शब्द बन गया है। ओल्डेनबर्ग इस शब्द को उपासना के अर्थ में लेता है और इसलिए इसे उपासना से सम्बद्ध करता है। सेनार्त ने ध्यान दिलाया है कि उपनिषद् की क्रिया उप+आस् का अर्थ उपासना नहीं है, बल्कि ज्ञान प्राप्ति है और इसलिए उनके अनुसार उपनिषद् शब्द का अर्थ ज्ञान है। बोदास शिष्य को अग्नि के पास बैठा हुआ समझता है और उपनिषद् के संवादों को महायज्ञों के समय का संवाद समझता है। ह्यूअर इस उपवेशन को योग से सम्बद्ध करता है और इसलिए उपनिषद् का अर्थ तपस्या या ध्यान द्वारा विवेक की उपलब्धि समझता है। नारायण का आशय है कि इसका अर्थ पास बैठकर उच्चारित मूल पाठ से है और महान् शंकराचार्य उपनिषद् को अज्ञान का नाश करके मोक्ष प्राप्त कराने वाला ज्ञान समझते हैं।

कुछ विद्वानों का मत है कि उपनिषद् क्षत्रिय दर्शन-शास्त्रियों की शिक्षा का प्रतिनिधित्व करता है। उपनिषद् का दर्शन ब्राह्मण ग्रन्थों के अनुष्ठानों के विरुद्ध प्रतिक्रिया ही नहीं बल्कि लगभग विद्रोह है। दूसरा दृष्टिकोण यह है कि उपनिषदों में ब्राह्मण छात्रों के रूप में वर्णित है जो क्षत्रिय राजाओं—जैसे जनक, अश्वपति, कैकेय, प्रतर्दन आदि के पास शिक्षा प्राप्ति के लिए जाते हैं। तीसरी बात यह है कि ब्राह्मणों के अनुष्ठान यहाँ 'ध्यान' की अपेक्षा अप्रधान हैं। वास्तव में ब्राह्मण बाह्य कर्मकाण्डवाद की शिक्षा देते हैं जबकि उपनिषद् आन्तरिक ज्ञान पर बल देते हैं। यह बहुत सम्भव है कि जब ब्राह्मण लोग जटिल अनुष्ठानों का

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तन्त्र बुनने में व्यस्त थे, क्षत्रिय लोग इस क्षेत्र से बाहर निष्क्रिय दर्शक थे। इस समय उन्होंने मनन करके उपनिषदों के दार्शनिक विचारों का विकास किया। इस तथ्य का उपयुक्त अर्थ यही है कि अनुष्ठानों में निपुण ब्राह्मण नवीन ब्राह्मण-दर्शन से अनभिज्ञ थे और क्षत्रिय राजाओं के पास शिक्षा के लिए जाते थे। ऐसा मत बिल्कुल अनुचित प्रतीत नहीं होगा, क्योंकि उपनिषदों में पूरी तरह से अनुष्ठान की शैली, कल्पना, विचार एवं अभिव्यक्ति का प्रयोग हुआ है। वास्तव में क्षत्रिय लोग यज्ञों के संरक्षक थे और उन्हें इन यज्ञों का निष्क्रिय दर्शक समझना बहुत कठिन है। ऋग्वेद में भी हमें क्षत्रियों के सूक्त मिलते हैं और संपूर्ण वैदिक साहित्य में हम विभिन्न वर्गों में पारस्परिक सहयोग की भावना पाते हैं और इसे भुलाया नहीं जा सकता कि उपनिषद् के महान् शिक्षक याज्ञवल्क्य, शाण्डिल्य, आरुणि एवं अन्य हैं जो कि ब्राह्मण सम्प्रदाय के मनीषी हैं। उपनिषद् गद्य एवं पद्य दोनों में हैं और लगभग प्रत्येक उपनिषद् में कुछ पूर्ववर्ती और कुछ परवर्ती काल के अंश मिलते हैं। ये ब्राह्मणों एवं आरण्यकों के अन्तिम भाग हैं जो प्रायः उनके सदृश हैं, परन्तु इनका अपना ही अलग सौन्दर्य एवं महत्त्व है। ऐतरेय, बृहदारण्यक, छान्दोग्य, तैत्तिरीय, कौषीतकि तथा केन एवं इस वर्ग के अन्य कई उपनिषदों की रचना बुद्ध एवं पाणिनि से भी पूर्व हुई थी। प्रमुख उपनिषदों की सूची में ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्ड, माण्डूक्य, तैत्तिरीय, ऐतरेय, छांदोग्य एवं बृहदारण्यक हैं, जिनमें हमें विशुद्ध-मौलिक वेदान्त के तत्त्व मिलते हैं। उपनिषद् भी ब्राह्मणों की भाँति वेदों से सम्बद्ध हैं। इस प्रकार ऐतरेय एवं कौषीतकि ऋग्वेद से सम्बद्ध हैं। कठ, श्वेताश्वतर, मैत्रायणी एवं महानारायण कृष्ण यजुर्वेद से सम्बद्ध हैं। ईश शुक्ल यजुर्वेद से सम्बद्ध है। मुण्डक, माण्डूक्य तथा प्रश्न अथर्ववेद से सम्बद्ध हैं।

कठ, ईश, श्वेताश्वर, मुण्डक एवं प्रश्न आदि उपनिषदों का वर्ग वेदान्त तथा सांख्ययोग एवं ऐकेश्वरवाद के मिश्रित सिद्धान्त प्रस्तुत करता है। दो सौ से अधिक उपनिषद् हैं जिनमें से अधिकांश बहुत बाद के हैं और हम कह सकते हैं कि उपनिषद् वेदान्त, योग, संन्यास, वैष्णवदर्शन, शैवदर्शन तथा संन्यासधर्म की शिक्षा देते हैं। साधारणतः शंकर ने जिन उपनिषदों पर भाष्य किया है, उन्हें श्रेष्ठ उपनिषद् समझा जाता है जो वास्तविक वेदान्त सिद्धान्त का प्रतिपादन करते हैं। उपनिषद् परम तत्त्व के स्वरूप की झाँकी प्रस्तुत करते हैं, जिनका प्रत्यक्ष विभिन्न कालों में भिन्न-भिन्न मनीषियों ने किया। अतः इनकी शिक्षा में एकरूपता दृष्टिगोचर नहीं होती। हम उपनिषद् दर्शन की व्यवस्था का विवरण नहीं दे सकते; क्योंकि हमें यहाँ न तो कोई एक दर्शन विशेष मिलता है और न ही किसी दर्शन का समरूप सम्प्रदाय। इसमें विविध लोगों की शिक्षाएँ हैं, जिन्हें एक व्यवस्थित रूप दिया जा सकता है जो कि चिन्तन के विकास की दिशा का संकेत दें; क्योंकि ये विभिन्न लोगों के मत हैं। इसलिए इनका सामंजस्य प्रायः कठिन है। फिर भी हम उप-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

निषदों के मूलभूत सिद्धान्तों का उल्लेख कर सकते हैं, जिन्हें प्रायः इनके महावाक्यों से संकलित किया जा सकता है।

उपनिषद् परमतत्त्व का अन्वेषण दो दिशाओंमें करते हैं—संसार एवं मनुष्य। उनके अनुसार जगत् का तात्त्विक कारण ब्रह्म है और मनुष्य में विद्यमान परमतत्त्व आत्मा। उन्होंने देवताओं एवं तत्त्वों के अस्तित्व का विवेचन किया है और निर्णय रूप में सर्वमान्य ब्रह्म के स्वरूप को स्वीकार किया है, जो शाश्वत है। आत्मा की धारणा पर पहुँचने में उन्होंने शरीर एवं इन्द्रियों के दावे पर विचार किया है और इन्द्रियों एवं शरीर को मानव की आत्मा मानना स्वीकार नहीं किया है। अन्त में उन्होंने यह पाया है कि ब्रह्म एवं आत्मा एक ही है—चेतना (चित्), अस्तित्व (सत्) एवं आनन्द। परमतत्त्व केवल एक है और इसमें कोई दूसरा नहीं है। इससे वस्तुएँ उत्पन्न होती हैं, इसी में वे अस्तित्व रखती हैं और अन्त में इसी में मिल जाती हैं। ज्ञान के द्वारा मनुष्य परमतत्त्व मानव व संसार की अनिवार्य अभिन्नता की अनुभूति करता है। इस अभिन्नता की अनुभूति ही अमरत्व है। उपनिषद् कर्म एवं पुनर्जन्म के सिद्धान्तों की शिक्षा देते हैं। इन दोनों सिद्धान्तों के कारण उपनिषद् को आंशिक रूप में निराशावादी समझा जाता है जो सच नहीं हैं। वास्तव में उपनिषद् उच्चतम भूमा, निरन्तर आनन्दित होना, जन्म-मरण से मुक्ति एवं परमानन्द की उपलब्धि की अभिलाषा सँजोए हुए हैं। उनमें यह अनुभूति मिलती है कि धन एवं साधनों से अमरता की प्राप्ति नहीं हो सकती और आनन्द एवं भोग-विलास केवल क्षणिक हैं। कठोपनिषद् में नचिकेता की कथा उपनिषद् के सार का प्रतिनिधित्व करती है। उपनिषद् के एकत्व के इस सिद्धान्त की विविध व्याख्याएँ की गई हैं। परमतत्त्व तथा मनुष्य, ज्ञान एवं भक्ति की क्षमता, ईश्वर का अस्तित्व एवं उसकी मनुष्य में रुचि, इनके आपस में असन्दिग्ध सम्बन्ध एवं अनुष्ठान का महत्त्व क्या है—इन बिन्दुओं पर विविध मत थे। उपनिषद् में बहुत से दार्शनिक सम्प्रदायों की सामग्री है और वेदान्त के विभिन्न सम्प्रदाय तथा सांख्य एवं योग के सम्प्रदाय उपनिषदों की शिक्षा से उत्पन्न हुए।

उपनिषद् प्रायः संवादों के स्वरूप में हैं—पिता व पुत्र—आरुणि व श्वेतकेतु के मध्य संवाद, पति व पत्नी—याज्ञवल्क्य एवं मैत्रेयी, या राजसभा के एक दार्शनिक का अपने समय के अन्य दार्शनिकों से संवाद—याज्ञवल्क्य एवं जनकसभा आदि। कभी-कभी एक गुरु अपने उत्साही शिष्य को शिक्षा देता है—जैसे यम नचिकेता को। अक्सर वे रूपक एवं उपमा का प्रयोग करते हैं और इस गद्य में काव्य का पूर्णतया प्रगीतत्व है। विचारों एवं अभिव्यक्ति में उपनिषद् की उत्कृष्टता में कोई दो मत नहीं हैं और इसी में इसकी महत्ता है। इसलिए शौपेनहौर को इनमें शाश्वत् सान्त्वना मिली।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

II. 8 सूत्र साहित्य

उपनिषद् युग के अन्त तक विभिन्न वैदिक सम्प्रदाय भली-भाँति सुव्यवस्थित हो चुके थे। वैदिक साहित्य स्वयं भी बहुत अधिक विशाल हो गया था। विभिन्न चरणों के लिए साहित्य में स्थापित परम्परा का उत्सुकता से पालन करना स्वाभाविक था तथा वेदों के अनुसार छोटे व बड़े यज्ञ करना एवं अनुमोदित आदर्श के अनुसार जीवन व्यतीत करना भी स्वाभाविक था। विभिन्न चरण विभिन्न क्षेत्रों में स्थापित थे और उनकी अपनी स्थानीय प्रथाएँ एवं पद्धतियाँ थीं। इसके फलस्वरूप विभिन्न सम्प्रदायों में कुछ सामान्य अन्तर हो गए। इन परिस्थितियों के कारण पहले के साहित्य का अध्ययन आवश्यक हो गया। चरणों के मार्गदर्शन के लिए इस साहित्य पर आधारित नियमावलियों की इस समय अत्यधिक आवश्यकता थी। इस प्रकार से विभिन्न शाखाओं में सूत्र ग्रन्थों की उत्पत्ति हुई।

सूत्र शैली की अपनी ही विशेषता है। इनमें छोटे, अपूर्ण एवं ओजस्वी वाक्य हैं जो अधिकतम अर्थ देते हैं। ऐतरेय आरण्यक में ऐसे सूत्रों के उदाहरण देखे जा सकते हैं। ब्राह्मणों के अनुष्ठान ने अपने सम्प्रदाय के शिष्यों के मार्गदर्शन के लिए सूत्र नियमावलियों को वास्तव में आवश्यक बना दिया था। पहले के साहित्य में बिखरे हुए उल्लेखों एवं कथनों तथा उस समय की प्रचलित प्रथाओं से सूत्र ग्रन्थों का विकास हुआ था। ये विशेष नियमावलियाँ हैं जो प्रसंगों पर व्यवस्थित ढंग से विचार-विमर्श करती हैं। इस प्रकार कल्पसूत्रों की उत्पत्ति हुई। श्रौतसूत्र श्रौत यज्ञों पर विचार-विमर्श करते हैं, जिनकी शिक्षा ब्राह्मणों में दी गई थी। गृह्यसूत्र, संस्कार पञ्चमहायज्ञ इत्यादि पर विचार-विमर्श करते हैं जो व्यक्ति के जीवन से सम्बद्ध हैं और जिनमें तीन अग्नि-स्थापन, पाँच यज्ञों, चान्द्रायणव्रतों के निर्देश दिए गए हैं। इनसे हम भारतीय यज्ञ धर्मानुष्ठान, गाय-बैल प्रजनन एवं कृषि, अन्त्येष्टि प्रथाएँ तथा पितृ-यज्ञों को समझ सकते हैं। गृह्यसूत्र हमें प्राचीन भारतीयों के जीवन के सम्बन्ध में गूढ़ अन्तर्दृष्टि देते हैं और मानव-जाति-वैज्ञानिक के लिए वे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सचमुच निधि हैं। श्रौत एवं गृह्यसूत्र वेद के अर्थ के विवेचन के लिए भी महत्त्वपूर्ण हैं, क्योंकि उनके द्वारा निर्धारित विनियोग प्रायः हमें मन्त्रों का अर्थ समझने में सहायता करता है। श्रौतसूत्र से संलग्न शुल्बसूत्र अग्निवेदि एवं यज्ञशाला के निर्माण से सम्बद्ध हैं। कल्पसूत्र कुछ वैदिक शाखाओं से सम्बद्ध हैं। कृष्ण यजुर्वेद की केवल बौधायन एवं आपस्तम्ब शाखाओं में यह चार प्रकार के कल्पसूत्र पाते हैं—श्रौत, गृह्य, धर्म एवं शुल्ब। भारद्वाज एवं सत्याषाढ हिरण्यकेशिन् की शाखाएँ आपस्तम्ब के सूत्रों से सम्बद्ध हैं। मानव सम्प्रदाय के श्रौत, गृह्य तथा शुल्व सूत्र भी हैं, और काठक गृह्यसूत्र मैत्रयिणी संहिता से सम्बद्ध हैं। कात्यायन श्रौतसूत्र पारस्कर गृह्यसूत्र, कात्यायन शुल्वसूत्र शुक्ल यजुर्वेद से सम्बद्ध हैं। आश्वलायन श्रौतसूत्र, आश्वलायन गृह्यसूत्र तथा सांख्यायन श्रौतसूत्र एवं गृह्यसूत्र ऋग्वेद से सम्बद्ध हैं। लाट्यायन एवं द्राह्यायण, श्रौतसूत्र जैमिनीय श्रौत तथा गृह्यसूत्र और गोमिल तथा खादिर गृह्यसूत्र सामवेद से सम्बद्ध हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

III

लौकिक साहित्य

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

III

लौकिक साहित्य

III. 1 महाकाव्य तथा पुराण

महाभारत और रामायण ऐसे दो महाकाव्य हैं जिन पर भारत की साहित्यिक परम्परा को गर्व होना उचित ही है। महाकाव्य सदा एक साहित्यिक चमत्कार माना जाता है और यह चमत्कार परिभाषा से केवल एक बार ही घटित होता है। यह भारत को छोड़कर अन्य सभी देशों के बारे में सत्य है, क्योंकि यहाँ यह चमत्कार दो बार घटित हुआ है। परम्परा से व्यास महाभारत के और वाल्मीकि रामायण के रचयिता माने जाते हैं। इन दो महाकाव्यों ने भारतीय जनता पर अत्यधिक प्रभाव डाला है। उनके जीवन के आदर्श और शिक्षाएँ भारतीय समाज में गहराई से व्याप्त हैं। ये दो महाकाव्य समस्त भारतीय समाज के लिए उनके कला, साहित्य और दैनिक व्यवहार के सम्बन्ध में भी संदर्भ स्रोत का कार्य करते हैं।

दोनों महाकाव्य अपने प्रभाव के विस्तार में समान हैं, किन्तु अन्य दृष्टियों से एक दूसरे से अत्यधिक भिन्न हैं। रामायण आदिकाव्य माना जाता है, जबकि विश्वकोष सदृश महाभारत को इतिहास कहते हैं। रामायण में एक निश्चित एकता है और यह अधिकांशत: एक लेखक की कृति है, जबकि महाभारत ठीक ही घोषित करता है कि वह संसार के सभी विषयों को स्पर्श करता है और कवियों की कई पीढ़ियों के प्रयत्नों का परिणाम है। व्यास की अपेक्षा वाल्मीकि का व्यक्तित्व अधिक स्पष्ट है।

महाभारत और रामायण के विषय में मैक्समूलर ने जो सिद्धान्त प्रतिपादित किया था, वह शिलालेखों की प्राप्ति से खण्डित हो चुका है, जो उच्चकोटि का साहित्यिक उत्कर्ष प्रदर्शित करते हैं। क्षत्रप रुद्रदामन का लेख, हरिषेण का इलाहाबाद स्तम्भलेख एवं स्कन्दगुप्त का शिलालेख इस संवन्ध में विश्वसनीय प्रमाण प्रस्तुत करते हैं। लोकप्रिय महाकाव्यों की परम्परा का उद्भव ऋग्वेद में देखा जा सकता है, विशेषत: 'दाशराज्ञयुद्ध सूक्त' में, (VII.83), जिसमें सुदास

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

के दस राज्यों के संघ के साथ युद्ध में विजय का वर्णन है। ये वीरगीत ऐतिहासिक कथा प्रसंगों को लेकर लिखे गए हैं, जो वास्तव में वीरगाथा काव्य का प्रारम्भ सूचित करते हैं तथा बाद में महाकाव्य के रूप में परिणत हो जाते हैं। रामायण और महाभारत का प्रारम्भ इन गीतों में माना जाना चाहिए।

1. महाभारत

यह वस्तुतः आश्चर्यजनक बात है कि प्रारम्भिक वैदिक साहित्य महाभारत में वर्णित घटनाओं के बारे में व्यवहारतः मौन है। ब्राह्मणों और उपनिषदों में आख्यान, इतिहास, पुराण और गाथा नाराशंसी का प्रायः उल्लेख है, तथापि कुरुक्षेत्र में लड़े गए महायुद्ध का कहीं भी संकेत नहीं है। ब्राह्मणों में कुरुक्षेत्र के पवित्र स्थल का यज्ञसत्रों और प्रीतिभोजों के स्थल के रूप में उल्लेख है, किन्तु रणक्षेत्र के रूप में नहीं। यह सत्य है कि अथर्ववेद (XX.127-136) के कुन्ताप-गीतों में परीक्षित को शान्तिप्रिय राजा बतलाया गया है, जिसकी छत्रच्छाया में कुरु समृद्ध हुए। ब्राह्मण परीक्षित के पुत्र जनमेजय और दुष्यन्त तथा शकुन्तला के पुत्र भरत की ओर इंगित करते हैं। यजुर्वेद में अनेक बार कुरुओं, पाञ्चालों एवं कुरु-पाञ्चालों का उल्लेख है। काठक संहिता में कुरु-पाञ्चालों के यज्ञभोज का वर्णन करते हुए, विचित्रवीर्य के पुत्र धृतराष्ट्र की चर्चा है, किन्तु राजा पाण्डु, उसके पुत्र पाण्डव एवं दुर्योधन, दुःशासन, कर्ण इत्यादि का कहीं भी उल्लेख नहीं है। यह रोचक तथ्य है कि अर्जुन का नाम ब्राह्मणों में आता है किन्तु यह इन्द्रदेव का गुप्त नाम है और महाभारत के महान् नायक की ओर कोई संकेत नहीं करता है। केवल सांख्यायन श्रौतसूत्र (VI.16) में हमें सर्वप्रथम कुरुक्षेत्र के युद्ध का उल्लेख प्राप्त होता है जिसमें कौरवों के नाश का वर्णन है। आश्वलायन गृह्यसूत्र (III.44) में आचार्यों एवं धर्मग्रन्थों को एक सूची में भरत और महाभारत का उल्लेख है जो वेदाध्ययन के उपरान्त मन्त्रों द्वारा सम्मानित किए जाते हैं। पाणिनि (VIII.3.95 ,III.2.165, VI.2.38) युधिष्ठिर, भीम और विदुर आदि नामों की व्युत्पत्ति बतलाते हैं और महाभारत शब्द की समास सम्बन्धी व्याख्या करते हैं। पतञ्जलि ने ही सर्वप्रथम कौरवों और पाण्डवों के महायुद्ध का स्पष्ट उल्लेख किया है।

बौद्ध साहित्य, त्रिपिटक, और पालि धर्मशास्त्रों का महाभारत से नहीं के बराबर परिचय है। ये कृष्णलीला से परिचित हैं, किन्तु हरिवंश और महाभारत के 'मौसल' से नहीं। जातक कथाओं में पाण्डव, धनञ्जय, युधित्थिल (युधिष्ठिर), धतरट्ठ (धार्तराष्ट्र) एवं विदुर के नामों का प्रयोग हुआ है, तथा द्रौपदी के स्वयंवर और पाँच पतियों के साथ उसके विवाह का उल्लेख मिलता है, किन्तु यह नहीं कहा जा सकता कि इनका महाकाव्य से प्रगाढ़ परिचय है। इन ग्रन्थों में पाण्डव एक अश्व

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

का नाम है, धृतराष्ट्र राजाओं का सामान्य नाम है, धनञ्जय और युधिष्ठर कुरु राजा हैं जो इन्द्रप्रस्थ में रहते हैं तथा बुद्धिमान पुरुष विदुर एक अवसर पर राजकुमार और दूसरे अवसर पर राजसभा के मन्त्री हैं। महागौरवशालिनी द्रौपदी जातक में एक भ्रष्ट स्त्री प्रतीत होती है।

इससे हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि वैदिक साहित्य के समाप्तिकाल तक महाभारत महाकाव्य का अस्तित्व नहीं था, किन्तु ईसा के पूर्व चौथी शताब्दी तक भारत या महाभारत नामक महाकाव्य का प्रादुर्भाव हो चुका था। इसमें कौरवों और पाण्डवों के युद्ध का वर्णन है जैसा कि सांख्यायन, आश्वलायन और पाणिनि संकेत करते हैं। पूर्व में उदित बौद्ध साहित्य का महाभारत से सामान्य परिचय सूचित होता है जबकि सम्भवतः महाभारत का उद्गम पश्चिम में हुआ।

कतिपय विद्वानों के अनुसार महाभारत का महायुद्ध कलियुग के प्रारम्भ में 3102 ई० पू० में हुआ। यह तिथि ज्योतिष की गणना से निकाली गई है। भारत का राजनैतिक इतिहास वास्तव में शिशुनाग, नन्द और मौर्य (321 ई० पू०) राजाओं से प्रारम्भ होता है। इन राजाओं से महाभारत अनभिज्ञ है। अतः इस सीमित अर्थ में महाभारत काफी पुराने युग से सम्बद्ध था। चौथी शताब्दी तक महाभारत अपने वर्तमान रूप में विकसित हो चुका होगा। साहित्यिक और शिलालेखीय प्रमाणों से स्पष्ट है कि 400 ई० तक महाभारत एक पवित्र ग्रन्थ के रूप में मान्य हो चुका था ओर जिस रूप में महाभारत आज उपलब्ध है उससे अधिक भिन्न नहीं था। 700 ई० में कुमारिल महाभारत को व्यासरचित स्मृति-ग्रन्थ मानते हैं और महाकाव्य के प्रायः सभी पर्वों से उद्धरण देते हैं। सुबन्धु और बाण (600-650 ई०) महाभारत को समस्त काव्य का चरमोत्कर्ष मानते हैं और ऐसा प्रतीत होता है कि बाण के समय में उत्सवों के अवसर पर मन्दिरों में महाभारत का पाठ होता था। पाँचवी और छठी शताब्दी के भूमिदान-पत्र दान-धर्म के विषय में महाभारत से श्लोक उद्धृत करते हैं। एक शिलालेख में महाभारत शतसाहस्री संहिता—एक लाख श्लोकों के संग्रह के रूप में वर्णित है। इन सबसे यह प्रमाणित होता है कि तृतीय या चतुर्थ शताब्दी तक इसने वर्तमान रूप प्राप्त कर लिया था। इस प्रकार महाभारत अपने वर्तमान रूप में 4000 ई० पू० से 400 ई० तक आ चुका था।

महाभारत केवल एक काव्यग्रन्थ ही नहीं प्रत्युत एक सम्पूर्ण साहित्य है। अतः इसमें समस्त प्राचीन प्रशस्ति काव्य का समावेश है। इसकी मुख्य कथा-वस्तु कौरवों की वीरगाथा है और वीरगाथा से सम्बन्धित कौरवों के दुर्भाग्य का वर्णन करने वाली अन्य विभिन्न रुचि और महत्त्व की वीरगाथाएँ और काव्य उसमें जुड़ते चले गए। अतः महाभारत का केन्द्रबिन्दु कौरवों की ऐतिहासिक वीरगाथा है। इसके अतिरिक्त इसमें प्रसिद्ध राजाओं और प्राचीन काल के वीरों की गाथाएँ हैं,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यद्यपि इनका केन्द्रीय कथावस्तु अर्थात् कुरु युद्ध से कोई सम्बन्ध नहीं है। जैसा कि ऊपर कहा गया है महाभारत समस्त वीरगाथाओं के इस समावेश के कारण प्राचीन प्रशस्ति काव्य का संग्रह बन गया है।

स्पष्ट है कि यह प्रशस्ति काव्य अत्यन्त लोकप्रिय रहा होगा और इसकी लोकप्रियता समझकर पुरोहितों ने इसका ब्राह्मणीकरण कर दिया होगा। ऐसी कोई घटना अवश्य घटी होगी, क्योंकि हमें इसमें देवताओं के आख्यान, ब्राह्मण ग्रन्थों के पौराणिक कथानक, शिक्षाप्रद स्थल मिलते हैं जो ब्राह्मण दर्शन, नीतिशास्त्र और कानून (विधि) का संकेत करते हैं। लोकप्रिय महाकाव्य इस प्रकार पुरोहितों के मन्तव्यों एवं सिद्धान्तों के प्रचार का साधन बन गया। राज-पुरोहित भी रहे होंगे, जो सूतों के समान थे और अल्प शिक्षित थे। इन्होंने ही महाभारत में स्थानीय लोककथाएँ, शिव एवं विष्णु की पौराणिक कथाएँ, ब्रह्माण्ड विज्ञान, सृष्टि रचनाएँ, राजवंशावलियाँ समाविष्ट कर दी होंगी, जो वास्तव में पौराणिक प्रवृत्ति की हैं। समग्र रूप में महाभारत एक धार्मिक ग्रन्थ है जो विष्णु की उपासना की शिक्षा देता है; किन्तु इसमें बहुत से ऐसे अंश भी हैं जो शैवमत से सम्बद्ध हैं। वैष्णवों की भाँति भागवतों ने भी महाकाव्य का संशोधन किया होगा, जिसमें हम कृष्ण को महायुद्ध में भाग लेने वाले, विदग्ध दार्शनिक और पाण्डवों के मित्र के रूप में, कुछ स्थलों पर अवतार के रूप में तथा कुछ अन्य स्थलों पर देवता के रूप में और अन्यत्र सर्व शक्तिमान रूप में पाते हैं। हरिवंश वस्तुतः कृष्णमहाकाव्य है जिसका महाभारत के अन्दर समावेश है। भारत में एक दूसरा भी धार्मिक सम्प्रदाय था—साधुओं का सम्प्रदाय, और उन्होंने भी महाकाव्यों में अपना काव्य साधुगाथाएँ, नीतिकथाएँ, दृष्टान्त और शिक्षाप्रद कहानियाँ सम्मिलित कर दीं, जिनका उद्देश्य तपस्या का आचारशास्त्र एवं दर्शन, विशेषकर संन्यास के सिद्धान्त का महत्त्व सिखाना था। सुखथंकर ने पहले ही सिद्ध कर दिया है कि किस प्रकार भृगुओं से सम्बन्धित किंवदन्तियाँ और पौराणिक कथाएँ महाभारत के सभी पर्वों में समाविष्ट कर दी गई हैं।

कतिपय विद्वान ऐसा मानते हैं कि मूल कुरुगाथा संशोधित कर दी गई है और परिणामतः पाण्डवों का यशोगान किया गया है। क्षत्रिय युद्ध-धर्म से असम्मत नीतियों के कारण कौरवों के महान् योद्धा भीष्म, द्रोण, जयद्रथ और कर्ण धराशायी होते हैं। मूल लेखक कौरवों के प्रति सहानुभूतिपूर्ण था, किन्तु हमारे समक्ष जो महाकाव्य है उसमें पाण्डवों के ये कृत्य जो कौरव योद्धाओं के पतन का कारण है, कृष्ण से स्वीकृत और अनुमोदित किए जाते हैं। ऐसी कल्पना महाकाव्य के विरोधाभासों का निराकरण कर देती है। हौल्जमैन इस प्रकार के सुव्यवस्थित प्रतिरूपण के लिए तर्क प्रस्तुत करता है, किन्तु ओल्डेनबर्ग और हापकिन्स सदृश विद्वानों के इस विषय पर भिन्न दृष्टिकोण हैं। वे मानते हैं कि महाकाव्य ने कोई

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ऐसा पक्ष नहीं लिया और शक्ति के वास्तविक प्रदर्शन में ही आनन्द अनुभव किया। हर्टेल के अनुसार महाभारत एक क्षत्रिय नीतिशास्त्र है। अतः अर्थशास्त्र के अनुसार यह इस नीति का उपदेश देता है कि लक्ष्य साधनों को न्याय संगत कर देता है। पाण्डवों के आचार में नैतिक दृष्टिकोण आधुनिक प्रतीत होता है जबकि उनका युद्ध निर्दयता एवं सैनिक मनोवृत्ति का परिचायक है।

परम्परा से पराशर और मत्स्यगन्धा के पुत्र कृष्णद्वैपायन व्यास इस महाकाव्य के रचयिता माने जाते हैं। डॉह्लमेन और सिल्वाँ लेवी मानते हैं कि यह महाकाव्य एक कवि के द्वारा रचित है। डॉह्लमेन के अनुसार यह बुद्ध के पूर्वकाल का महाकाव्य है और एक विधिशास्त्र के रूप में हैं। लेवी के अनुसार यह सावयव और कलात्मक रूप से मुख्य कथावस्तु के चारों ओर फैला हुआ है और इसमें एक रस की प्रधानता है। हापकिन्स का मत है कि यह क्षत्रियवर्ग का धर्मग्रन्थ है। इन मतों को मानना बड़ा कठिन है, क्योंकि महाभारत एक कवि की कृति नहीं है और न इसमें सावयव एकता ही सम्भव है। यह केवल युद्ध-कौशल ही नहीं सिखाता, जैसा हम पहले देख चुके हैं, महाभारत समाज के सभी अंगों, चारण, विद्वान, पुरोहित, अपेक्षाकृत अल्पशिक्षित पुरोहित, तपस्वी, शैव, वैष्णव और भागवतों द्वारा किए गए संशोधनों और संकलनों से क्रमशः धर्म एवं दर्शन का विश्वकोष बन गया है। भाषा और शैली के विचार से स्पष्ट है कि लेखक एक नहीं हो सकता। महाभारत में वस्तुतः ऐसे बहुत अंश हैं जो काव्यशैली की याद दिलाते हैं। यह तथाकथित अलंकृत काव्य से बहुत दूर है। यहाँ पर हमने महाभारत के क्रमिक विकास के बारे में और शतसाहस्री संहिता के वर्तमान रूप के बारे में पहले ही चर्चा की है। पारम्परिक दृष्टिकोण से महाकाव्य के तीन स्तरों का उल्लेख मिलता है—जय, भारत और महाभारत। जय शीर्षक स्पष्टतः पाण्डवों की विजय को इंगित करता है। बाद में जोड़े गए अंशों से यह भारत बन गया। व्यास ने अपने शिष्य वैशम्पायन को इसे हस्तान्तरित किया जिन्होंने राजा जनमेजय के नागयज्ञ में इसका पाठ किया। लोमहर्षण के पुत्र, सूत उग्रश्रवस ने इस अवसर पर इसका श्रवण किया और बाद में शौनक के द्वादशवर्षीय यज्ञ में सम्मिलित ऋषियों को सुनाया। इस परम्परागत वर्णन का सारांश यह है कि महाभारत के तीन भिन्न वाचक (पाठक) हैं, और उन्होंने तीन भिन्न अवसरों पर इसे सुनाया। महाकाव्य का आकार एक समान नहीं है, क्योंकि उग्रश्रवस 8800 श्लोकों के महाकाव्य का उल्लेख करता है, जबकि व्यास ने भारत संहिता को 24,000 श्लोकों में घोषित किया है। एक दूसरे स्थल पर यह कहा गया है कि व्यास ने 60,000 श्लोकों का महाकाव्य बनाया। यह अप्रत्यक्ष रूप से महाकाव्य की क्रमिक वृद्धि का संकेत करता है।

महाभारत में 18 अध्याय हैं जो पर्व कहलाते हैं। इनमें हस्तिनापुर के सिंहासन के लिए कौरवों और पाण्डवों के संघर्ष एवं युद्ध का वर्णन है। पाण्डु के पुत्र—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पाण्डव कौरवों से राज्य के आधे भाग का दावा करते हैं, और उसे प्राप्त कर लेते हैं। वीर पाण्डव युधिष्ठिर के नेतृत्व में समृद्ध होते हैं। युधिष्ठिर राजसूय यज्ञ करते हैं। ईर्ष्यालु कौरव छल से खेले गए जुए में पाण्डवों को उनके राज्य से वंचित कर देते हैं ओर उन्हें तेरह वर्ष के लिए इस शर्त पर वनवास में भेज देते हैं कि तेरहवें वर्ष (अज्ञातवास) में यदि इनका पता लग जाय तो उन्हें समान अवधि के पुनः वनवास में रहना पड़ेगा। पाण्डव वनवास (अज्ञातवास सहित) की अवधि सफलतापूर्वक समाप्त कर लेते हैं और वापस आने पर जब अपना राज्य माँगते हैं तो उन्हें वह नहीं दिया जाता है। कौरव विवेक से काम नहीं लेते हैं और उन्हें सन्मार्ग पर लाने के कृष्ण के प्रयत्न असफल होते हैं। दोनों पक्ष युद्ध की तैयारी करते हैं जिसमें प्राचीन भारत के सभी राजा भाग लेते हैं। पाण्डव कौरवों को पराजित करने में सफल होते हैं और पुनः राज्य प्राप्त करते हैं। यह महाकाव्य का मुख्य कथानक है। इसमें वहुत-से रोचक प्रसंगों का वर्णन किया गया है, जैसे विराट की राजसभा में पाण्डवों का रुकना, द्यूत-क्रीड़ा, द्रौपदी का अपमान, दुःशासन और दुर्योधन को मारने का भीम का प्रण, द्रोण और जयद्रथ का वध आदि। ये वर्णन पाठकों की रुचि को वनाए रखते हैं। इसी युद्ध के प्रारम्भ में श्रीकृष्ण ने अर्जुन को प्रसिद्ध गीता का उपदेश दिया है। अर्जुन युद्ध नहीं करना चाहता, क्योंकि इससे उसके वंश का संहार हो जाएगा। वह उसी क्षण युद्ध से विरत होना चाहता है, जब संग्राम छिड़ने ही वाला था। कृष्ण निष्काम कर्म के सिद्धान्त का प्रतिपादन करते हैं और अर्जुन को युद्ध के लिए प्रेरित करते हैं। भगवद्गीता केवल भारतीयों के लिए ही नहीं प्रत्युत समस्त मानव जाति के लिए पठनीय है और प्राचीन काल में इसने शंकर, रामानुज जैसे उच्चकोटि के विद्वानों एवं आधुनिक काल के सर्वोत्तम दार्शनिक तिलक, गान्धी आदि को प्रभावित किया है।

हरिवंश महाभारत का 'खिल' माना जाता है। इसमें 16,374 श्लोक हैं। यह किसी एक कवि की काव्य कृति नहीं है। यह दन्तकथाओं और स्तोत्रों का संग्रह है जो विष्णु की महिमा का गुणगान करते हैं। यह किसी एक संग्रहकर्त्ता की कृति नहीं है, क्योंकि मूलपाठ में वाद में भी अंश जोड़े जाते रहे हैं। महाभारत और हरिवंश का सम्बन्ध भी अति शिथिल है और पूर्णतः बाह्य है। हरिवंश के तीन भाग हैं। पहले भाग हरिवंश में हरि की वंशावली, ध्रुव, दक्ष और उसकी कन्याओं, नहुष, ययाति इत्यादि की कहानियाँ एवं कृष्ण के दिव्य पूर्वजन्म की कहानियाँ हैं। दूसरे भाग विष्णुपर्व में कृष्ण की बाल्यावस्था की दन्तकथाएँ राक्षसों के वध, कंसवध, गोवर्धन पर्वत को धारण करने का वर्णन समाविष्ट है। तीसरे भाग भविष्य पर्व में पुराणों के पाठों का संग्रह है। सर्वत्र विष्णु की महिमा का गुणगान है, जिसमें शैव सम्बन्धी अंशों का भी मिश्रण है। हरिवंश में पुराणों

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

के समान अनेक उद्धरण और घटनाएँ हैं। अतः हरिवंश महाभारत का विशुद्ध भाग न होकर अधिकांश रूप से पुराण है।

2. रामायण

रामायण महाभारत से बहुत भिन्न है। यह अपेक्षाकृत संक्षिप्त है और इसमें अधिक एकरूपता है। महाभारतकार व्यास प्राचीन समय के पूर्णतया पौराणिक ऋषि हैं, किन्तु रामायण के रचयिता वाल्मीकि अधिकतर ऐतिहासिक व्यक्ति हैं। रामायण को आदिकाव्य मानना उचित ही है। वाल्मीकि के इस प्रथम अलंकृत-काव्य ने परवर्ती समस्त भारतीय कवियों के लिए आदर्श प्रस्तुत किया है। इसमें हमें विस्तृत रूप से प्रयुक्त अलंकार एवं प्रकृति के वर्णन बहुधा उपलब्ध होते हैं, जो प्रचुर काव्यचातुर्य एवं संवेदनशीलता को प्रदर्शित करते हैं। यदि महाभारत को इतिहास-पुराण कहा जा सकता है, तो रामायण को इतिहास-काव्य कह सकते हैं। रामायण महाभारत से इस रूप में समान है कि यह समस्त भारतीय जनता की निधि बन गई है और शताब्दियों तक इसने विचारों एवं काव्यों को प्रभावित किया है। राम के कार्य, सीता का पातिव्रतधर्म, हनुमान के आश्चर्यजनक कार्य एवं अलौकिक शक्ति से सम्पन्न राक्षसों ने समस्त भारतवर्ष के नर-नारियों और बच्चों को आकृष्ट किया है। नाटककार और कवि बहुधा अपने कथानकों के लिए रामायण का आश्रय लेते हैं और अनेक कवियों ने वाल्मीकि से प्रभावित होकर उनकी शैली का भी अनुकरण किया है। महाभारत की तरह रामायण में भी लोकप्रियता ही इसमें संशोधन एवं परिवर्धन का मुख्य कारण है।

रामायण में सात भाग हैं—बालकाण्ड, अयोध्याकाण्ड, अरण्यकाण्ड, किष्किन्धा काण्ड, सुन्दरकाण्ड, युद्धकाण्ड एवं उत्तरकाण्ड। इसमें 24,000 श्लोक हैं। रामायण की कहानी इतनी प्रचलित है कि यहाँ इसका वर्णन करना आवश्यक नहीं। रामायण के अध्ययन से आभास मिलता है कि प्रथम और सप्तम काण्ड बाद में जोड़े गए हैं। यहाँ घटनाक्रम अनेक ब्राह्मण-ग्रंथों में वर्णित पौराणिक एवं दन्तकथाओं के समावेश से अवरुद्ध हो जाता है, जैसा कि महाभारत में भी है। उदाहरण के लिए प्रथम-काण्ड में ऋष्यशृङ्ग, वसिष्ठ, विश्वामित्र, मेनका, रम्भा, वामनावतार, गंगावतार और समुद्र-मन्थन से सम्बन्धित कहानियों का उल्लेख किया जा सकता है। सातवें काण्ड में हमें वे कथाएँ मिलती हैं जो महाभारत और पुराणों में भी विद्यमान हैं। उदाहरणार्थ, ययाति और नहुष की कहानियाँ, इन्द्र द्वारा वृत्रासुर का वध, वसिष्ठ और अगस्त्य के जन्म तथा राजा इला के प्रसंग प्रस्तुत किए जा सकते हैं। इन सभी का मुख्य कथानक से कोई सम्बन्ध नहीं है। समस्त सातवाँ काण्ड बाद में जोड़ा गया है और प्रथम काण्ड भी मूल का भाग नहीं है। इनमें विरोधात्मक बातें भी हैं तथा इन काण्डों की भाषा और शैली भी दूसरे से लेकर छठे काण्डों की भाषा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शैली से निम्न स्तर की है। इन बाद के दो काण्डों में राम को विष्णु का अवतार माना गया है। रामायण के मध्यवर्ती काण्ड इन्द्र को सर्वश्रेष्ठ देवता मानते हैं। दो से छः तक के बीच के काण्डों में प्रक्षिप्तांश जुड़ गए हैं, किन्तु वे भिन्न प्रकार के हैं, क्योंकि रामायण के गाने वाले इसके लोकप्रिय और सुन्दर अवतरणों में अपनी ओर से भी कुछ जोड़ देते थे। चूंकि रामायण मौखिक रूप में प्रचारित होती रही, अतः इस प्रकार के जोड़ श्रोतागण की प्रशंसा से उत्साहित होकर गाने वालों द्वारा कर दिए जाते रहे। धर्मग्रन्थ के रूप में मान्य होने के बाद लिपिबद्ध होने पर रामायण का स्वरूप निश्चित हो गया।

रामायण के तीन विभिन्न संस्करण उपलब्ध हैं जो भारत के विभिन्न क्षेत्रों में इसके प्रचलन का प्रतिनिधित्व करते हैं। ये संस्करण अवतरणों के विभिन्न पाठान्तरों, लम्बे उद्धरणों, श्लोकों की क्रमबद्धता और कभी-कभी पूरे सर्गों में अन्तर रखते हैं। ये तीन संस्करण निम्नलिखित हैं :—(1) उत्तर-दक्षिण में अत्यन्त लोकप्रिय, (2) बंगाल संस्करण, (3) उत्तर-पश्चिमी भारतीय संस्करण।

रामायण के रचना काल का प्रश्न 2 से 6 तक के काण्ड और बाद में रचित काण्ड 1 एवं 7 के बीच के समय से सम्बद्ध है। 2 से 6 तक के काण्डों में राजकुमार राम मानव नायक के रूप में हैं, जबकि काण्ड 1 और 7 में उनका विष्णु से तादात्म्य स्थापित किया गया है। इस तादात्म्यीकरण में बहुत समय लग गया होगा। यह तथ्य भी इसी निष्कर्ष की ओर संकेत करता है कि मध्यवर्ती काण्डों के कवि वाल्मीकि बाद के काण्डों में पौराणिक व्यक्ति बन गए हैं। अतः यह कहना ठीक होगा कि मध्यवर्ती काण्डों और बाद के काण्डों के बीच शताब्दियाँ बीत गईं। महाभारत का 'रामोपाख्यान' हमारे तर्क को प्रभावित नहीं करता, क्योंकि वर्तमान रामायण का यह स्वतन्त्र सारांश है और यहाँ भी राम विष्णु के रूप में हैं। राम की कहानी युधिष्ठिर को उनकी विपत्ति में सान्त्वना देने के लिए सुनाई जाती है, विशेष रूप से जब द्रौपदी का चीरहरण किया जाता है। महाभारत की यह घटना सम्भवतः रामायण की घटना का अनुकरण है। यह सब इस बात की ओर संकेत करता है कि रामायण महाभारत के अन्तिम रूप प्राप्त करने से पहले प्रधान ग्रन्थ रहा था। यह इस तथ्य को भी स्पष्ट करता है कि रामायण में प्रक्षिप्तांश अधिक नहीं हैं। यदि महाभारत ने वर्तमान रूप चौथी शताब्दी में प्राप्त किया हो, तो रामायण अपने वर्तमान रूप में इससे कुछ शताब्दी पहले आ गया होगा। इस दृष्टिकोण से रामायण वर्तमान रूप के महाभारत से अधिक प्राचीन है। संक्षिप्त होने के कारण रामायण को विकास के लिए महाभारत से कम समय लगा होगा। इस तथ्य से, कि रामायण और महाभारत में अनेक दन्तकथाएँ और पौराणिक गाथाएँ मिलती-जुलती हैं, विदित होता है कि रामायण का लघु अवधिकाल महाभारत के विकास के बृहत्तर अवधिकाल के अन्तर्गत सन्निहित है। परम्परा के अनुसार विष्णु के

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अवतारों में राम का अवतार कृष्ण के अवतार से पहले हुआ। ऐसा मत रामायण को महाभारत से पूर्वकालिक बताता है, किन्तु साहित्यिक प्रमाण इससे भिन्न निष्कर्ष की ओर संकेत करता है। पाणिनि वसुदेव, कृष्ण, अर्जुन और युधिष्ठिर का तो उल्लेख करते हैं, किन्तु वे या पतञ्जलि और ईसा के पूर्वकाल के शिलालेख राम का उल्लेख नहीं करते। यह सम्भव है कि अवतारवाद का सिद्धान्त कृष्णोपासना के फलस्वरूप निकला और इस प्रकार इस पर आधारित तर्क शक्तिहीन हो जाता है। महाकाव्यों में सती प्रथा के उल्लेख मिलने या न मिलने से कोई निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता। जैकोबी का मत है कि रामायण पहले की रचना है और महाभारत वाल्मीकि की कला के प्रभाव से महाकाव्य बन गया था, किन्तु महाभारत की सरलता एवं महाकाव्यत्व तथा रामायण की विकसित काव्य-कला विपरीत निष्कर्ष निकालती है। रामायण महाभारत की अपेक्षा बाद के लौकिक काव्य के अधिक निकट है। इसके अतिरिक्त महाभारत रामायण की अपेक्षा अधिक कठोर व्यवहार एवं रणप्रिय मनोवृत्ति का परिचायक है। महाभारत के रक्तरंजित संग्रामों की यथार्थता एवं तीव्रता रामायण के युद्धों में नहीं है। महाभारत की महिलाएँ वास्तविक वीरों की माताएँ हैं, किन्तु रामायण की रानियाँ लौकिक नाटकों की रानियों के समान हैं। महाभारत पश्चिम भारत की अपरिष्कृत सभ्यता को प्रतिबिम्बित करता है, जबकि रामायण पूर्वी भारत की परिष्कृत सभ्यता को प्रतिबिम्बित करता है। पश्चिम के लोगों का महाभारत में प्रमुख वर्णन है जबकि पूर्व के लोगों का रामायण में महत्त्वपूर्ण वर्णन है।

चूंकि रामायण पूर्वी भारत की कृति है और बौद्ध धर्म भी पूर्वी भारत में उदित हुआ, अतः उनके सम्बन्ध का प्रश्न रोचक है। त्रिपिटक के 'दशरथ जातक' में भरत दशरथ की मृत्यु का समाचार राम, लक्ष्मण और सीता को देते हैं, जो दिवंगत राजा को तर्पण देते हैं। राम सान्त्वना देते हुए और मृत्यु पर शोक मनाने की व्यर्थता का संकेत करते हुए लम्बा भाषण देते हैं। राम बारह गाथाओं में बोलते हैं, जिनमें से केवल एक (संस्कृत में) रामायण में मिलती है। इस प्रकार रामायण जातक का स्रोत नहीं है। अतः जातक एक अपेक्षाकृत पहले की राम-गाथा का अनुसरण करते हैं। 'सामजातक' रामायण की 'श्रवणकथा' के लिए प्रेरणा स्रोत प्रतीत होता है। अन्य जातकों में भी ऐसे उद्धरण हैं जो हमें रामायण की याद दिलाते हैं, किन्तु वहाँ कोई साहित्यिक सामंजस्य नहीं पाया जाता। जातक पशुओं और राक्षसों की कहानियों से भरे हैं, किन्तु राक्षस रावण और हनुमान का वर्णन किसी कहानी में नहीं है। इससे संकेत मिलता है कि चौथी और तीसरी शताब्दी ई० पू० में जब त्रिपिटक की रचना हुई, रामगाथाएँ बिखरी हुई थीं, परन्तु सम्पूर्ण रामायण महाकाव्य उपलब्ध नहीं था। रामायण राजकुमार राम विषयक प्राचीन बौद्ध दन्तकथाओं पर आधारित है जिसमें बौद्ध समभाव के आदर्श को महत्त्व दिया

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

है, स्वीकार नहीं किया जा सकता। अस्तु, वे राम सम्बन्धी वीरगाथाओं से परिचित थे, जिन्हें वाल्मीकि ने अपने रामायण के लिए प्रयुक्त किया और यह सम्भव है कि रामायण अप्रत्यक्ष रूप से बौद्ध मत से प्रभावित हो। इस प्रकार रामायण का पूर्वी भारत में प्रादुर्भाव हुआ, जबकि बौद्ध वहाँ फैल गए थे और बौद्ध शास्त्रों की रचना की जा रही थी। इस निष्कर्ष का समर्थन इस तथ्य से होता है कि रामायण का 'अनुष्टुप्' छन्द बौद्ध पालिकाव्य के श्लोक छन्द के बाद विकसित हुआ। रामायण का छन्द महाभारत के परवर्ती भागों के छन्द के अनुरूप है। तथापि जैकोबी रामायण के प्रादुर्भाव का समय बुद्ध से पूर्व मानते हैं। बुद्ध काल से लेकर अशोक के समय तक (अर्थात् छठी और पाँचवी शताब्दी ई० पू० से दूसरी शताब्दी ई० पूर्व० तक) पालि लोकप्रिय भाषा थी। दूसरे शब्दों में संस्कृत लोकभाषा नहीं थी। इसके विपरीत लोकप्रिय महाकाव्य सदा लोकभाषा में लिखे जाते हैं और ये तभी संस्कृत में लिखे जाते यदि यह बोलचाल की भाषा होती। जैकोबी का यह तर्क खण्डित हो जाता है यदि यह स्मरण रखा जाय कि संस्कृत साहित्यिक भाषा के रूप में लोकभाषाओं के साथ सदा जीवित रही है और यह व्यापक क्षेत्रों में समझी जाती रही है। यह निष्कर्ष निकालना ठीक न होगा कि रामायण और महाभारत के संस्कृत छन्द जो हमें आधुनिक प्राकृत में भी मिलते हैं, लोकभाषाओं से संस्कृत में लिए गए हैं। व्वार्थ का यह मत सर्वथा अस्वीकार्य है कि महाकाव्यों की रचना मूलरूप में प्राकृत में हुई और बाद में उनका संस्कृत में रूपान्तर हुआ। अश्वघोष जैसे बौद्ध लेखकों ने भी अपनी रचनाएँ संस्कृत में की हैं। कनिष्क के समकालीन महाकवि अश्वघोष (दूसरी शताब्दी) वाल्मीकि को महाकवि और रामायण को आदर्श महाकाव्य मानते थे। इसका तात्पर्य यह है कि दूसरी शताब्दी तक रामायण ने अन्तिम रूप प्राप्त कर लिया था। दूसरी शताब्दी के कवि कुमारलात की रचना कल्पनामण्डितिका में रामायण के सार्वजनिक गायन का उल्लेख है। वसुबन्धु (चौथी शताब्दी) के समय में रामायण सुप्रसिद्ध लोकप्रिय काव्य था। प्रथम शताब्दी के उत्तरार्द्ध में जैन साधु विमलसूरि ने रामगाथा को अपने काव्य 'पउमचरिया' में जैन धर्म एवं दर्शन की शिक्षा देने के लिए नया रूप दिया। कम्बोडिया में छठी शताब्दी में रामायण को हिन्दुओं का धर्मग्रन्थ माना जाता था। वेबर का यह मत भ्रामक है कि रामायण पर यूनानी प्रभाव लक्षित है। यवनों के सम्बन्ध में दो बार उल्लेख प्रक्षिप्तांशों में पाया जाता है और सीता एवं हेलेन, लंका और ट्राय पर आक्रमण तथा राम और यूलीसिस द्वारा धनुर्भंग की घटनाओं में किसी प्रकार का साम्य नहीं है।

रामगाथा और वैदिक साहित्य के बीच अत्यन्त सूक्ष्म सम्बन्ध है। यह निश्चित रूप से कहना कठिन है कि उपनिषदों के वैदेह जनक वही जनक हैं जो रामायण में सीता के पिता के रूप में वर्णित है। ऋग्वेद के 'पृथ्वीसूक्त' (IV. 576) में सीता

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

की स्तुति पृथ्वी देवी के रूप में की गई है। अतः पृथ्वी से उसका सम्बन्ध अत्यन्त प्राचीन प्रतीत होता है। इसलिए रामायण में भी सम्भवतः सीता के इस स्वरूप को सुरक्षित रखा गया है. जहाँ पृथ्वी के गर्भ से सीता की उत्पत्ति और अन्त में उसी में प्रवेश का वर्णन मिलता है। 'गृह्यसूत्र' सीता के व्यक्तित्व का स्पष्ट रूप से वर्णन करते हैं तथापि वैदिक सीता महाकाव्य की सीता से नितान्त भिन्न है। रामायण की राम-सीता-कथा की रूपरेखा ढूंढ़ने के मेगेलीन के प्रयत्न विलक्षण प्रतीत होते हैं। इसी प्रकार राम-रावण युद्ध में इन्द्र-वृत्र युद्ध की झलक देखने के जैकोबी के प्रयत्नों से रामगाथा का वेद से कोई सम्बन्ध प्रमाणित नहीं होता।

3. पुराण

पुराण उत्तरकालीन हिन्दू धर्म, वैष्णवमत और शैवमत के लिए वैसे ही हैं जैसे प्राचीन ब्राह्मण धर्म के लिए वेद हैं। पुराण महाकाव्यों से घनिष्ठ रूप से सम्बन्वित हैं। महाभारत और रामायण के कई भाग और समस्त हरिवंश में पुराण के लक्षण पाए जाते हैं। प्राचीनता की दृष्टि से पुराण की जड़ें वैदिक साहित्य में हैं। कई वैदिक गाथाएँ पुराणों में पुनः प्रकट होती हैं। पुराण शब्द का अर्थ है प्राचीन घटना-वर्णन और वैदिक साहित्य में यह सर्वदा इतिहास शब्द से सम्बद्ध है। यह सन्दिग्ध है कि ये प्रसंग उन पुराणों का संकेत करते हैं जैसा हम उन्हें जानते हैं। अस्तु, अथर्ववेद चारों वेदों के साथ पुराण का संकेत करते हैं। सूत्र-साहित्य के समय में वास्तविक पुराण प्रादुर्भूत हुए और गौतमसूत्र एक राजा को वेद और स्मृतिग्रन्थ के साथ पुराण को भी विधि के लिए प्रमाण मानने का परामर्श देता है। आपस्तम्ब धर्मसूत्र में पुराण से तीन उद्धरण हैं जिनमें से एक भविष्यपुराण से है। हमारा उद्देश्य पुराणों में ये उद्धरण खोज निकालना नहीं है, तथापि ये पुराणों के अस्तित्व को प्रमाणित करते हैं। इसका तात्पर्य यह है कि तीसरी और पहली शताब्दी ई० पू० में ऐसे ग्रन्थ थे जो हमारे पुराणों से मिलते-जुलते हैं। यह सम्भव है कि वर्तमान पुराणों में से अनेक पुराण उसी श्रेणी के पूर्ववर्ती पुराणों से बने हैं। इन नए पुराणों में सृष्टि विषयक परम्पराओं, देवों और महापुरुषों के कृत्य, मानवजाति के पूर्वज, राजपरिवारों की वंशावलियों के संग्रह हैं।

महाभारत भी इंगित करता है कि पुराण अधिक प्राचीन हैं। महाभारत पुराण ग्रन्थों की भाँति प्रारम्भ होता है और कथावाचक उग्रश्रवस पुराणों में निष्णात है। महाभारत में पुराणों से आने वाले आख्यान, गाथाओं और श्लोकों को परिवर्तित किया गया है। हरिवंश वायुपुराण को उद्धृत करता है और अनेक स्थलों पर वायुपुराण से साम्य रखता है। अनेक आख्यान महाकाव्य और पुराण में समान हैं। महाभारत के एक परवर्ती श्लोक में अठारह पुराणों का उल्लेख है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इसका तात्पर्य यह है कि पुराण महाकाव्यों से पहले विद्यमान थे। पुराण महाकाव्यों की भाँति असामंजस्यपूर्ण हैं और यह सम्भव है कि महाकाव्य और पुराण के समान अंश किसी प्राचीन स्रोत से निकले हैं। यह कहना ठीक नहीं है कि सभी पुराण एक पुराण से निकले हैं। पुराण शब्द प्राचीन परम्परा के पौराणिक साहित्य को सूचित करता है।

पुराण के पाँच लक्षण हैं अर्थात् यह पाँच विषयों का वर्णन करता है—सर्गः, (सृष्टि) प्रतिसर्गः (पुनःसृष्टि), वंशः, मन्वन्तरम् एवं वंशानुचरितम् (सूर्यवंशी और चन्द्रवंशी राजाओं का इतिहास)। सामान्यतया पुराणों में इन विषयों का और कुछ अन्य विषयों का समावेश है, जबकि कुछ पुराण इन विषयों का कोई वर्णन नहीं करते बल्कि इनसे भिन्न विषयों का प्रतिपादन करते हैं। पुराण स्वभावतः साम्प्रदायिक हैं और विष्णु, शिव इत्यादि किसी एक या दूसरे देवता की उपासना हेतु समर्पित हैं। उनमें—दर्शन साङ्ख्य, योग और वेदान्त पर भी सामग्री हैं। उनमें वर्णों और आश्रमों के कर्तव्य एवं अधिकार, ब्राह्मणों के सामान्य अधिकार, विशेषतः, अन्त्येष्टि संस्कार (श्राद्ध), देवताओं के सम्मान में उत्सव और अनुष्ठान पर भी अध्याय हैं। परम्परागत रूप से व्यास पुराणों के संकलनकर्ता माने जाते हैं।

अनेक पुराण भूतकाल की घटनाओं एवं शिशुनाग, नन्द, मौर्य, शुंग, आन्ध्र एवं गुप्तों के राजवंशों का उल्लेख करते हैं। पुराणों से उपलब्ध इस ऐतिहासिक सामग्री का सावधानी से प्रयोग करना होगा, जैसा कि स्मिथ और पार्जिटर के प्रयत्न प्रदर्शित करते हैं। वे शक, कुशाण, हूण, आभीर और गर्द्धभिल के आक्रमणों का वर्णन करते हैं। ये सब प्रसंग सूचित करते हैं कि प्रारम्भिक पुराण सातवीं शताब्दी के पहले अस्तित्व में आ गए थे। बौद्ध और दिगम्बर जैनों के अपने पुराण हैं। इन सभी पुराणों का समान केन्द्रबिन्दु भक्ति की अतिरंजना प्रतीत होती है। विलसन का मत उचित नहीं है कि पुराण पिछले हजार वर्षों में प्रादुर्भूत हुए, क्योंकि 600 ई० में बाण वायुपुराण के पठन की चर्चा करते हैं। कुमारिल (750 ई०) और रामानुज (1200 ई०) पुराण को पवित्र एवं प्राचीन ग्रन्थ मानते हैं। अलबरुनी (1030 ई०) अठारह पुराणों से परिचित है और आदित्य, वायु, मत्स्य और विष्णु पुराणों की ओर संकेत करते हैं। उन्होंने विष्णु धर्मोत्तर पुराण का समालोचनात्मक अध्ययन किया है। वेद इतिहास और पुराणों से सुदृढ़ किए जाते हैं। पुराण जिस प्रामाणिकता के सूचक हैं वह उनकी प्राचीनता का द्योतक है।

प्राचीन भारत के राजनैतिक इतिहास के ज्ञान के लिए पुराण बहुमूल्य हैं। धर्म के इतिहास के लिए भी उनका बड़ा महत्त्व है। हिन्दू धर्म के सभी पक्षों और अवस्थाओं में वे अन्तर्दृष्टि प्रदान करते हैं। साहित्यिक रचनाओं के रूप में वे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बहुत सन्तोषजनक नहीं प्रतीत होते, क्योंकि वे रूप अथवा आयाम के प्रति ध्यान नहीं देते। उनकी भाषा उपयुक्त नहीं है और छन्दोवद्धता भी उच्चकोटि की नहीं है। उनकी शैली की विशेषता अतिशयोक्ति है। इतना होने पर भी पुराणों में उत्कृष्ट स्थल हैं जो हमें अपनी सरलता एवं भावप्रवणता से आकर्षित करते हैं।

अठारह पुराण ये हैं:—ब्रह्म, पद्म, विष्णु, वायु, भागवत, नारद, मार्कण्डेय, अग्नि, भविष्य, ब्रह्मवैवर्त, लिङ्ग, वराह, स्कन्द, वामन, कूर्म, मत्स्य, गरुड़ और ब्रह्माण्ड। एक परम्परा के अनुसार वैष्णव पुराण (विष्णु, नारद, भागवत, गरुड़, पद्म और वराह) सात्विक हैं और उनके अध्ययन से मुक्ति मिलती है। ब्रह्म से सम्बद्ध पुराण (ब्रह्मांड, ब्रह्मवैवर्त, मार्कण्डेय, भविष्य, वामन और ब्रह्म) राजस हैं तथा इनका अध्ययन स्वर्ग प्रदान करता है। शिव पुराण, (मत्स्य, कूर्म, लिङ्ग और अग्नि) तामस हैं और उनके अध्ययन से नरक मिलता है। ऐसा वर्गीकरण किसी समीक्षात्मक अध्ययन पर निर्भर नहीं है, क्योंकि पुराणों का शैव, वैष्णव और ब्रह्म में विभाजन अवैज्ञानिक है। हमें कृष्णोपासना एवं सूर्योपासना की शिक्षा इन पुराणों में मिलती है। हमें शिवपुराण में वैष्णव परिच्छेद भी मिलते हैं और इसका विपर्यय भी। परम्परा से 18 उपपुराण विदित होते हैं, तथापि उनके नामों के बारे में ऐकमत्य नहीं है।

महाकाव्यों की भाँति पुराण भी उत्तरकालीन कवियों और नाटककारों के लिए उपजीव्य रहे हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

III. 2 नीतिकथा साहित्य

परियों की कथाएं, पौराणिक कथाएँ और उपदेशपरक कथाएँ आदिमानव के साथी रहे हैं। सभ्यता के अतिप्राचीन काल में मानव को मनोरंजन की आवश्यकता प्रतीत हुई होगी और उसने आख्यायिकाओं और कथाओं के बारे में सोचा होगा। पौराणिक कथाविज्ञान और तथ्यों की व्याख्या, उसकी तर्कबुद्धि की क्रीड़ा थी, जबकि आख्यायिका और कथा प्रमुखत: उसकी कल्पना की क्रीड़ा थी। बाद में शिक्षा मनोरंजन का अतिरिक्त साधन बन गई होगी और कथा का उपयोग शिक्षाकार्य के लिए किया गया होगा। मानव और पशु के बीच घनिष्ठ सम्बन्ध के बोध से कथाओं का जन्म होता है ओर इनके द्वारा पशु आचरण से मानव आचरण प्रतिविम्बित किया जाता है। इस प्रकार निर्मित जो कथाएँ होती हैं वे स्वभावत: प्रवर्धित होती रही हैं और अन्त में राष्ट्रीय महाकाव्यों जहाँ वे भविष्य के लिए नि:सन्देह सुरक्षित रह जाती हैं, में स्थान पाती हैं। ऋग्वेद के मण्डूक सूक्त (VII.102) में मेढ़क ब्राह्मणों से मिलते-जुलते हैं, जबकि उपनिषदों में कुत्ते पुरोहितों की भाँति मन्त्रों का उच्चारण करते हुए एक दूसरे की पूँछ पकड़कर पंक्ति में चलते हैं। महाभारत बिल्ली और चूहों, कौवे और सियारों की कथाओं से परिपूर्ण हैं और पाण्डवों को कई बार इन पशुओं की कहानियों के द्वारा शिक्षा प्रदान की जाती है। बौद्ध मूर्तिकला से भी पशुओं और मानव के बीच ऐसा ही घनिष्ठ सम्बन्ध परिलक्षित होता है। इसी सामग्री से कदाचित् पञ्चतन्त्र का विकास हुआ होगा।

पञ्चतन्त्र

पशुकथाएँ पतञ्जलि (पाणिनि, 21.3) के समय में प्रचलित थी, किन्तु आज उस समय की कोई पूरी कृति उपलब्ध नहीं है। पञ्चतन्त्र में हमें अनेक कहानियाँ मिलती हैं जो विशद हैं, किन्तु कलाविहीन हैं। पञ्चतन्त्र की सभी कहानियों में

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उनकी अपनी नैतिक शिक्षाएँ हैं और इस रूप में वे नीतिशास्त्र और अर्थशास्त्र से सम्बन्धित हैं। एक अर्थ में यह कहा जा सकता है कि वे धर्मशास्त्र के विपरीत हैं, क्योंकि धर्मशास्त्र उच्चतर आचारशास्त्र और नीतिशिक्षा पर बल देता है, जबकि कथाएँ सांसारिक अनुभव देती हैं और व्यवहार कुशलता सिखलाती हैं। निःसन्देह यहाँ पर धर्मशास्त्र के प्रभाव को सर्वथा अस्वीकार करना उद्देश्य नहीं है, क्योंकि हिन्दू सिद्धान्त के अनुसार जीवन में सफलता का आधार नैतिक होना चाहिए। पञ्चतन्त्र में संस्कृत का प्रयोग है, क्योंकि संस्कृत राजपुत्रों को पढ़ाई जाती थी और यह शिष्ट समाज की अधिकृत भाषा थी।

यहाँ कथा का रूप ऐसा होता है कि पूरी कहानी गद्य में वर्णित की जाती है और अन्त में एक श्लोक से उसका समापन होता है, जिसमें नीतिशिक्षा निहित होती है। सत्य की अर्थात् नीतिशिक्षा के मूल भाव की अभिव्यक्ति श्लोकों में ही की जाती थी, जो कि प्रायः सूक्ति रूप में होने के कारण सरलता से याद की जा सकती थी। पूर्णतया पद्य में अथवा अधिकांशतः पद्य में रचित कथाएँ बाद का विकास-क्रम है।

कथाओं को परस्पर गूँथने और उनको मंजूषा-व्यवस्था में प्रस्तुत करने का प्रयोजन जानबूझकर यह रहा है कि उद्देश्य की एकरूपता प्राप्त की जाय। इस पद्धति से कथा के पात्र अन्तिम श्लोक में किसी दूसरी कथा और उसके पात्रों को एक सहायक दृष्टान्तों के द्वारा संकेतित करते हैं और तब उससे सम्बन्धित कथा प्रारम्भ हो जाती है। इस प्रकार हमें अन्तर्निहित कथाओं के अन्तर्गत दूसरी अन्तर्निहित कथाएँ मिलती जाती हैं। इस व्यवस्था में केवल एक दोष है, वह यह कि मुख्य घटना का सूत्र यदि विस्मृत नहीं होता, तो लुप्त अवश्य हो जाता है, किन्तु इसमें घटनाओं की अविच्छिन्नता बनाए रखने, कथावस्तु के विषय में उत्सुकता बढ़ाने और आगामी कथा की उपयुक्त प्रस्तावना देने का एक निश्चित गुण विद्यमान रहता है। इस प्रकार की प्रचलित कथाओं का भण्डार रहा होगा जिसका हिन्दू, बौद्ध और जैन सभी ने अपने-अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए पुनर्गठन किया होगा। इस प्रकार हमें महाभारत, बौद्धजातक और जैनसाहित्य में कथाएँ प्राप्त होती हैं।

रूप-विधान की दृष्टि से पञ्चतन्त्र का रूप ऐसा प्रतीत होता है जिसे संस्कृत काव्यशास्त्र मान्यता नहीं देता, क्योंकि विभिन्न कहानियाँ कथा कहलाती हैं, जबकि एक संस्करण में यह ग्रन्थ आख्यायिका कहलाता है। इससे प्रतीत होता है कि कथा और आख्यायिका का जो औपचारिक भेद परवर्ती संस्कृत काव्यशास्त्र में मिलता है वह यहाँ नहीं मिलता। इसका रूप बहुत ही अपरिवर्तनीय है। परवर्ती हितोपदेश के अन्तर्गत इस रूप का जो विकास होता है उसमें पशु-कथा का मानव जीवन से संश्लेष प्राप्त होता है। इस प्रकार के महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ हैं—पञ्च-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तन्त्र (पाँचवीं शताब्दी), नारायण रचित हितोपदेश (तेरहवीं शताब्दी) गुणाढ्य की बृहत्कथा, (छठी शताब्दी), क्षेमेन्द्र की बृहत्कथामञ्जरी (ग्यारहवीं शताब्दी) और सोमदेव का कथासरित्सागर (ग्यारहवीं शताब्दी)। विद्वानों ने पञ्चतन्त्र के पुनर्गठन के और इसके स्रोतों के कुछ निदर्शन प्राप्त करने के प्रयत्न किए हैं। पंचतन्त्र के सम्भवत: चार संस्करण हैं: पहला संस्करण जो 570 ई० के पहले प्राचीन सीरियन और अरेबियन संस्करणों के परिष्कार से बना, दूसरा उत्तर-पश्चिमी संस्करण है जो गुणाढ्य की बृहत्कथा का प्रक्षिप्तांश प्रतीत होता है, तीसरा संस्करण कश्मीरी तंत्राख्यायिका में दिखाई पड़ता है और चौथा संस्करण वह संस्करण है जो दक्षिणी पञ्चतन्त्र, नेपाली पञ्चतन्त्र और लोकप्रिय हितोपदेश का आधार प्रतीत होता है। इसके आगे हम कुछ भी निश्चयपूर्वक नहीं कह सकते, सिवाय इसके कि ग्रंथ का मूलनाम पञ्चतन्त्र ही रहा होगा। हर्टेल और एड्गेर्टन द्वारा मूल ग्रन्थ का पुनर्गठन करने के प्रयत्न चाहे जितने उत्साहपूर्ण रहे हों, वे पूर्णत: विश्वसनीय नहीं है। मूल पञ्चतन्त्र का पुनर्गठन कार्य अत्यन्त कठिन है।

तन्त्र शब्द का वास्तविक अर्थ क्या है? यह एक पुस्तक या अध्याय या एक प्रकार की युक्ति या अधिकृत निवन्धन कुछ भी हो सकता है। क्या इसका अर्थ यह है कि नीति से सम्बद्ध पाँच पुस्तकें थीं जो आख्यायिका के रूप में नीति का वर्णन करती थीं? पञ्चतन्त्र में महाभारतकालीन घटनाओं तथा पात्रों का समावेश मिलता है। इसमें दीनार शब्द का भी उल्लेख है जिससे यह ईसवी सन् के बाद का प्रतीत होता है। इसकी रचना पर स्पष्ट रूप से ब्राह्मण प्रभाव होने के कारण गुप्तों के समय या उनके अन्तिम काल के संकेत इसमें मिलते हैं। भौगोलिक दृष्टि से यह दक्षिण प्रदेश का हो सकता है क्योंकि राजा अमर शक्ति जिसके पुत्रों को यह सुनाया जाता है दक्षिण में महिलारोप्य पर शासन करता था। कथाओं में चीता और हाथी के उल्लेख न होने और ऊँट के उल्लेख के कारण, हर्टेल इसे काश्मीर में उद्भूत मानता है, किन्तु इस मत को स्वीकार करना कठिन है। पुष्कर, हरिद्वार, प्रयाग और वाराणसी जैसे तीर्थों का उल्लेख परम्परागत प्रतीत होता है जिसका उपयोग पाठ का प्रदेश-निर्णय करने में नहीं किया जा सकता।

पञ्चतन्त्र राजनीति और व्यावहारिक अनुभवों के विषय में राजाओं के पथ-प्रदर्शन और शिक्षा हेतु एक ग्रन्थ है। पञ्चतन्त्र का समाज अनिवार्य रूप से ब्राह्मणों का समाज है। मन्त्री ब्राह्मण हैं, यज्ञ सम्पन्न होते हैं, संस्कार किए जाते हैं और अमावस्या एवं पूर्णमासी के अवसर पर दान दिए जाते हैं। कपटी साधु, लोभी पुरोहित, धूर्त स्त्री, शठ राजा आदि का भी उल्लेख होता है, किन्तु इनका ब्राह्मण धर्म से कोई विरोध नहीं होता। इसमें बौद्ध प्रवृत्तियाँ नहीं पाई जाती और बेनफ़ी का यह मत कि पञ्चतन्त्र का मूल एक बौद्ध पुस्तक है, स्पष्टत:

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अविश्वसनीय है। जातककथाओं और पञ्चतन्त्र में समानताएँ हैं किन्तु इससे कुछ भी प्रमाणित नहीं होता। पञ्चतन्त्र के लेखक को अर्थशास्त्र का अच्छा ज्ञान था अथवा यह भी हो सकता है कि अर्थशास्त्र और पंचतन्त्र दोनों किसी एक ही स्रोत से निस्सृत हैं। पहले तन्त्र (अध्याय) में मित्रभेद, दूसरे तन्त्र में मित्रलाभ, तीसरे तन्त्र में युद्ध और शान्ति तथा चौथे तन्त्र में सुख के नाश का वर्णन है। वे शीर्षक अपने-अपने तन्त्र (अध्याय) में प्रकरणों का अत्यन्त सामान्य परिचय देते हैं, किन्तु विशिष्ट कथाएँ समर्थक सिद्धान्तों का प्रतिपादन करती हैं।

पञ्चतन्त्र निःस्सन्देह एक कलाकृति है, क्योंकि कथा का जटिल विन्यास, गद्य-पद्य का कुशल सम्मिश्रण, कहानी की शिक्षा का सुन्दर सारांश, इत्यादि से कथाकार की कला का परिचय मिलता है। हमें उत्कृष्ट भाव-प्रधान काव्य के दर्शन होते हैं और लेखक करुणा, व्यंग्य, सारांशीकरण एवं शिक्षाप्रद नीति के विभिन्न उद्देश्यों की पूर्ति के लिए पद्य का प्रयोग करने में सिद्धहस्त लगता है। वह उन सूक्तियों के द्वारा जो संस्कृत प्रेमियों के लिए निधि हैं, आनन्दित करने में सफल होता है। इसके शब्द-विधान में श्लेष, उपमा, रूपक जैसे सरल अलंकार पाए जाते हैं और इसकी शैली परिष्कृत है। इसमें लम्बे समासों का प्रयोग नहीं है जो लौकिक संस्कृत के गद्य की प्रमुख विशेषता है। हास्य के सूक्ष्म पुट से वर्णन शैली सजीव हो जाती है। कर्तृवाच्य से कर्मवाच्य की प्रधानता अधिक है। भूतकाल का बोध निपात के प्रयोग द्वारा हुआ है। इसमें सार्वकालिक वर्तमान का भी व्यवहार मिलता है। समग्र दृष्टि से वर्णन शैली अत्यन्त रोचक है और एक संस्कृत के प्रारम्भिक छात्र के लिए इससे अच्छी पुस्तक अनुमोदित नहीं की जा सकती।

2. हितोपदेश

नारायण का हितोपदेश बंगाल में अत्यन्त लोकप्रिय है। नारायण के संरक्षक धवलचन्द्र थे और चूँकि हितोपदेश की एक हस्तलिपि की तिथि 1373 ई० अंकित है, उनका जीवनकाल इसके पहले रहा होगा। इस बात से कि रविवार, भट्टारक-वार, को वे किसी कार्य का प्रारम्भ करने के लिए निषेध करते हैं, सूचित होता है कि यह रचना बाद की है। उनका गौरीपूजा का उल्लेख और बंगाल के तान्त्रिकों के घृणित अनुष्ठानों (कर्मकाण्ड) के विवरण यह सूचित करते हैं कि वह बंगाल से सुपरिचित थे। ऐसा प्रतीत होता है कि नारायण ने पञ्चतन्त्र और कामन्दकीय नीतिसार का उपयोग किया है। इसके अतिरिक्त उन्होंने कई नवीन कथाएँ जोड़ी हैं। नारायण शैवमतानुयायी प्रतीत होते हैं, क्योंकि वह शिव को प्रसन्न करने के लिए यज्ञों का समर्थन करते हैं, गौरी की उपासना का वर्णन करते हैं और प्रत्येक अध्याय के अन्त में पद्य द्वारा अपने को शिव का कृपाकांक्षी बताते हैं। हितोपदेश का पहला और दूसरा अध्याय पञ्चतन्त्र के प्रतिरूप हैं, जबकि तीसरा और चौथा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अध्याय उनकी अपनी देन हैं। संभवत: सभी अध्यायों में उन्होंने नई कहानियाँ जोड़ी हैं। उन्होंने महाभारत, वेतालपञ्चविंशति, शुकसप्तति इत्यादि बाह्य स्रोतों का भी अवलोकन किया होगा। नारायण की शैली सरल एवं प्रसाद गुण से युक्त है। वे कठिन वाक्य विन्यास और कठिन रूपों का परिहार करते हैं। उनके श्लोक पण्डितों के दैनिक वार्तालापों को प्रायः अनुप्राणित करते हैं।

3. बृहत्कथा

मूल बृहत्कथा का न मिलना वास्तव में बहुत बड़ी हानि की बात है। प्रसंगों से अनुमान किया जाता है कि गुणाढ्य और उनकी कृति बृहत्कथा अत्यन्त उत्कृष्ट साहित्यिक कला की बृहत् भण्डार रही होगी। सुवन्धु, वाण और दण्डी के ग्रन्थों में उनके सन्दर्भ उनकी महत्ता सूचित करते हैं। कम्बोडिया के सन् 875 ई० के शिलालेख में गुणाढ्य का उल्लेख है। अत: इन सब सन्दर्भों के आधार पर गुणाढ्य छठी शताब्दी के पूर्व के प्रतीत होते हैं। क्षेमेन्द्र की बृहत्कथामञ्जरी, सोमदेव के कथासरित्सागर और जयरथ के हरचरितचिन्तामणि से गुणाढ्य की पौराणिक और रहस्यमय जीवनी पर प्रकाश पड़ता है। स्पष्ट बात केवल यह मिलती है कि गुणाढ्य गोदावरी के किनारे प्रतिष्ठान नामक स्थान में एक सातवाहन नरेश के साथ रहते थे और जब वे एक वैयाकरण से परास्त हुए, तो उन्होंने अपने ग्रन्थ में संस्कृत, प्राकृत या देशी बोली का प्रयोग न करने का प्रण किया। विन्ध्य के वनों में तथा अन्यत्र घूमते हुए उन्होंने लोकप्रिय वृत्तान्तों का संग्रह किया और उनका पैशाची भाषा में वर्णन किया। नेपालमाहात्म्य में प्राप्त एक दूसरे वर्णन के अनुसार वे मथुरा के निवासी थे और उज्जैन के राजा मदन के दरबार के पण्डित थे। बाण इस गाथा से अनभिज्ञ हैं। गुणाढ्य ने स्पष्टत: उज्जैन और कौशाम्बी के दृश्यों से प्रेरणा प्राप्त की थी और कई तथ्य उनके सातवाहनों से सम्पर्क की पुष्टि करते हैं। यह कहना अति कठिन है कि भास गुणाढ्य को जानते थे या नहीं। जो कुछ भी कहा जा सकता है, वह यह है कि गुणाढ्य 500 ई० के बाद के नहीं हो सकते।

हम निश्चित रूप से नहीं जानते कि यह ग्रन्थ गद्य में था अथवा पद्य में। काश्मीरी संस्करण से संकेत मिलता है कि गुणाढ्य की रचना श्लोकों में थी, जबकि दण्डी का इसे कथा रूप में वर्णित करना सूचित करता है कि यह गद्य में लिखी गई थी। यह जातकमाला की भाँति ऐसा ग्रन्थ रहा होगा जिसमें गद्य और पद्य मिश्रित एवं गुँथे रहे होंगे। गुणाढ्य के ग्रन्थ से उद्धरणों के अभाव में इस विषय पर कुछ और अधिक कहना कठिन है। वह बोली, जिसमें यह ग्रन्थ लिखा गया, पैशाची थी। ग्रियर्सन ने काफिरिस्तान, स्वातघाटी, चित्राल और गिलगित में व्यवहृत पैशाची भाषाओं और बोलियों का वर्णन किया है। काश्मीरी संस्करण के आधार पर गुणाढ्य के अनुसार पैशाची बोली विन्ध्य के समीप में भी बोली

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जाती थी। पैशाची भाषा पर वैयाकरणों के भ्रामक कथनों को देखते हुए, पैशाची को कोई निश्चित भौगोलिक स्थान प्रदान करना कठिन है। सम्भवत: गुणाढ्य ने विन्ध्य प्रदेशीय पैशाची का प्रयोग किया जो द्रविड़ क्षेत्र में बोली जाती थी।

अपने स्रोतों के सीमित होने के कारण हम बृहत्कथा के वर्ण्य विषय के बारे में कोई धारणा नहीं बना सकते। सम्भवत: यह प्रतीत होता है कि उन्होंने रामायण से पति द्वारा अपनी अपहृत पत्नी की खोज करने का भाव लिया, बौद्ध गाथाओं और सदृश परम्पराओं से प्रद्योत और उदयन के उज्जैन और कौशाम्बी के रूमानी परिवेश को चुना और बौद्ध धर्म से उन्होंने 'चक्रवर्ती सम्राट्' का भाव ग्रहण किया। नरवाहनदत्त मानसवेग द्वारा अपहृत मदनमञ्जूषा को पुन: प्राप्त करने के लिए प्रयत्न करता है। इस कार्य में उसे मन्त्री गोमुख से सहायता मिलती है। गुणाढ्य उस समाज के कवि प्रतीत होते हैं जिसके मुख्यत: सौदागर, व्यापारी, मल्लाह और कारीगर इत्यादि ही पाठक थे। मन्त्री गोमुख हमें यौगन्धरायण की याद दिलाती है जबकि मदनमञ्जूषा वसन्तसेना की याद दिलाती है। दशकुमारचरित के लेखक दण्डी, यशस्तिलक के लेखक सोमदेवसूरि और तिलकमञ्जरी के लेखक धनपाल पर गुणाढ्य का प्रचुर प्रभाव प्रतीत होता है। गुणाढ्य का मूल ग्रन्थ हमारे सामने नहीं है, किन्तु हमारे समक्ष वर्तमान बृहत्कथा के रूपान्तरों से उसकी हल्की झलक मिल सकती है।

4. बृहत्कथाश्लोकसंग्रह

यह ग्रन्थ केवल खण्डित रूप में ही सुरक्षित है। यह सर्गों में विभाजित है और हमें केवल 28 सर्ग प्राप्त हैं जिनमें लगभग 4539 श्लोक हैं। इसमें प्रारम्भ में प्रद्योत की मृत्यु के बाद की घटनाएँ वर्णित हैं और इस विवरण के बाद नरवाहनदत्त, मदनमञ्जूषा, मानसवेग और दूसरों के साहसिक कार्यों का वर्णन आता है। इसमें नरवाहनदत्त के गन्धर्वदत्ता एवं अशिनवती प्रियदर्शना से विभिन्न विवाहों का वर्णन है। बुद्धस्वामी मूल का यथावत् अनुकरण करते हैं। श्लोकसंग्रह में मदनमञ्जूषा और नरवाहनदत्त के चरित्र एवं उनके पारस्परिक सम्बन्ध दोनों का अधिक संगत निर्वाह हुआ है। कश्मीरी संस्करण की अस्पष्टता श्लोकसंग्रह में अधिक स्पष्ट हुई हैं और इसमें अस्पष्ट घटनाक्रमों को पर्याप्त ढंग से परिलक्षित किया गया है। बुद्धस्वामी ने उदयन के साहसिक कार्यों की अपेक्षा नरवाहनदत्त के साहसिक कार्यों पर अधिक ध्यान दिया है। बुद्धस्वामी ने गुणाढ्य की कृति को आधार बनाया है, अत: वे अधिक मौलिक होने का दावा नहीं कर सकते। तथापि सुचित्रित पात्रों, जटिल साहसिक कार्यों, तीव्रगामी कथाओं और रोचक किरणों के लिए उन्हें श्रेय मिलना चाहिए। उनकी शैली सरल, स्पष्ट, और गतिशील है, काव्य के अलंकरण उनके घटनाक्रम को अवरुद्ध नहीं करते।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

5. कश्मीरी बृहत्कथा

कश्मीरी बृहत्कथा में नरवाहनदत्त की गौरव गाथा के मूल अंश संक्षिप्त रूप में सुरक्षित हैं। इस गाथा के साथ ऐसी और भी गौरव गाथाएँ जोड़ दी गईं जो लोकप्रिय थीं। इन जोड़े गए भागों को अब अलग करना कठिन है क्योंकि हम कश्मीरी वृहत्कथा का अपूर्ण श्लोकसंग्रह से मिलान नहीं कर सकते। पञ्चतन्त्र और वेतालपञ्चविंशतिका के संस्करणों में स्पष्टत: जोड़े हुए भाग हैं, क्योंकि नरवाहनदत्त के कथानक से उनका कोई वास्तविक अथवा आंगिक सम्बन्ध नहीं है। पूरी संभावना है कि यह ग्रन्थ पैशाची में ही हस्तान्तरित हुआ होगा, क्योंकि किसी का भी यह धारणा बना लेना औचित्यपूर्ण होगा कि यदि यह ग्रन्थ पहले संस्कृत में लिखा होता तो क्षेमेन्द्र और सोमदेव दोनों इससे प्रभावित होते।

6. बृहत्कथामञ्जरी

महाभारतमञ्जरी और रामायणमञ्जरी की भाँति वृहत्कथामञ्जरी भी क्षेमेन्द्र का काव्य-व्यायाम है। ये सब मञ्जरियाँ ऐसी संक्षिप्तियाँ हैं जो रूक्ष एवं गहन हैं यद्यपि वे मूल को ज्यों का त्यों प्रस्तुत करती हैं। क्षेमेन्द्र की त्रुटियों और काँट-छाँट ने दुरूहता ला दी है। परिणाम यह होता है कि उनके वर्णनों में जीवन और आर्कषण का अभाव है। अपने अठारह लम्भकों में उन्होंने नायक की जीत का वर्णन किया है। प्रत्येक लम्भक में किसी महत्त्वपूर्ण उपलब्धि पर विचार किया गया है। कथापीठ भूमिका-रूप में है, जिसके वाद उदयन के साहसिक कार्य आते हैं। विशेषरूप से, वासवदत्ता के लुप्त हो जाने के वाद रत्नावली के साथ उसके विवाह की घटना, तत्पश्चात् नरवाहनदत्त के साहसिक कार्य आते हैं। क्षेमेन्द्र चार कुमारियों को प्राप्त करने वाले शक्तिवेग की कहानी, सूर्यप्रभा की गौरव गाथा, कलिंगदत्ता का विवरण, वेला का विवरण, ललितलोचना का विवरण, विक्रमादित्य की गाथाओं का विवरण और राजा मुक्तफलकेतु का विवरण देते हैं। रत्नप्रभा और अलंकारवती के विवरण रोचक हैं, क्योंकि इन विवरणों से प्रकट होता है कि क्षेमेन्द्र महाभारत से प्रभावित थे। समस्त वृत्तान्त नरवाहनदत्त पर केन्द्रीभूत हैं, किन्तु इस विषय में इतनी अधिक कहानियाँ हैं कि वे क्षेमेन्द्र की कृति को उपाख्यान का रूप दे देती हैं। कश्मीरी संस्करण में विच्छेद के प्रसंग और अतिरिक्त विषय भी हैं। नरवाहनदत्त कई कुमारियों से विवाह करता है और शत्रुओं को परास्त करता है किन्तु वृत्तान्त में संगति लाने के लिए लेखक की ओर से प्रयास दिखलाई नहीं पड़ता। गुणाढ्य का वृत्तान्त अधिक गठित रहा होगा, पर क्षेमेन्द्र का लक्ष्य उन विभिन्न गाथाओं को, जिन्हें वह जानते थे, आपस में गूँथ देना ही प्रतीत होता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

7. कथासरित्सागर

राम के पुत्र कश्मीरी ब्राह्मण सोमदेव ने अनन्त की पत्नी और कलश की माता सूर्यमती के विनोद के लिए 1063-1081 ई० के लगभग कथासरित्सागर लिखा। सोमदेव ने अपने ग्रन्थ में लम्भक और तरंग दोनों रखा है और सम्भवतः ग्रन्थ के शीर्षक के 'सागर' होने के कारण तरंग शब्द उनके ध्यान में आया होगा। स्पष्टतः ये विभाग मूलग्रन्थ से नहीं लिए गए हैं। सोमदेव हमें स्वयं बतलाते हैं कि उन्होंने समस्त वृत्तान्त को नया रूप प्रदान किया है और कथा की मूल भावना को नष्ट होने नहीं दिया है। वृत्तान्त को प्रभावशाली बनाने की सोमदेव की चिन्ता सर्वत्र दिखाई पड़ती है और इस दृष्टिकोण से उनके ग्रन्थ एवं क्षेमेन्द्र के ग्रन्थ का तुलनात्मक अध्ययन अत्यन्त उपयोगी होगा। उन्होंने इस सामग्री का पूर्ण परिष्कार किया है और इसे इतना सुगठित बनाने का प्रयास किया है, जो बड़ा आकर्षक बन पड़ा है। इस सन्दर्भ में रत्नप्रभा एवं अलंकारवती के विवरण उदाहरण रूप में दिए जा सकते हैं। इतनी सावधानी बरतने पर भी सोमदेव के लिए अपनी सामग्री की सभी विभिन्नताओं को एकत्व प्रदान करना सम्भव नहीं हो सका है, किन्तु सोमदेव की कुशलता कथा की रचना में उतनी निहित नहीं है जितनी वर्णनात्मकता में है। उनका घटना-वर्णन सदैव स्पष्ट रहता है और वह भी ऐसी शैली में जो बीभत्स, रोमांचपूर्ण, हास्यपूर्ण और अतिमानवीय वर्णनों के लिए अलग-अलग ढ़ंग से अनुरूप प्रतीत होती है। सोमदेव इतने शुष्क या नीरस नहीं हैं जितना क्षेमेन्द्र हैं और जिस कहानी का वह वर्णन करते हैं उसके हित का हनन नहीं करते। जैसा कि हम पहले देख चुके हैं, कश्मीरी संस्करण में विदूषकों और सामान्यजनों की वे कहानियाँ जोड़ दी गई हैं जो तत्कालीन समाज में लोकप्रिय रही होंगी, और इस रूप में सोमदेव और क्षेमेन्द्र परस्पर मिलते-जुलते हैं। किन्तु सोमदेव की श्रेष्ठ रुचि का परिचय पतिव्रता स्त्री के मनोहर चित्रण में मिलता है। सोमदेव का धार्मिक और सामाजिक संसार तात्त्विक रूप से कश्मीरी है। अन्धविश्वास, जादूगरी, शैवमत, बौद्धमत, कर्म के सिद्धान्त में विश्वास, शिवलिङ्ग और मातृदेवियों की पूजा, समुद्र और विभिन्न स्थानों पर साहसिक कार्यों के प्रति प्रेम, यह सब यहाँ देखा जा सकता है। उनका आख्यान सरल और प्रवाहमय है। कठिन शब्दों एवं जटिल विषयों के प्रयोग में वे नहीं पड़ते। यह जानते हुए कि वे लोकप्रिय कहानियाँ लिख रहे हैं, उन्होंने अलंकृत शैली में लिखने के इस अधिकार से अपने को वंचित किया है, जिसके वे योग्य हैं। इन्द्रियजन्य अनुभूतियों के उनके वर्णन चित्रात्मक हैं और एक अपनी यथार्थता रखते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

8. वेतालपञ्चविंशतिका

इसी सन्दर्भ में अत्यन्त लोकप्रिय कथाओं के संग्रह वेतालपञ्चविंशतिका पर विचार किया जा सकता है। इसका प्राचीनतम रूप क्षेमेन्द्र की बृहत्कथामञ्जरी और सोमदेव के कथासरित्सागर में देखा जा सकता है। इसको विभिन्न संस्करणों में सुरक्षित रखा गया है। एक शिवदास का है जो गद्य और पद्य में हैं और एक अज्ञात लेखक द्वारा प्रस्तुत है जो क्षेमेन्द्र पर अत्यधिक आधारित प्रतीत होता है। इसके अतिरिक्त जम्वलदत्त का एक तीसरा संस्करण भी है जिसमें पद्योत्मक सूक्तियाँ नहीं मिलती हैं। बल्लभदेव के द्वारा हमें इसी तीसरे पाठ का संक्षिप्त संस्करण प्राप्त होता है।

त्रिविक्रमसेन अथवा विक्रमादित्य एक संन्यासी के लिए जो उन्हें प्रतिवर्ष फल में छिपी हुई मणि दिया करता है, श्मशान के एक पेड़ से लटकती हुई लाश को लाने का बीड़ा उठाता है। उस शव में वेताल (एक पिशाच) निवास करता है और प्रत्येक बार जब राजा उसे अपने कन्धों पर उठाता है, वह एक पहेली के रूप में राजा से प्रश्न करता है और राजा से सन्तोषजनक उत्तर पा जाने पर अपने निवास-स्थान को वापस चला जाता है। अन्त में, वह राजा को तपस्वी के दुष्ट अभिप्राय के बारे में बताता है। इस पर राजा उस साधु का वध कर देता है। ये सब कहानियाँ, धार्मिक, नैतिक और कर्मकाण्डी पहेलियाँ हैं। इन पर बौद्ध और तान्त्रिक वातावरण छाया हुआ है। इनमें दुर्गा-पूजा का भी उल्लेख मिलता है। शिवदास का पाठ गद्य-पद्य का मिश्रण होने के कारण चम्पू के समान प्रतीत होता है।

9. शुकसप्तति

यह एक व्यापारी हरदत्त के पुत्र मदनसेन की नववधू को एक तोते द्वारा सुनाई गई सत्तर कहानियों का संग्रह है। नववधू गुप्त प्रेम-सम्बन्धों के बारे में सोचा करती है, किन्तु कौवा उसके कुत्सित भावों के विरुद्ध परामर्श देता है। इस पर वह इसे मृत्युदण्ड का भय दिखाती है। एक चतुर तोता उस वधू के विचारों का अनुमोदन करता हुआ उसे गुणशालिनी की भाँति आचरण करने का परामर्श देता है और इस प्रकार उसकी उत्सुकता जागृत करता है। वह एक कहानी कहता है और उसे बाहर जाने से रोकता है। इन कहानियों से स्वभावतः बहुत अच्छी प्रेरणा नहीं मिलती, क्योंकि वे हमें पत्नियों के विश्वासघात और गणिकाओं की धूर्तता के संसार में ले जाती हैं। धर्म नैतिकता के सहायक के रूप में वर्णित है क्योंकि ये जुलूस, मन्दिर, तीर्थयात्रा, यज्ञ और विवाह के सभी प्रेमप्रपंच के अवसर प्रदान करते हैं। श्मिट ने ग्रन्थ के दोनों पाठों का अध्ययन किया है। जैन हेमचन्द्र इन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कथाओं और इनके दो पाठों के विषय में जानते थे। इनमें से एक पाठ संभवतः चिन्तामणि भट्ट तथा दूसरा श्वेताम्बर जैन का है।

10. सिंहासनद्वात्रिंशिका

धारा के राजा भोज विक्रमादित्य का राजसिंहासन ढूँढ निकाला है, जिसमें कुमारियों की 32 प्रतिमाएँ हैं, और प्रत्येक बार जब राजा भोज सिंहासनारूढ़ होने का प्रयत्न करता है, प्रत्येक कुमारी एक कहानी कहती है। अन्त में प्रतिमाओं में बंधी प्रेतात्माएँ मुक्त हो जाती हैं। प्रत्येक कथा के प्रारम्भ एवं अन्त में वर्णनात्मक पद्य आते हैं। कथा गद्य में कही जाती है। दक्षिण भारतीय पाठ में वर्णनात्मक पद्य गद्य से मिश्रित है। एक दूसरा भी पाठ है जो बिल्कुल पद्य में ही है। उत्तर भारत के पाठ में कहानी का तत्त्व नीति उपदेशों की अपेक्षा गौण है। बंगाल का पाठ, जिसका श्रेय वररुचि को दिया जाता है, जैन पाठ पर आधारित है। सिंहासनद्वात्रिंशिका वेतालपञ्चविंशतिका के बाद की है और यह नितान्त सम्भव है कि इसकी रचना भोज के समय हुई होगी। कई ग्रन्थ हैं जो इसी विषय अर्थात् विक्रम के साहसिक कार्य का वर्णन करते हैं। इन ग्रन्थों में अनन्त का महाकाव्य वीरचरित, शिवदास की शालिवाहनकथा, आनन्द की माधवानलकथा इत्यादि की गणना की जा सकती है।

भरटकद्वात्रिंशिका में जैन प्रभाव की बत्तीस कहानियाँ हैं जिनका उद्देश्य ब्राह्मणों का उपहास करना है। शिवदास के कथार्णव में पैंतीस कहानियाँ हैं जो मूर्खों और चोरों से सम्बन्धित हैं। मेरुतुङ्ग का प्रबन्धचिन्तामणि और राजशेखर का प्रबन्धकोष लेखकों और महत्त्वपूर्ण व्यक्तियों के बारे में रोचक कहानियों के संग्रह हैं, किन्तु इनकी उपयोगिता इतिहास के रूप में नहीं हो सकती। सोलहवीं शताब्दी के बल्लालसेन का भोजप्रबन्ध इसी श्रेणी में आता है। इसकी विशेषता यह है कि यह प्रत्युत्पन्नमतित्व एवं बुद्धिमत्ता से भरपूर है।

शिक्षाप्रद कहानियों के द्वारा जैन लेखकों ने साहित्य के इस वर्ग को योगदान दिया है। धार्मिक उत्साह, धर्म और दया पर आग्रह, मानव जीवन के दुःखान्तपक्ष का प्रतिपादन—इन वर्णनों के लक्षण है। इनमें रूपकों की झलक मिलती है, पर इनमें कोई साहित्यिक सौन्दर्य नहीं है। इन ग्रन्थों में नैतिक उपदेशों का प्राधान्य होने के कारण एक प्रकार की नीरसता आ गई है। ये ग्रन्थ महत्त्वपूर्ण हैं, क्योंकि यदाकदा इनमें नलोपाख्यान या चन्द्रगुप्त के बारे में विचित्र गाथाएँ पाते हैं और इस प्रकार इनसे तुलनात्मक अध्ययन के लिए रोचक सामग्री प्राप्त होती है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

III. 3 गद्य आख्यान

संस्कृत गद्य का प्रारंभ ब्राह्मणों और उपनिषदों के गद्य में देखा जा सकता है। किन्तु इस सन्दर्भ में रुद्रदामन् के शिलालेख या इलाहाबाद के प्रस्तर-स्तम्भ पर समुद्रगुप्तप्रशस्ति जैसे शिलालेख अधिक प्रासंगिक होंगे। शिलालेखों में अलंकृत गद्य और पद्य के उद्गम पर विचार करते हुए बूहलर ने मैक्समूलर के संस्कृत-साहित्य-सम्बन्धी पुनर्जागरण के सिद्धान्त को अमान्य सिद्ध कर दिया है। गुप्त शासनकाल ने निःसन्देह साहित्यिक कला के साथ-साथ अन्य सभी कलाओं के संवर्धन (परिष्कार) को प्रोत्साहन दिया, किन्तु यह नहीं कहा जा सकता कि साहित्यिक परम्परा में कोई विच्छेद उत्पन्न हुआ। वास्तव में जो कुछ हम दण्डी, बाण, सुबन्धु और अन्य गद्य लेखकों की रचनाओं में देखते हैं वह उस गद्य का विकास ही है जो कि शिलालेखों में दिखाई पड़ता है।

1. दशकुमारचरित

दण्डी के व्यक्तित्व के बारे में बहुत कम विश्वसनीय सामग्री उपलब्ध है। परम्परा से दण्डी के तीन ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं, जिनमें से दो काव्यादर्श और दशकुमार-चरित बताए जाते हैं। तीसरे ग्रन्थ के बारे में मतभेद है। पिशेल के अनुसार दण्डी का तीसरा ग्रन्थ मृच्छकटिक है, जबकि अन्य विद्वानों के अनुसार यह छन्दोविचिति, है। काव्यादर्श और दशकुमारचरित दोनों एक लेखक की रचनाएँ हैं, इस विषय में विद्वानों को सन्देह है, क्योंकि दोनों में वर्णित रुचि और वातावरण पर्याप्त मात्रा में भिन्न हैं। काव्यादर्श के लेखक की अतिनैतिक मनोवृत्ति का दशकुमारचरित के विवादपूर्ण और अनैतिक वातावरण से मेल नहीं बैठता। दोनों के उपदेश और आचरण में अत्यधिक भेद है, क्योंकि काव्यादर्श कथावस्तु और शैली के बारे में जो कुछ भी विधान करता है, उन सबों का दशकुमारचरित में नियमित रूप से उल्लंघन किया गया है। दण्डी की तिथि भी विवादग्रस्त है। सातवीं शताब्दी के

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

काव्यशास्त्र के आचार्य भामह के विचारों से उनके मत की तुलना तथा दशकुमारचरित में वर्णित भूगोल एवं सरल शैली दण्डी को भामह, हर्षवर्धन, बाण और सुवन्धु से पहले का सिद्ध करते हैं। उनको भोज के समय में रखने का विल्सन का प्रयास अविश्वसनीय है।

दशकुमारचरित के कथानक पर विचार करते हुए दण्डी ने सम्भवत: गुणाढ्य से प्रेरणा प्राप्त की होगी, क्योंकि इसमें भी नरवाहनदत्त और उसके साथियों की भाँति दस राजकुमार साहसिक कार्यों के लिए निकलते हैं और पुन: मिलने पर उन कार्यों का वर्णन करते हैं। इस युक्ति से अन्यथा असम्बद्ध कहानियों में एकबद्धता का तत्त्व आ गया है। हर्टेल का यह मत है कि दण्डी राजा कामकाल और उसकी पाँचों पत्नियों के (पृथ्वी पर) तीन जन्मों का इतिहास वर्णन करना चाहता था, किन्तु इस समय यह विवरण अपूर्ण है। इस तथ्य पर निश्चित मत देना कठिन है, क्योंकि इसके लिए कोई प्रमाण नहीं है। दशकुमारचरित स्वयं भी अपूर्ण है और ऐसा अनुमान लगाया जाता है कि इस रचना में पूर्णता लाने के लिए प्रारंभ और अन्त में कुछ अंश जोड़ दिए गए हैं। दशकुमारचरित के उपलब्ध संस्करण में प्रस्तावना के रूप में पूर्वपीठिका और निष्कर्ष के रूप में उत्तरपीठिका हैं। पूर्वपीठिका हमें कृति की प्रथम कहानी तक नहीं पहुँचाती, प्रत्युत दस राजकुमारों की संख्या पूरी करने के लिए यह दो और राजकुमारों की कथाओं का वर्णन करती है। वास्तविक कुमारचरित आठ राजकुमारों के विवरण तक ही सीमित है। उधर उत्तरपीठिका भी अपूर्ण है। इसके अतिरिक्त प्रस्तावना और मुख्य कृति में वर्णित तथ्यों में भी असंगतियाँ हैं। इस सन्दर्भ में अर्थपाल, प्रमति और विश्रुत की कथाओं की ओर संकेत किया जा सकता है। दोनों के विवरणों में दी गई वंशावलियाँ पर्याप्त मात्रा में भिन्न हैं। इसके अतिरिक्त प्रस्तावना में राजवाहन की कथा में एक जादूगर का प्रमुख वर्णन है, जो कि मुख्य कृति के कलेवर में नहीं है। प्रस्तावना में एक राजा उपहारवर्मन् की देखभाल करता है, जबकि प्रमुख भाग में यह कार्य एक साधु करता है। अन्त में, उपसंहार का प्रस्तावना से मेल नहीं बैठता। इन सबसे यह स्पष्ट है कि दण्डी पूर्वपीठिका का लेखक नहीं है। यह बात उत्तरपीठिका के लिए भी ठीक है।

नि:सन्देह यह ग्रन्थ शिक्षाप्रद नहीं है और न ही नीतिशास्त्र के सिद्धान्तों को सिखलाने का प्रयास इसमें हुआ है। दण्डी राजतन्त्र और कामशास्त्र से भली-भाँति परिचित हैं, किन्तु यहाँ उनका लक्ष्य कहानी का वर्णन करना है और उसके द्वारा मनोरंजन प्रदान करना भी। दण्डी का संस्कृत साहित्य को योगदान इस तथ्य में निहित है कि सीधी-सादी कहानियों के वर्णन में उन्होंने काव्य की भव्य शैली का प्रयोग किया है। भट्टार-हरिचन्द्र जैसे दण्डी के पूर्ववर्ती रहे होंगे, जिनका बाण उल्लेख करते हैं और उनको हरिषेण तथा रुद्रदामन् के शिलालेखों की काव्यशैली

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

से भी प्रेरणा मिली होगी। गुणाढ्य के लिए कथा मुख्य वस्तु है। अतः उनका वृत्तान्त तीव्र एवं सरल है। दण्डी में वर्णन घटनाक्रम से अधिक महत्वपूर्ण है, जबकि वाण और सुबन्धु में वर्णन घटनाक्रम को पूर्णतया दवा देते हैं। दण्डी में विषय-वस्तु अधिक महत्त्वपूर्ण है। जिस समाज का वे चित्रण करते हैं वह अति-रोचक है, जैसे कि निम्नकोटि का जीवन और साहसिक कार्य जिसमें जादूगर, धूर्त या तपस्वी, सिंहासनच्युत राजा और राजकुमारियाँ, चालाक चोर और वेश्याएँ एवं उत्कट प्रेमी आदि का वर्णन है। देवताओं का किञ्चित् भी आदर नहीं होता और उनके द्वारा किए गए कुत्सित कार्य भी न्यायसंगत सिद्ध कर दिए जाते हैं। ब्राह्मणों, व्यापारियों और साधुओं को व्यंग्य का निशाना वनाया गया है। दण्डी का यथार्थवाद प्रभावशाली है और वे न केवल प्रधान पात्रों को वल्कि गौण पात्रों को भी जीवन और स्फूर्ति से स्पन्दित करते हैं। उनके पात्र-चयन का क्षेत्र विस्तृत है, क्योंकि वे चोर और गणिकाओं, तथा मंत्री और राजकुमारियाँ आदि पात्रों का चित्रण कर सकते हैं। दण्डी की दूसरी आकर्षक विशेषता है—उनका हास्य एवं विनोद। वे परिहासमय मुद्रा से लघुतर विषयों पर लिख सकते हैं तथा दुःखान्त और महत्त्वपूर्ण विषयों के चित्रण के अवसर पर गम्भीर भी हो सकते हैं। संवाद सरल हैं और वर्णन कलात्मक। वे भाषा के प्रयोग में सिद्धहस्त हैं और अपने आप को वैदर्भी रीति के अनुयायी के रूप में प्रदर्शित करते हैं। परम्परा उनको पदला-लित्य उत्पन्न करने में अत्यन्त कुशल मानती है। कठोर ध्वनियों, अतिशयोक्ति और शब्दाडम्बर का परिहार किया गया है। लम्बे समासों का संगमपूर्वक प्रयोग किया गया है। भाषा पर अधिक भार डालने की प्रवृत्ति दण्डी में भी दिखाई पड़ती है और वे मन्त्र के द्वारा अपना विवरण देते समय किसी ओष्ठ्यवर्ण का प्रयोग नहीं करते। लिट् और लुङ् का समुचित प्रयोग उनके व्याकरण से परिचय को प्रदर्शित करता है। दण्ठी का दशकुमारचरित संस्कृत गद्य साहित्य का एक उत्कृष्ट ग्रन्थ है।

2. वासवदत्ता

हर्षचरित की प्रस्तावना में वाण सुवन्धु का उल्लेख करते हैं और उनकी कृति वासवदत्ता की ओर महाकवियों के लिए नैराश्यप्रद रचना के रूप में संकेत करते हैं। इसी प्रकार जब बाण अपनी कृति कादम्बरी को कथा के रूप में अन्य दो कथाओं से श्रेष्ठ बतलाते हैं, तो उसका अभिप्राय सुबन्धु की वासवदत्ता और गुणाढ्य की बृहत्कथा से माना जाता है। वाक्पतिराज अपने गौडवहो में सुबन्धु का भास, कालिदास और हरिचन्द्र के साथ उल्लेख करते हैं। मंख अपने श्रीकण्ठ-चरित में उनका उल्लेख मेण्ठ, भारवि और बाण के साथ करते हैं। राघवपाण्ड-वीय का लेखक कविराज सुबन्धु, वाण और स्वयं अपने महत्त्व की श्लाघा करता

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

है। वह परम्परा जो सुबन्धु को विक्रमादित्य से सम्बद्ध करती है और वररुचि का भतीजा बतलाती है, अविश्वसनीय है। सुबन्धु बाण के पूर्ववर्ती हैं। सुबन्धु अवश्य बहुत बड़े विद्वान रहे होंगे, क्योंकि वे महाभारत, रामायण, कामसूत्र, छन्दोविचिति, नाट्यशास्त्र और बृहत्कथा से परिचित थे। वे उपनिषद्, न्यायदर्शन, मीमांसा और बौद्धमत से भी परिचित थे। वे उद्योतकर और धर्मकीर्ति की ओर भी संकेत करते हैं और, यदि ये संदर्भ निर्णायक माने जाएँ, तो वे सातवीं शताब्दी के पूर्वार्ध में रखे जा सकते हैं।

जब पतञ्जलि एक आख्यायिका की ओर संकेत करते हैं तो यह निश्चित नहीं कि उनका संकेत वासवदत्ता की कथा की ओर ही हो, क्योंकि जो कहानी सुबन्धु देते हैं, वह सर्वथा मौलिक प्रतीत होती है और उसका सादृश्य अन्यत्र कहीं नहीं है। इसके अतिरिक्त सुबन्धु की वासवदत्ता को पदों के स्वीकृत अर्थ के अनुसार आख्यायिका या कथा मानना कठिन है। यह दोनों में से किसी एक के भी लक्षणों को पूरा नहीं करती बल्कि दोनों के ही तत्त्वों को समाविष्ट किए हुए हैं। कथा नायक द्वारा वर्णित नहीं की गई है। इसका विभाजन भी उच्छ्वासों में नहीं किया गया है, न ही वक्त्र और अपरवक्त्र छन्दों का प्रयोग मिलता है। कथानक कवि की कल्पना से उद्भूत है और ग्रन्थ बाण की कादम्बरी से मिलता-जुलता है। सुबन्धु भारतीय वृत्तान्तों की घिसीपिटी विधाओं को प्रयुक्त करता है, जैसे कि स्वप्न में किसी प्रेमी या प्रेमिका का आगमन, जादुई घोड़े, भयंकर शाप, आकृतियों के परिवर्तन और प्रेमी के स्पर्श से जीवन की पुनः प्राप्ति। राजा चिन्तामणि का पुत्र कन्दर्पकेतु स्वप्न में एक सुन्दर कन्या को देखता है और अपने मित्र मकरन्द के साथ अपनी प्रेमिका को प्राप्त करने के लिए निकल पड़ता है। जब वह विन्ध्याटवी में घूम रहा होता है, तब शृंगारशेखर की पुत्री वासवदत्ता का वृत्तान्त एक मैना के मुख से सुनता है। उस वृत्तान्त के अनुसार वासवदत्ता स्वयं स्वप्न में एक युवक को देखने के बाद उससे प्रेमासक्त हो गई है। वे दोनों पाटलिपुत्र में मिलते हैं। वासवदत्ता के विद्याधर पुष्पकेतु से प्रस्तावित विवाह के विरोध का तत्त्व प्रस्तुत किया गया है। प्रेमीयुगल जादू के घोड़े की सहायता से भागकर विन्ध्य में विश्राम करता है और सो जाता है। राजकुमार जब जागता है, तो वासवदत्ता को नहीं पाता और प्रचुर भ्रमणोपरान्त वह एक प्रतिमा को देखता है। जब वह इसका स्पर्श करता है, तो वासवदत्ता पुनर्जीवित हो जाती है। उनका विवाह हो जाता है और वे सानन्द रहते हैं।

इस प्रकार कथानक अधिक आकर्षक नहीं है। यदि कालिदास सहित अन्य भारतीय कवियों की शैली-पद्धति को ध्यान में रखा जाय, तो सुबन्धु पर अशिष्टता का दोषारोपण नहीं किया जा सकता। सुबन्धु की वासवदत्ता वास्तव में शैली का अभ्यास मात्र है और उसकी यह गर्वोक्ति कि प्रायः प्रत्येक पद में उसने श्लेष का

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रयोग किया है, सार्थक है। वह वर्णन करने में अधिक रुचि लेता है और गम्भीर भावचित्रण करना उसका लक्ष्य नहीं है। उसका गद्य पद्य से मिश्रित है। लम्बे समास, संगीतमय श्लेष के कारण संक्षिप्तता आदि उसकी शैली की विशेषताएँ हैं। इस प्रकार लम्बे समासों का प्रयोग अतिशयोक्तिपूर्ण कथन, कठोर ध्वनियों का समावेश, अनुप्रास और अलंकारों का सतत प्रयोग सुबन्धु को गौड़ी रीति का अनुयायी सिद्ध करते हैं। यह याद रखना चाहिए कि श्लेष और विरोधाभास अलंकारों का बहुत प्रयोग कृति की बोधगम्यता में अस्पष्टता का तत्त्व ला देता है। अनुप्रास का अतिशय प्रयोग उबाऊपन उत्पन्न करता है। फिर उसके श्लेष सदैव रमणीय नहीं हैं। सुबन्धु में सन्तुलन और विवेक का अभाव है। भाषा और विभिन्न अलंकारों पर जैसा उसका अधिकार है उससे वह हमें अधिक रोचक कृति प्रदान कर सकता था।

3. हर्षचरित

समस्त संस्कृत लेखकों में बाण अपेक्षाकृत अपने बारे में अधिक सामग्री प्रदान करने वाले हैं, क्योंकि हर्षचरित के प्रारंभ में वे अपना और अपने परिवार का पूरा विवरण देते हैं। बाण वात्स्यायन गोत्रीय ब्राह्मण थे और उनके प्रपितामह का नाम पाशुपत था, उनके पितामह का नाम अर्थपति, उनके पिता का चित्रभानु तथा माता का राज्यदेवी था। छोटी अवस्था में ही उनके माता-पिता की मृत्यु हो गई थी और सम्भवत: बाण कादम्बरी में शुकशावक के मुख से अपनी ही अवस्था का वर्णन करते हैं। युवक बाण निर्बाध रूप से सभी लोगों से मिलते थे और उनकी मित्रमण्डली में कवि, प्रशस्तिलेखक, चित्रकार, गायक, संगीत शिक्षक, अभिनेता, साधु, तपस्वी और शैवभक्त आदि सभी सम्मिलित थे। उन्होंने सुदूर देशों की यात्रा की तथा गम्भीर और बुद्धिमान् पुरुष बनकर अपने घर प्रीतिकूट में वापस आ गए। सम्राट हर्षवर्धन ने अपने भाई कृष्ण द्वारा उन्हें अपनी राजसभा में बुलाया। पहले तो उनका तिरस्कार हुआ, परन्तु बाद में वे राजा के कृपापात्र बन गए। बाण के दोनों ग्रन्थ, हर्षचरित और कादम्बरी अपूर्ण हैं और यह कहना कठिन है कि कौन-सा ग्रन्थ पहले लिखा गया। बाण हर्ष के समकालीन थे और इस प्रकार उनकी तिथि सुनिश्चित है। हर्ष की गौड़ राजा पर विजय और उसका बौद्धमत की ओर झुकाव यह सूचित करते हैं कि बाण ने हर्ष के शासन के अन्तिम वर्षों में अपनी कृतियों की रचना की। उनके द्वारा सुबन्धु की वासवदत्ता का उल्लेख इस निष्कर्ष की पुष्टि करता है। अन्त में, बाण को ज्ञात भारत ह्वेनसांग को ज्ञात भारत ही है। परम्परा बाण को चण्डीशतक और पार्वतीपरिणय का रचयिता मानती है। परन्तु यह आरोपण ठीक नहीं है, क्योंकि ये ग्रन्थ पंद्रहवीं शताब्दी के वामन भट्ट बाण के हैं। इसी तरह यह भी सोचना

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ठीक नहीं कि उन्होंने रत्नावली नामक नाटिका की रचना की।

वाण हर्षचरित का प्रारम्भ श्लोकों से करते हैं और उन कवियों की, जिनकी वे प्रशंसा करते हैं, एक झलक देते हैं। वे महाभारत के लेखक, वासवदत्ता के लेखक, हरिचन्द्र और उनके गद्य, सातवाहन की सप्तशती, प्रवरसेन के सेतुबन्धु, भास के नाटक, कालिदास और गुणाढ्य की बृहत्कथा का उल्लेख करते हैं। वे विभिन्न प्रान्तों की काव्य-प्रवृत्तियों से पूर्ण परिचय प्रदर्शित करते हैं और हर्षचरित लिखने का अपना अभिप्राय भी घोषित करते हैं, जो कि कवि के रूप में अपनी क्षमता प्रदर्शित करने की अपेक्षा हर्ष के साहसिक कार्यों की प्रशंसा करना अधिक है।

हर्षचरित में आठ उच्छ्वास (अध्याय) हैं, जिनमें प्रथम उच्छ्वासवाण के परिवार और उनके युवाकाल के अन्त तक के जीवन का वर्णन करता है। दूसरे उच्छ्वास में राजशिविर में राजा से वाण की भेंट का वर्णन है। तीसरे में राजा हर्षवर्धन की पैतृक राजधानी स्थाण्वीश्वर (थानेसर) का वर्णन है। इसमें पौराणिक राजा पुष्पभूति और एक संन्यासी भैरवाचार्य का भी विवरण है। चौथे उच्छ्वास में पुष्पभूति के वंशजों के संक्षिप्त वर्णन के वाद राजा प्रभाकरवर्धन और उनके पारिवारिक जीवन, विशेषरूप से, दो राजकुमार—राज्यवर्धन और हर्षवर्धन तथा एक राजकुमारी राज्यश्री के जन्म का रम्य वर्णन है। मौखरी राजा ग्रहवर्मन् के साथ राज्यश्री के विवाह का वर्णन अत्यन्त रोचक शैली में किया गया है। इसके पश्चात् कथानक दुःखान्त रूप धारण कर लेता है। राज्यवर्धन हूणों से संग्राम के वाद राजधानी वापस आने पर अपने माता-पिता की मृत्यु का समाचार सुनते हैं और वे राज्यभार किशोर हर्षवर्धन को सौंपने के लिए उत्सुक हो जाते हैं। उधर मालव नरेश ग्रहवर्मन् का वध कर देता है और विधवा रानी राज्यश्री कारागार में डाल दी जाती है। राज्यवर्धन मालव नरेश के विरुद्ध युद्ध के लिए प्रयाण करते हैं, उसको परास्त भी कर देते हैं, किन्तु गौड़ नरेश विश्वासघात कर उसका वध कर देते हैं। इस पर हर्षवर्धन शत्रु के विरुद्ध प्रयास करते हैं और हर्ष की सेना के अभियान का वर्णन वाण की वर्णनशक्ति का ज्वलन्त प्रमाण है। आठवें उच्छ्वास में राज्यश्री के अन्वेषण और पुनः प्राप्ति का वर्णन है। बौद्धधर्ममतानुयायी दिवाकर-मित्र और उसके आश्रम का वर्णन विशेष रूप से रोचक है। इस विवरण में आदि से अन्त तक प्रकृति, पशु और मनुष्यों के मनोरम वर्णन हैं। इसी तरह अनेक मनोरम संवाद भी उपलब्ध हैं जो विभिन्न मानव मनोविकारों को चित्रित करते हैं।

वाण ने राजा हर्ष के साहसिक कार्यों का वर्णन करने के उद्देश्य से इस ग्रन्थ को प्रारम्भ किया था, न कि अपने काव्य सम्बन्धी कला के प्रदर्शन के लिए। किन्तु, उन्होंने इतिहास पद के स्वीकृत अर्थ में हमें हर्ष का इतिहास नहीं दिया है। कोई कालानुक्रम नहीं दिया गया है और मालव नरेश तथा गौड नरेश जैसे प्रमुख

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पात्र भी सन्दिग्ध व्यक्ति प्रतीत होते हैं, क्योंकि उन्हें पहचानना कठिन है। घटना-क्रम भी स्पष्ट नहीं है, किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि उन्होंने कवि के रूप में अपनी शक्तियों का श्लाघ्य प्रदर्शन किया है। विस्तृत वर्णन, सुखद, सजीव संवाद, सुन्दर उपमाएँ, परिसंख्या आदि अलंकार और गुंजायमान शब्दावली हमें इस बात का आभास दे देते हैं कि उनकी दूसरी महान् कृति कादम्बरी में क्या आने वाला है।

4. कादम्बरी

कादम्बरी एक कथा है और जहाँ तक इसके कथानक का सम्बन्ध है, यह अति जटिल है। इसमें एक अति दीर्घ वृत्तान्त में इसके पात्रों द्वारा दिए गए कई अन्य वृत्तान्त हैं। जहाँ तक संरचना का सम्बन्ध है, कादम्बरी में एक निश्चित योजना प्रतीत होती है, क्योंकि यह कृति न तो दशकुमारचरित से और न ही पञ्चतन्त्र से मिलती है। तीनों ही ग्रन्थों में वृत्तान्त के अन्दर वृत्तान्त वाला ढाँचा है, तथापि कादम्बरी में नायक के वास्तविक अनुभव के तर्क का अनुसरण किया गया है। कादम्बरी के इस ढाँचे के लिए बाण बृहत्कथा के अवश्य ऋणी हैं। कादम्बरी को संस्कृत गद्य आख्यान का चरमोत्कर्ष कहा जा सकता है।

विदिशा के राजा शूद्रक के पास एक चाण्डाल कन्या एक तोते को लाती है, जो अपनी आपबीती कहानी सुनाता है। कथा के अनुसार तोते को हारीत अपने पिता जाबालि ऋषि के पास ले जाते हैं। जाबालि एक कहानी सुनाते हैं, जिसे तोता राजा के समक्ष कहता है। मुख्य कथा में उज्जैन के राजा तारापीड और उनके मन्त्री शुकनास मुख्य पात्र हैं। राजकुमार चन्द्रापीड राजा तारापीड के पुत्र हैं जबकि वैशम्पायन शुकनास का पुत्र है। दोनों बालकों का लालन-पालन साथ-साथ होता है। चन्द्रापीड को एक सुन्दर घोड़ा इन्द्रायुध और एक अनुचरी कन्या पत्रलेखा सेवा के लिए प्राप्त होते हैं। वह दिग्विजय के अभियान पर निकल पड़ता है। जब वह हिमालय प्रदेश में होता है तब किन्नरों के एक जोड़े का पीछा करता है। उनको पकड़ने के उद्देश्य से जब वह उनके पीछे भागता है, तो अपना रास्ता भूल जाता है और एक शिवमन्दिर में पहुँचता है जहाँ अनुराग से अभिभूत एक कन्या महाश्वेता रहती है। वह एक गन्धर्व और अप्सरा की कन्या है। चन्द्रापीड के पूछने पर वह सुन्दर तपस्वी कुमार पुण्डरीक के साथ अपने अपूर्ण प्रणय की कहानी सुनाती है। पुण्डरीक का एक मित्र कपिञ्जल था। पुण्डरीक की मृत्यु के बाद महाश्वेता मृत्युवरण करने का निश्चय करती है, किन्तु एक दिव्याकृति उसे ऐसा करने से रोक देती है। वह आकृति आकाश से उतर कर पुण्डरीक के शरीर को उठा ले जाती है और महाश्वेता से उसके पुनः समागम की प्रतिज्ञा करती है। अतः वह उससे पुनर्मिलन की प्रतीक्षा में अच्छोद सरोवर पर निवास

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

करती है। चन्द्रापीड को महाश्वेता से उसकी सखी कादम्बरी का पता चलता है जिसने महाश्वेता के कौमार्य अवधि तक विवाह न करने का निश्चय किया हुआ था। महाश्वेता चन्द्रापीड को कादम्बरी के समक्ष लाती है और उनके प्रथम मिलन में ही प्रणय का सूत्रपात हो जाता है। प्रेम-सम्बन्ध घनिष्ठ होने से पहले ही चन्द्रापीड को उसके पिता वापस बुला लेते हैं और वह कादम्बरी के पास पत्रलेखा और सेना की देखभाल के लिए वैशम्पायन को छोड़ कर लौट जाता है। जब चन्द्रापीड उज्जैन वापस आ जाता है, तो वियोगजन्य प्रेम से पीड़ित रहता है और पत्रलेखा से कादम्बरी के बारे में जानकर प्रसन्न होता है। बाण का कथानक यहाँ समाप्त हो जाता है। जो कुछ बाद में आता है वह उसके पुत्र का जोड़ा हुआ है जिसने कि अपने पिता के अपूर्ण ग्रन्थ को पूरा करने के लिए प्रशंसनीय प्रयास किया है। इसके बाद के कथानक के अनुसार वैशम्पायन महाश्वेता द्वारा अनादृत होता है। वह उसे तोता बन जाने का शाप दे देती है, जिस पर वह अविलम्ब मर जाता है। वैशम्पायन को ढूंढ़ते हुए जब चन्द्रापीड वहाँ आता है, तो यह जानकर वह स्वयं मृत्यु को प्राप्त होता है। कादम्बरी भी आ जाती है और महाश्वेता तथा कादम्बरी बाद में तारापीड और शुकनास तथा उनकी पत्नियों के साथ मिलकर राजकुमार के शरीर की रक्षा करती हैं, क्योंकि एक दिव्यवाणी के अनुसार वह शापमुक्त होकर अवश्य ही पुनर्जीवित होगा। अन्त में, सब कुछ सहर्ष समाप्त होता है। पुण्डरीक और महाश्वेता, चन्द्रापीड और कादम्बरी का संयोग हो जाता है।

कादम्बरी में हम विद्याधर और अप्सराओं के संसार में विचरण करते हैं। कथासरित्सागर से विचारसूत्र लेकर बाण इसका विस्तार करते हैं, इसे द्विगुणित करते हैं और शुकनास, वैशम्पायन जैसे पात्र और अन्य घटनाएँ जोड़ देते हैं। पुनर्जन्म और पुनर्मिलन कथा के महत्त्वपूर्ण तत्त्व हैं और इनके कारण कहानी एक काल्पनिक वातावरण में घूमती रहती है। किन्तु, इसमें कोई सन्देह नहीं कि बाण के वर्णन बहुत रमणीय हैं और वह मानव जीवन की कोमलता, करुणा और मृत्यु-शोक को चित्रित करने में प्रमुख रूप से सफल हुए हैं। उन्होंने हमें महाश्वेता और चन्द्रापीड जैसे अविस्मरणीय पात्र दिए हैं। पूरी कहानी में चमत्कारिक तत्त्वों से काव्यता आ गई है और बाण का आद्योपान्त निरूपण अत्यन्त परिष्कृत और रुचिर है। तरुण अनुराग और कन्यासुलभ शीलता के बाण के चित्र, वास्तव में, दुर्लभ साहित्यिक उपलब्धि है। कहानी आगे बढ़ती है, पर बहुधा वर्णन, विरोध, संघर्ष तथा आश्चर्यजनक घटनाओं से अवरुद्ध होती रहती है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि कादम्बरी में हमें मानव जीवन का अधिक परिपक्व दृष्टिकोण और मानव हृदय की गहन अन्तर्दृष्टि देखने को मिलती है। संस्कृत भाषा और संस्कृत साहित्य की परम्पराओं से अनभिज्ञ व्यक्ति के लिए यह कृति कुछ अटपटी संरचना

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वाली हो सकती है, जिसमें कई जीवनों के जटिल गठन हैं, अनुपात का अभाव है और अतिरञ्जित वर्णन भरे पड़े हैं। और जो कुछ भी हो, बाण उत्कृष्ट गुणों के कवि और प्रकृति के प्रेमी हैं। इसीलिए जब वह सन्ध्या या प्रातःकाल के सौन्दर्य, सूर्योदय अथवा सूर्यास्त, नायक या नायिका के सुन्दर व्यक्तित्व का वर्णन करते हैं, तब स्वयं अपने को और अपने कथानक को भूल जाते हैं। सौन्दर्य किसी भी रूप में उन्हें बहुत प्रभावित करता था। उनके समास बहुत लम्बे हैं किन्तु बहुत कठिन नहीं है। अलंकारों पर अलंकार भरे पड़े हैं, जो बाण की कल्पना की समृद्धि को स्पष्ट रूप से प्रकट करते हैं।

5. बाण का अनुकरण

बाण ने बाद के लेखकों के अनुकरणार्थ अति आकर्षक आदर्श प्रस्तुत किया है। बाण पाञ्चाली रीति में लिखते हैं जहाँ अर्थ और ध्वनि का समान महत्त्व है। धारा के जैन कवि धनपाल ने तिलकमञ्जरी लिखी जिस पर बाण का प्रभाव स्पष्ट है। धनपाल बाण के प्रति कृतज्ञता प्रदर्शित करते हैं और आद्योपान्त यह धारणा बनी रहती है कि यह ग्रन्थ बाण की कादम्बरी का सचेत अनुकरण मात्र है। कादम्बरी का एक दूसरा अनुकरण एक दिगम्बर जैन ओड्यदेव का गद्यचिन्तामणि है। यह ग्रन्थ जीवनाधार की गाथा का वर्णन करता है। इस पर भी बाण का प्रभाव स्पष्ट है।

6. चम्पू

चम्पू एक ऐसा रूप है जहाँ गद्य और पद्य मिश्रित होते हैं। इसमें कथानक को प्रभावशाली रूप से प्रस्तुत करने की अपेक्षा कवि का उद्देश्य अपनी शक्तियाँ और साहित्यिक कौशल प्रदर्शित करना होता है। हमें त्रिविक्रम भट्ट के नलचम्पू और मदालसाचम्पू उपलब्ध हैं। इस श्रेणी की एक अन्य कृति दिगम्बर जैन सोमदेव द्वारा लिखित यशस्तिलकचम्पू है। इस ग्रन्थ का स्वरूप स्पष्टतया उपदेशात्मक है और वह सामान्यजन के लिए शिक्षा निर्दिष्ट करता है। सोमदेव काव्यशास्त्र के सिद्धान्तों से परिचय प्रदर्शित करते हैं और उन समालोचकों के लिए सद्वाणि का प्रयोग करते हैं, जो उनके अनुसार बहुधा अच्छ निर्णायक होते हैं यद्यपि उनमें रचनात्मक शक्तियों का अभाव होता है। अन्य चम्पुओं का भी उल्लेख आवश्यक है। इनमें हरिचन्द्र (900 ई०) का जीवनाधारचम्पू, भोज और लक्ष्मण भट्ट द्वारा रचित रामायणचम्पू, अनन्त का भारतचम्पू, नारायण (1700 ई०) का स्वाहासुधाकरचम्पू, और सोड्ढल (1000 ई०) की उदयसुन्दरीकथा हर्षचरित के आदर्श का अनुसरण करते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

III. 4 ऐतिहासिक काव्य

यह सत्य है कि पद के वास्तविक अर्थ में पूर्वकाल के भारत में कोई इतिहासज्ञ नहीं थे। संस्कृत में ऐतिहासिक कविताएँ और रचनाएँ तो हैं किन्तु इस प्रकार का कोई उपयुक्त इतिहास नहीं है। कल्हण एक ऐसे कवि हैं जो अपनी योग्यता, अध्यवसाय और सत्यनिष्ठा के कारण इतिहासज्ञ माने जा सकते हैं, किन्तु उनमें भी हम इतिहास-तत्त्व की अपेक्षा काव्य-तत्त्व अधिक प्रवल पाते हैं। अत: वे हमें इतिहासज्ञ के रूप में सन्तुष्ट नहीं कर पाते। वे भारत के कुल-तन्त्रीय राजनैतिक विकास और भारतीय प्रकृति इतिहास और इतिहासज्ञ के अभाव का कारण स्पष्ट करते हैं। यह कहना अनुचित न होगा कि भारत में इस प्रकार की राष्ट्रीयता सर्वथा उत्तरकालीन विकास है। सिकन्दर ने भारत पर आक्रमण किया और चन्द्रगुप्त मौर्य ने उसकी योजना विफल कर दी। यूनानी, पार्थियन, शक और कुषाण भारत में आक्रमण करने में सफल हुए और उनको किसी ऐसे गंभीर विरोध का सामना नहीं करना पड़ा, जैसा सिकन्दर को। इस पर सन्देह किया जा सकता है कि क्या गुप्त पुनरुत्थान को राष्ट्रीय माना जाए। वाद में मुसलमानों ने भी भारत को राष्ट्रीय भावना से रहित पाया और प्राय: स्थानीय नेताओं की आन्तरिक प्रतिस्पर्धा ने उनकी विजय को सरल और सम्भव वना दिया। ऐसी स्तुति-गाथाएँ हैं, जो इस प्रारंभिक इतिहास की महत्त्वपूर्ण घटनाओं का संकेत करती हैं, किन्तु यहाँ भी कवि राष्ट्रीय भावना की अपेक्षा, व्यक्तिगत आदर और सम्बन्धन से अधिक प्रेरित प्रतीत होते हैं। कर्म और माया के सिद्धान्तों का प्राधान्य होने के कारण भारत में सांसारिक जीवन की उन घटनाओं को कुछ भी महत्त्व और मूल्य प्रदान नहीं किया गया जो वास्तव में इतिहास के लिए आधार बनाती है। पुन: नियति (भवितव्यता) जादू और झाड़-फूंक (जादू-टोना) में विश्वास रखने के कारण यहाँ तर्क बुद्धि और वैज्ञानिक दृष्टिकोण पर आधृत वह विकास अवरुद्ध प्रतीत होता है, जो घटनाओं का प्राकृतिक कारण ढूंढ़ निकालता है। बौद्धमत, जैनमत

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

और ब्राह्मण धर्म समान रूप से अन्धविश्वास और अतिमानवीय तत्त्वों पर विश्वास रखता था। यह एक ऐसा तथ्य है जो इतिहास लेखन की भावना का अवरोधक था। यह विरोधाभास-सा प्रतीत होता है कि भारत ने भूतकाल का तो भव्य रीति से गान किया और उसे महिमामण्डित किया, किन्तु उसे समकालीन या वर्तमान समय में रुचि नहीं थी। विशेष की अपेक्षा सामान्य के प्रति पक्षपात के कारण भी इतिहास-लेखन का अभाव हुआ है। महान् व्यक्तियों के नाम तो आदरपूर्वक सुरक्षित रखे जाते रहे हैं किन्तु उनके समय और उपलब्धियों के विषय में किसी प्रामाणिक और विश्वसनीय सूचना की सदा उपेक्षा होती रही है। कालानुक्रम की सर्वथा उपेक्षा की जाती रही है। इन सब कारणों से समुचित इतिहास उपलब्ध नहीं होता। 1030 ई० में अलबरूनी ने भारतीयों के बारे में लिखा "दुर्भाग्यवश वे घटनाओं के ऐतिहासिक क्रम पर अधिक ध्यान नहीं देते। वे अपने राजाओं के कालक्रमिक उत्तराधिकार के वर्णन में अति असावधान हैं और जब किसी सूचना के लिए उन्हें बाध्य किया जाता है, वे किंकर्तव्यविमूढ़ हो जाते हैं और यह नहीं जानते कि क्या कहना चाहिए, तब वे अतिरंजना करने लगते हैं।" तथ्य और कल्पना से बहुत कम अलग-अलग रखे गए।

इसका यह तात्पर्य नहीं है कि भारतीयों को इतिहास का किंचिन्मात्र ज्ञान नहीं था। सर्वप्रथम हमारे पास शुद्ध तिथि-अंकित शिलालेख हैं जो राजनैतिक और ऐतिहासिक घटनाओं पर प्रचुर प्रकाश डालते हैं। कुछ ऐसे भी लेखक हैं जिन्होंने अपनी जीवन-सम्बन्धी टिप्पणी देने के अतिरिक्त अपने माता-पिता, गुरु और संरक्षकों के बारे में तो पूर्ण विवरण दिया है, किन्तु वे अपने नाम छोड़ गए हैं। ज्योतिष-ग्रन्थों के लेखकों ने अपनी ग्रन्थ समाप्ति की ठीक तिथि अंकित की है। सम्भवतः भारत के लोग इतिहास का व्यापक अर्थ लेते थे और इसे राजनैतिक इतिहास के संकीर्ण अर्थ में नहीं समझते थे।

ऐतिहासिक लेखों का प्रारम्भ 'दाशराज्ञ युद्ध' और योद्धाओं का वर्णन करने वाले ऋग्वैदिक स्तुति गीतों में, संरक्षकों की प्रशंसा में लिखे गए गाथा-नाराशंसी एवं दानपत्रों में, राज्याभिषेक एवं राजाओं और पुरोहितों द्वारा सम्पादित अश्वमेघ यज्ञों का वर्णन करने वाले ब्राह्मण-आख्यानों में और देश के विभिन्न भागों के राजवंशों के नामों और उपाधियों में दृष्टिगोचर होता है। बौद्ध रचनाओं में बौद्ध धर्म को अपनाने वाले बुद्ध और अशोक के बारे में हमें विश्वसनीय सूचना मिलती है। जैनग्रन्थों में महावीर का विवरण प्राप्त है और उनकी पट्टावलियाँ, उनके गुरु, उनकी परम्पराओं के बारे में इतिहास की सामग्री प्रदान करती हैं। शिलालेखों का भी यहाँ उल्लेख कर देना चाहिए, क्योंकि ये शिलालेख अतिप्राचीन, विश्वसनीय और प्रामाणिक राजनैतिक अभिलेख हैं। अत्यन्त प्राचीनकाल में प्रारम्भ होने पर भी, समुचित इतिहास-लेखन का विकास नहीं हो पाया क्योंकि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मूलतः ये भी कवि थे, न कि इतिहासज्ञ। इस सन्दर्भ में पुराणों का भी उल्लेख कर देना समुचित है जिनमें विभिन्न राजवंशों की वंशावलियाँ मिलती हैं। पुराणगत विवरण सब प्रकार की असंगतियों और अतिशयोक्तियों से भरपूर हैं। ये वृत्तान्त बाद के इतिवृत्तों एवं विशिष्ट वंशकाव्यों पर आधारित हैं। यह संक्षिप्त विवरण भारत में इतिहास-लेखन का आरम्भ माना जा सकता है। भारत में इतिहास और गाथा किस प्रकार अस्त-व्यस्त हो गए हैं, इसका सर्वश्रेष्ठ उदाहरण बौद्ध, जैन और ब्राह्मण परम्पराओं द्वारा चन्द्रगुप्त और अशोक जैसे महत्त्वपूर्ण सम्राटों का भिन्न-भिन्न रूप में प्रस्तुतीकरण है। इन ऐतिहासिक रचनाओं के सम्बन्ध में ध्यान देने योग्य एक अन्य तथ्य यह है कि इनके लेखकों ने अपनी रचनाओं को आयासपूर्वक साहित्यिक एवं काव्यात्मक बनाया है। यहाँ तक कि शिलालेखों एवं प्रशस्तियों में भी काव्य का यह पुट जान-बूझकर भर दिया गया है।

1. प्रारंभिक ग्रन्थ

ऐतिहासिक रचनाओं पर विचार करते समय बाण (640 ई०) के हर्षचरित के विषय में विचार करना स्वाभाविक हो जाता है। स्थाण्वीश्वर का हर्षवर्धन भारतीय इतिहास में यशस्वी व्यक्ति था। किन्तु बाण को अपने समय या अपने महान् संरक्षक का कोई इतिहास लिखने में रुचि नहीं थी। इसमें हमें हर्षवर्धन के पूर्वजों के विषय में कतिपय तथ्य और स्वयं हर्षवर्धन के कुछ साहसिक कृत्यों का संक्षिप्त विवरण प्राप्त होता है। अतः बाण प्रेमाख्यान लिखने में तो पूर्णतया सफल होते हैं, किन्तु इतिहासकार के रूप में हमें सन्तुष्ट नहीं करते। अपने प्रसिद्ध प्राकृत काव्य गौडवहो (750 ई०) में वाक्पतिराज ने एक ऐतिहासिक काव्य लिखने का विचार किया जिसमें एक गौड राजकुमार पर कन्नौज के यशोवर्मन् की जय का वर्णन है। यशोवर्मन् स्वयं कश्मीर के ललितादित्य द्वारा 740 ई० में पराजित किए गए और मारे गए। चूँकि वाक्पतिराज वर्णन के लिए काव्य-शैली को अपनाता है, इसलिए वह हमें प्राकृतिक दृश्य और ऋतुवर्णन एवं राजाओं के आमोद-प्रमोदों से तो हमें आनन्दित करता है, किन्तु पौराणिक आख्यानों को इतिहास से उलझा देता है। यह काव्य ग्राम्य जीवन के सजीव और विशद चित्र प्रस्तुत करता है और इस सन्दर्भ में काली के मन्दिर के वर्णन का प्रसंग उल्लेखनीय है, जहाँ नयनाभिरामता और यथार्थता के लिए नरबलि दी जाती है। वाक्पतिराज द्वारा ऐतिहासिक विवरण की उपेक्षा इस बात से स्पष्ट है कि वह गौड राजाओं के नामों या तिथियों के बारे में कोई सूत्र देना सार्थक नहीं समझता। ऐसा कहा जाता है कि शंकुक ने अपने भुवनाभ्युदय (850 ई०) में मम्म और उत्पल के भयंकर युद्ध का वर्णन किया है। पद्मगुप्त का नवसाहसांकचरित (1005 ई०),

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जो परिमल नाम से भी ख्यात है, 18 सर्गों का एक काव्य है, जिसमें राजकुमारी शशिप्रभा के विवाह का वर्णन है और जो मालवा के राजा सिन्धुराज नवसाहसांक के इतिहास को सूचित करता है। कुछ ऐसे ही विषय पर विल्हण ने कर्णसुन्दरी (1088 ई०) नामक नाटक लिखा है। इसमें उसने एक चालुक्य राजकुमार का विद्याधर राजकुमारी से विवाह का वर्णन किया है। इस ग्रन्थ में बिल्हण अपने संरक्षक का राजकुमारी से वास्तविक विवाह की सूचना देता है। विषय के इस प्रकार प्रतिपादन से इतिहास का काव्य से गौण हो जाना स्वाभाविक है।

2. विक्रमाङ्कदेवचरित

विक्रमाङ्कदेवचरित (1088 ई०) के लेखक बिल्हण ही कदाचित् पहले इतिहासकार हैं। बिल्हण कश्मीरी थे और कलस के शासनकाल में ही उन्होंने मथुरा, कन्नौज, प्रयाग, काशी और ऐसे ही सुदूर स्थानों में भ्रमण हेतु कश्मीर छोड़ दिया। कुछ समय तक वे दहल के राजकुमार कर्ण की राजसभा में और कुछ समय तक अन्हिलवड़ के चालुक्य कल्लदेव त्रैलोक्यमल्ल के साथ रहे। अन्त में कल्याण के चालुक्य राजा विक्रमादित्य VI ने उनका 'विद्यापति' के रूप में स्वागत किया और नीलछत्र एवं हाथी के उपहारों से सम्मानित किया। बिल्हण एक विद्वान पंडित थे जिन्होंने वेद, व्याकरण और काव्यशास्त्र का अध्ययन किया था। अपने संरक्षक के सम्मान में उन्होंने 18 सर्गों के एक महाकाव्य 'विक्रमाङ्क-देवचरित' की रचना की। मूलतः यह ग्रन्थ ऐतिहासिक है किन्तु प्रस्तुतीकरण में काव्य है। उदाहरणार्थ, वे चालुक्यराजवंश के संस्थापक को भगवान् ब्रह्मा के कमण्डलु 'चुलुक' से उत्पन्न वर्णित करते हैं। बिल्हण ने आहवमल्ल (1040-69 ई०) के द्वितीय पुत्र राजा विक्रमादित्य के जीवनकाल का वर्णन करने का प्रयास किया। विक्रमादित्य ने राजिग और सोमेश्वर की सहायता से युद्ध किया और उनको पराजित किया। उसने अपने छोटे भाई जयसिंह को 'वनवास' का राज्यपाल नियुक्त किया। उसने चोलों को बारम्बार पराजित किया और कुछ समय कांची को अपने अधीन रखा। वे राजपूत राजकुमारी चण्डालदेवी के स्वयंवर में उपस्थित हुए और उसने उसे वधू के रूप में प्राप्त किया। भगवान् शिव ने राजा विक्रमादित्य को अपना संरक्षण दिया। बिल्हण राष्ट्रकूटों पर तैलप (873-97) की विजय का वर्णन तो करते हैं किन्तु मालवा नरेश द्वारा उसकी पराजय का नहीं। इन ऐतिहासिक विवरणों के होने पर भी बिल्हण हमें इतिहासकार के रूप में सन्तुष्ट नहीं कर पाते। इतिहासकार के लिए निष्पक्षता अनिवार्य है। किन्तु बिल्हण में इसका अभाव है, क्योंकि आहवमल्ल और विक्रमादित्य दोनों अत्यन्त धार्मिक हैं जबकि उनके विरोधी अत्यन्त दुराचारी हैं। इतिहास में भाइयों से भाइयों का युद्ध सहज स्वाभाविक है, किन्तु बिल्हण उस पर लीपा-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पोती कर देते हैं। इसमें कालानुक्रम का पूरा अभाव देखा जाता है, क्योंकि 'कुछ दिन के वाद', 'कई दिनों के बाद' जैसी उक्तियाँ इतिहास के अध्ययन के लिए व्यर्थ हैं। विक्रमादित्य द्वारा गौड-विजय अस्पष्ट और अशुद्ध दोनों हैं। उन्होंने दो कर्णों का उल्लेख किया है किन्तु उनकी अभिन्नता सन्देहास्पद है। वे कालिदास से प्रभावित प्रतीत होते हैं, क्योंकि उनकी वर्णन शैली वैदर्भी है, समास लम्बे नहीं हैं और भाषा सरल और स्पष्ट है। श्लेष, अनुप्रास जैसी शब्द-चमत्कृति में उनकी कोई रुचि नहीं है। राजकुमार के जन्म और राजकुमारी के स्वयंवर के वर्णन में कालिदास का प्रभाव स्पष्ट है। उनके द्वारा प्रयुक्त छन्द सरल हैं। ये इन्द्रवज्रा, वंशस्थ, श्लोक, रथोद्धता, मन्दाक्रान्ता, पुष्पिताग्रा और स्वागता हैं। अन्य छन्द जैसे शार्दूलविक्रीडित, वसन्ततिलका, मालिनीं, हरिणी, स्रग्धरा, शिखरिणी एवं पृथ्वी परिवर्तन और नीरसता-निवारण के लिए प्रयुक्त होते हैं। अतः गम्भीर इतिहासकार की अपेक्षा विल्हण अच्छे कवि हैं।

3. राजतरङ्गिणी

कल्हण में हम वास्तविक इतिहासकार का दर्शन करते हैं। उनके पिता चम्पक एक ब्राह्मण थे और कश्मीर के राजा हर्ष (1089-1101 ई०) के सच्चे अनुयायी थे। जब राजा का वध कर दिया गया, तब वे राजा के एक महत्त्वपूर्ण कार्य के लिए दूर गए हुए थे। वध की सूचना सच्चाई के साथ दी गई है, क्योंकि मुक्त, जो राजा के साथ था, घटना का विवरण बतलाने के लिये अक्षत भाग निकला। अपने स्वामी की मृत्यु के बाद चम्पक ने राजनीति से संन्यास ले लिया और इस कारण कल्हण राजनीति में प्रमुख भाग लेने से वंचित हो गए। कल्हण के चाचा कनक राजा हर्ष के स्वामिभक्त थे और राजा के संगीत-शिक्षक थे। राजा उनसे पूर्ण प्रभावित था। अतएव उनके प्रभाव से राजा ने परिहासपुर में स्थित बुद्ध प्रतिमा का नाश नहीं किया था। तरुण कल्हण शिव के भक्त और बौद्धमत के प्रशंसक दोनों थे। राजनीति में कल्हण को प्रमुख भाग लेने का अवसर नहीं मिला, अतएव उन्होंने साहित्य को ही जीविका का साधन बनाया। उन्होंने कालिदास के रघुवंश और मेघदूत तथा बाण के हर्षचरित का अध्ययन किया था और वे महाभारत एवं रामायण से भली-भाँति परिचित थे। वे बिल्हण से पूर्णतया प्रभावित थे और उनके ग्रन्थ में 'बृहत्संहिता' के उल्लेखों से पता चलता है कि वे 'वराहमिहिर' की कृति से परिचित थे।

कल्हण स्वयं हमें बताते हैं कि राजतरङ्गिणी लिखते समय वे काव्य-शैली में लिखे कश्मीर के राजाओं के इतिवृत्त की परम्परा का अनुसरण कर रहे थे। इसके अतिरिक्त उन्होंने नीलमतपुराण और क्षेमेन्द्र की नृपावली से भी सहायता ली थी। राजा लव के पश्चात् आने वाले आठ राजाओं के बारे में लिखते हुए उन्होंने

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हेलाराज के ग्रन्थ के आधार पर लिखे हुए पद्ममिहिर के विवरण का प्रयोग किया है। अशोक वृत्तान्त लिखते हुए कल्हण ने प्रायः छविल्लाकार का अनुसरण किया है। सम्भव है कि उनके सामने कश्मीर के इतिहास के कुछ अपूर्ण ग्रन्थ होंगे, क्योंकि उन्होंने कहा है कि वे पूर्व लेखकों की अपेक्षा काश्मीर का सम्पूर्ण इतिहास लिखना चाहते हैं। इन विवरणों के अतिरिक्त कल्हण ने मूल स्रोतों का भी उपयोग किया, क्योंकि उन्होंने मन्दिर, स्मारक, प्रासाद आदि के निर्माण का उल्लेख करने वाले अभिलेखों, भूमिदान के ताम्र-शासनों, देवालयों और अन्य भवनों पर उत्कीर्ण प्रशस्तियों तथा राजाओं के नाम और काल का उल्लेख करने वाले हस्त-लिखित ग्रन्थों का भी प्रयोग किया है। इतना ही नहीं, उन्होंने टंक-मुद्राओं (सिक्कों) के अध्ययन के साथ-साथ उस समय विद्यमान प्राचीन भवनों का भी निरीक्षण किया। इससे ज्ञात होता है कि वे कश्मीर अधित्यका से पूर्णतया परिचित थे।

कल्हण के समय कश्मीर में बहुत उथल-पुथल हो रही थी। राजा हर्ष का वध करके उसके शत्रु उच्चल और सुस्सल ने उसके राज्य को आपस में बाँट लिया। तदन्तर कर्मचारियों द्वारा आकस्मिक विप्लव में उच्चल मारा गया और सुस्सल राजा बन गया जिसे बड़ी विपत्ति का सामना करना पड़ा। हर्ष का एक पौत्र भिक्षाचार शक्तिशाली बन गया और देश में गृह-युद्ध छिड़ गया। 1128 ई० में सुस्सल के वध के पश्चात् उसका पुत्र जयसिंह सिंहासनारूढ़ हुआ और कौटिल्य की कूटनीति का अनुसरण करते हुए कुछ समय सफल रहा। भिक्षाचार भी मारा गया और एक नया व्यक्ति राजा बन बैठा। राजकुमार भोज ने स्थानीय जन-जातियों की सहायता से विद्रोह किया। कल्हण ने अपना महाकाव्य 1148 ई० में लिखना प्रारम्भ किया था और एक वर्ष में इसे समाप्त कर दिया था। कल्हण अपने विवरण में सर्वथा निष्पक्ष रहे हैं क्योंकि उन्होंने नृप जयसिंह की भी आलोचना की है, जिनके आश्रय में वे रहते थे। सुस्सल को दुराचारों के लिए उन्होंने गर्हित किया है और जयसिंह के पूर्ववर्ती लोठन को भी नहीं छोड़ा। उन्होंने भिक्षाचार की निःस्वार्थ प्रशंसा की, भोज और जयसिंह से उनकी मित्रता थी। कल्हण के ग्रन्थ में एक काश्मीरी द्वारा कश्मीर का स्वानुभूत वृत्तान्त मिलता है। वे काश्मीरियों को गौरांग, किन्तु मिथ्याभाषी और चलचित्तवृत्ति के बताते हैं। सैनिक अनुशासनहीन और कायर थे। उनमें कर्तव्यपरायणता का अभाव था। नागरिक आलसी, विलासी, आमोदप्रिय और निष्ठुर थे, और किसी के प्रति भी निष्ठा नहीं थी। डामर लोग असभ्य और बर्बर थे जो किसानों को सताते थे और अधिकारी एवं ब्राह्मणों दोनों ही की सम्पत्ति लूटते थे। अधिकारी लोभी, अत्याचारी एवं अविश्वसनीय थे। कल्हण ने लोभी पुरोहितों की, जो अपनी अज्ञता और उद्दंडता के कारण देश की उन्नति में बाधक थे, घोर भर्त्सना की है। कल्हण ने मंत्री रल्हण और अलंकार कवि मंख, सीमारक्षा दल के सेनापति उदय और भोज तथा राज-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वदन की प्रशंसा की है। इससे प्रतीत होता है कि कल्हण एक निष्पक्ष, निराग्रह, तटस्थ, और निर्लिप्त इतिहासकार थे। इतिहासकार में ये गुण होने अत्यावश्यक हैं। राजतरङ्गिणी में आठ तरंग हैं और प्रत्येक तरंग में एक राजवंश या एक राजकाल का वर्णन है। तरंग एक, दो और तीन में गोनन्द राजाओं का वर्णन है जिसमें प्रामाणिकता अत्यल्प प्रतीत होती है। चौथे तरंग में बताया है कि 899 ई० में अवन्तिवर्मन् ने कश्मीर की राजसत्ता पर अधिकार कर लिया था। इस तरंग में दिया इतिवृत्त कुछ विश्वसनीय है। पाँच, सात और आठ तरंगों में ऐसे ऐतिहासिक तथ्यों का वर्णन है—जैसे रानी दिद्दा (1003 ई०) की मृत्यु, लोहर राजवंश की स्थापना, हर्ष का वध और वे घटनाएँ जो उच्चल के सिंहासनारोहण के बाद घटी। इस सम्पूर्ण विवरण में कल्हण द्वारा दी गई तिथियाँ विश्वसनीय नहीं हैं और कुछ अंश छूट भी गए हैं। यथा लोहर दुर्ग द्वारा मुसलमानों के आक्रमण को विफल बनाने के विवरण का उल्लेख नहीं है, तथापि कल्हण का कृतित्व सन्तोषजनक प्रतीत होता है कि कल्हण का उद्देश्य अपनी काव्य-रचना द्वारा लोगों के हृदय पर नैतिक प्रभाव डालने का था और साथ ही उन्हें इस बात का भी आभास था कि इतिहास में चित्र-काव्य के लिए कोई स्थान नहीं। अतः उन्हें अपने मन पर अंकुश रखना पड़ता था। महाकाव्यों ने भी कल्हण को प्रभावित किया है। कवि, इतिहासकार और दार्शनिक के रूप में कल्हण का महत्त्व इस कथन में देखा जा सकता है कि राजतरङ्गिणी का रस शान्त है। इतिहास को मानव क्रियाकलाप की निःसारता और बड़े राजाओं के दुःखद अन्त का स्पष्टतः बोध होता है। शक्ति अस्थायी है और प्रत्येक वस्तु क्षणभंगुर है। कल्हण ने राजा और मन्त्रियों के कार्यों की नैतिक दृष्टि से निन्दा की है। इससे उन पर महाभारत का प्रभाव प्रतीत होता है। ग्रन्थ का नाम राजतरङ्गिणी ही इस बात का द्योतक है कि समय गतिशील है और इसमें घटनाचक्र चलता रहता है। कल्हण इतिहास के आधुनिक पाठक को सन्तुष्ट नहीं कर सकते जो विश्वसनीय विवरण और प्रामाणिक कालानुक्रम का अन्वेषी है, क्योंकि वह गल्प, तथ्य और गाथा में भेद नहीं कर पाते। कल्हण की दृष्टि में मेघवाहन के समान राजाओं के जादू के खेल भी वास्तविक थे। उन्होंने कुषाण और हूणों में कोई अन्तर नहीं किया। काश्मीरी होने के नाते जादूगरी में उनका विश्वास था। कल्हण के इतिहास पर भारतीय जीवन-दर्शन, युग-विभाजन, कर्म-सिद्धान्त, भाग्यवाद पर अन्धविश्वास आदि का प्रभाव स्पष्ट लक्षित होता है। कल्हण ने राजाओं के कार्यकलापों की आलोचना धर्मशास्त्र के अनुसार की है, किन्तु इतिहास के दर्शन-तत्त्व के विकास की ओर कम ध्यान दिया है। लगता है कि वन्य-जातियों, किसानों तथा अन्य वर्गों के प्रति नीति अपनाने में उन्होंने कौटिल्य के अर्थशास्त्र का अनुसरण किया है। सुविधानुसार राजतरङ्गिणी को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है। पहला भाग आख्यान-प्रधान है। दूसरा भाग

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यथार्थवादी और काव्यमय है।

दूसरे भाग में पात्र सजीव हो जाते हैं। कल्हण का विशुद्ध भौगोलिक वर्णन, उनका हास्य और उनका यथार्थ वर्णन उन्हें बाण और बिल्हण से भिन्न बनाते हैं। उत्तम काव्य के दृष्टान्त के रूप में ऐसे प्रसंग अवलोकनीय हैं, जैसे युधिष्ठिर का वनवास हेतु गमन, हर्ष की सुखद कहानी, अनन्त की अन्त्येष्टि और सूर्यमती का सती होना आदि में सरल और प्रभावशाली विरोधालंकार लिखने की उनकी शक्ति देखी जा सकती है। शब्दों पर श्लेष उनके वर्णन को अनुप्राणित कर देते हैं। समग्र रूप से, इतिहास के भारतीय लेखकों में कल्हण सर्वश्रेष्ठ हैं।

4. अन्य ऐतिहासिक ग्रन्थ

सचमुच बहुत थोड़े ग्रन्थ ऐसे हैं जो राजतरङ्गिणी के समकक्ष रखे जा सकते हैं। जल्हण दूसरे कश्मीरी हैं जिन्होंने सुस्सल द्वारा विजित राजपुरी के राजा का विवरण प्रस्तुत करते हुए **सोमपालविलास** लिखा है। हेमचन्द्र ने (1088-1172 ई०) अन्हिलवाड़ के चालुक्य राजा कुमारपाल के समय में **कुमारपालचरित** लिखा। चालुक्यों के इतिहास के लिए यह ग्रन्थ महत्त्वपूर्ण है। हेमचन्द्र को राजनैतिक इतिहास लिखने की अपेक्षा जैनमत की महिमा वर्णन करने में अधिक रुचि है। एक अज्ञात लेखक के **पृथ्वीराजविजय** में सोमेश्वरदत्त के (1179-1262 ई०) चाहमान की विजय का वर्णन है और भारत के राजनैतिक और सामाजिक जीवन पर इसमें प्रचुर प्रकाश डाला गया है। स्वयं सोमेश्वरदत्त द्वारा रचित पन्द्रह सर्गों का **सुरथोत्सव** स्पष्टतः पौराणिक है किन्तु काव्यात्मक प्रतीक कथा हो सकती है। अरिसिंह (13 वीं शताब्दी) का **सुकृतसंकीर्तन** ग्यारह सर्गों का काव्य है और सोमेश्वरदत्त के वर्णन को सत्यापित करने के लिए हमें सक्षम बनाता है। सन्ध्याकर नन्दिन् के **रामपालचरित** में बंगाल के राजा रामपाल के साहसिक कार्यों का वर्णन है, जब वह भीम से अपने राज्य को पुनः प्राप्त करता है। शम्भु का **राजेन्द्रकर्णपूर** कश्मीर राजा हर्षदेव की प्रशस्ति है। इस सन्दर्भ में **राजतरङ्गिणी** के क्रम को बनाए रखने के लिए कश्मीरी लेखकों के प्रयास अवलोकनीय हैं। जैनराज ने इसे जैनुएल आबिदिन के शासनकाल तक बढ़ाया। उसके शिष्य श्रीवर ने 1459 से 1486 ई० की अवधि को सम्मिलित करते हुए **जैनराजतरङ्गिणी** चार अध्यायों में लिखी। प्राज्यभट्ट और उसके शिष्य शुक ने अपनी **राजावलिपताका** में अकबर द्वारा कश्मीर के अधिग्रहण के पश्चात् आने वाले समय तक पहुँचा दिया। कल्हण की राजतरङ्गिणी की तुलना में ये बाद के प्रयास अत्यन्त निम्नकोटिक हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

III.5 अलङ्कृत काव्य

संस्कृत कलात्मक काव्य का प्रारम्भ ऋग्वेद के सूक्तों में पाया गया है। उषा-प्रातःकाल (ऋ० VI. 64, VII. 75, 76) इन्द्र-पर्जन्य (VII. 102, 103), रात्रि और वनदेवता अरण्यानी से सम्बद्ध सूक्त प्रकृतिकाव्य के उत्कृष्ट उदाहरण हैं। उसी प्रकार से घूतगीत (ऋ० X. 34), भिक्षुक गीत (X. 117), वामदेव का गीत (IV. 26) व्यक्तिगत अनुभव के कलात्मक एवं वाग्मितापूर्ण पद (अभिव्यक्तियाँ) हैं। सुप्रसिद्ध संवाद-सूक्तों जैसे पुरुरवा और उर्वशी (ऋ० X. 95) यम और यमी (ऋ० X. 10), इन्द्राणी और वृषाकपि (ऋ० X. 86) में हमें ऐसे गीत मिलते हैं जिनमें नाटकीय तत्त्व विद्यमान हैं। समग्र रूप से ऋग्वेद, शब्दों में श्लेष लाने की वैदिक कवियों की विलक्षण प्रवृत्ति को सूचित करता है। उन्होंने उपमा, रूपक इत्यादि मनोरम अलंकारों का भी प्रयोग किया है। समुचित पदावली (शब्दावली) के प्रयोग से अनुप्रास और ध्वनि प्रभाव लाने की भी प्रवृत्ति पाई जाती है। वैदिक कवि स्वयं नव्य, सुमण्डित एवं मधुमत्त गीतों और कुकवि आदि के बारे में उल्लेख करते हैं। ऋग्वैदिक काव्य अंशतः परम्परागत है और अंशतः सम्बन्धित कवियों की मौलिक रचना है। जैसा कि अनेक विद्वान् कहते हैं, यह हो सकता है कि धार्मिक उद्देश्य एवं भौतिक समृद्धि एवं शक्ति की कामना ऋग्वैदिक गीतों में प्रबल हैं, तथापि—इस दृष्टिकोण के होते हुए भी, इन गीतों में सौन्दर्यपरक तत्त्वों के अस्तित्व को अस्वीकार नहीं किया जा सकता। ब्राह्मणों, आरण्यकों और उपनिषदों में भी अनेक अवतरण, दृष्टान्त और संवाद हैं जो निःसन्देह उच्चकोटि की साहित्यिक कला प्रदर्शित करते हैं। इस प्रकार प्रारम्भिक वैदिक काव्य में ऐसे अंकुर विद्यमान हैं जो बाद के समय में अलंकृत काव्य के रूप में विकसित हो चुके थे।

रामायण जो कदाचित् 200 ई० पू०-200 ई० की अवधि में विरचित हुई, इस समय में काव्यसंवर्धन के लिये प्रचुर प्रमाण उपलब्ध कराती है। इस सन्दर्भ

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

में इस परम्परागत दृष्टिकोण का पूर्ण भाव (अर्थ, महत्त्व) समझना अत्यावश्यक है कि महाभारत इतिहास है, जबकि रामायण आदिकाव्य है। महाभारत सरलतर एवं अल्पतर परिष्कृत है और चारणों की कृति है, जबकि रामायण कलाकार वाल्मीकि की रचना है। भाषा की एकरूपता, छन्दों का कुशल सञ्चालन, विभिन्न अलंकारों का कलात्मक प्रयोग, भावों का विकास और व्यञ्जना की क्षमता रामायण की विशिष्टता है जबकि महाभारत में प्रसाद और ओज प्रमुख विशिष्ट तत्त्व हैं। अतः किसी को यह देखकर आश्चर्य नहीं होता कि उत्तरकालीन कवि महाभारत से वर्ण्यवस्तु का चयन करते हैं किन्तु वाल्मीकि की रीति से उसे निष्पादित करते हैं। इस प्रकार इन दो महाकाव्यों ने उत्तरकालीन कवियों और नाटककारों को पर्याप्त मात्रा में विषयगत योगदान देकर प्रभावित किया है। संस्कृत काव्य में यदाकदा ऋतु, पर्वत और नदी के वर्णन दिखाई पड़ते हैं, किन्तु भाव और आदर्श वाल्मीकि द्वारा दिए गए हैं। अतः रामायण काव्यशैली के विकास के स्पष्ट संकेत देती है।

पतञ्जलि महाकाव्य की गाथाओं के नाटकीय प्रस्तुतीकरण का विशेष रूप से कंसवध का उल्लेख करते हैं, और वह उन कवियों के बारे में भी सूचित करते हैं जो रात्रि के जागरणों में अपनी कथाएँ सुनाते हैं और यवक्रीत, ययाति, प्रियङ्गु, वासवदत्ता, सुमनोत्तर और भीमरथ की गाथाओं का काव्यमय रीति से निरूपण करते हैं। वररुचि के एक काव्य का भी उल्लेख आता है परन्तु वह अब हमें उपलब्ध नहीं है। पतञ्जलि के उद्धरण शृङ्गारिक और महाकाव्य की कविता के अस्तित्व को प्रमाणित करते हैं। प्रयुक्त छन्द भी विभिन्न और अलंकृत हैं जैसे मालती, प्रहर्षिणी, प्रमिताक्षरा, वसन्ततिलका जो सामान्य श्लोक और त्रिष्टुप् के अतिरिक्त हैं। पतञ्जलि ने ऐसे संकेत दिए हैं जो प्राकृत काव्य के अस्तित्व को प्रमाणित करते हैं और उनके द्वारा अजाकृपाणीय, करकतालीय, अहिनकुल इत्यादि कथाओं के उल्लेख ऐसी सामग्री के अस्तित्व को सूचित करते हैं जो बाद के नीति-कथा साहित्य में विकसित हुई। पिङ्गल का छन्दःसूत्र जिसे वेदांग की प्रतिष्ठा प्राप्त है, शृंगारिक गीतिकाव्य और साहित्य के अस्तित्व को प्रमाणित करता है। प्रेमी द्वारा प्रेमिका (नायक द्वारा नायिका) के सम्बोधन के लिये कवि विभिन्न छन्दों का प्रयोग कर रहे थे और ये प्रयास उपयुक्त छन्दों में मार्मिक सूक्तियों को जन्म देते हैं। छन्दों के नामों से जैसे कान्तोत्पीड, कुटिलगति, चञ्चलक्षिका, तनुमध्या, चारुहासिनी एवं वसन्ततिलका से ऐसा अनुमान करना न्यायसंगत ही है। दूसरे छन्द पशु-जीवन से निकट सम्बन्ध सूचित करते हैं, उदाहरण के लिए अश्वललित, कोकिलक, सिंहोन्नता और शार्दूलविक्रीड़ित; वनस्पति-जगत् से मञ्जरी और माला छन्द प्राप्त होते हैं। ये छन्द और इनके आधारभूत विचार यह सिद्ध करने के लिए अच्छे प्रमाण हैं कि कवियों का एक सम्प्रदाय—जिसने प्रकृति, पुरुष

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

और पशु का सूक्ष्म निरीक्षण किया—पहले से विद्यमान था।

बूहलर ने शिलालेख और प्राचीन भारतीय काव्य कला पर अपने उत्तम निबन्ध में बिना किसी संशय के शिलालेख काल में काव्य के अस्तित्व को सिद्ध किया है। 'शिलालेखों के लेखक निःसन्देह काव्यशास्त्र और काव्य के विभिन्न अलंकारों से परिचित हैं और काव्यशास्त्र के नियमों के अनुसार लिखते प्रतीत होते हैं। इन शिलालेखों में सुविचारित कला है जो बाण और इसके परवर्ती अन्य लेखकों से पूर्णतया विकसित प्रतीत होती है। अश्वघोष के ग्रन्थ इस काव्य-परम्परा के तारतम्य को प्रदर्शित करते हैं। वात्स्यायन का कामसूत्र भी ऐसे वातावरण का वर्णन करता है जिसमें प्रेम और गीतिकाव्य समृद्ध हुए। हम ऐसा वातावरण पाते हैं जिसमें सरस्वती उत्सव (समारोह) मनाया जाता है, जिसमें कवि एक दूसरे से स्पर्धा करते हैं और राजा सर्वश्रेष्ठ सफल कवि को पुरस्कृत करते हैं। रुद्रदामन्, हाल, समुद्रगुप्त, हर्ष और लक्ष्मणसूरि सभी साहित्य के प्रेमी और संरक्षक थे। इन राजाओं की उदारता के लिए संस्कृत साहित्य कम ऋणी नहीं है।

1. बुद्धचरित एवं सौन्दरनन्द

परम्परा अश्वघोष को कनिष्क (100 ई०) से सम्बद्ध बताती है और यह तथ्य कि उसके सूत्रालङ्कार में ऐसी दो कहानियाँआती हैं, जिनमें कनिष्क का समय भूतकाल की घटना के रूप में उल्लिखित है, सूचित करता है कि वह कनिष्क का समसामयिक रहा होगा। कनिष्क के समय के एक शिलालेख में एक अश्वघोष का उल्लेख है जो वही सुप्रसिद्ध कवि रहा होगा। अश्वघोष एक ब्राह्मण थे और बाद में बौद्ध बन गए। उन्होंने सर्वप्रथम सर्वास्तित्ववाद दर्शन स्वीकार किया किन्तु बाद में बुद्ध में विश्वास की उद्धारक कृपा के सिद्धान्त से आकृष्ट होकर महायान संप्रदाय के समर्थक बन गये। इत्सिंग जिन्होंने भारत में (671-695 ई०) में भ्रमण किया अश्वघोष के ग्रन्थों का उस समय में अध्ययन का उल्लेख करते हैं। अश्वघोष की माँ का नाम सुवर्णाक्षी था और वह साकेत के निवासी थे। उनकी उपाधियाँ आचार्य और भदन्त थीं जो ब्राह्मण धर्म एवं बौद्धमत में उनकी योग्यता को सूचित करती हैं। अश्वघोष का नाटक शारिपुत्रप्रकरण टुकड़ों में है और अधिक साहित्यिक उत्कर्ष की रचना नहीं कहा जा सकता। महायानश्रद्धोत्पाद और वज्रसूचि, जो क्रमशः दार्शनिक विचारों का कथन और ब्राह्मण जाति प्रथा पर आक्षेप है, ऐसे ग्रन्थ हैं जो समुचित रूप से दर्शन के अन्तर्गत आते हैं। उनकी चण्डीस्तोत्रगाथा छन्दविषयक नैपुण्य के लिए अद्वितीय है। उनका सूत्रालङ्कार अथवा कल्पनामण्डितिका भी खण्डित दशा में सुरक्षित है। सर्वत्र अश्वघोष महाभारत और रामायण, सांख्य, वैशेषिक एवं जैनदर्शनशास्त्र से परिचय प्रदर्शित करते हैं और बौद्धमत में अपने उत्कट विश्वास को नहीं छिपाते हैं। किन्तु उनका

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यश उनके दो महाकाव्यों बुद्धचरित और सौन्दरनन्द पर आश्रित है। दूसरे काव्य का कथानक वास्तव में पहले काव्य के कथानक के समान है और वह संन्यासपरक है। बुद्धचरित में वे बुद्ध के जीवन का वर्णन करते हैं और यह खेद का विषय है कि सम्पूर्ण ग्रन्थ हमारे सामने नहीं है। अश्वघोष यहाँ घटनाओं के चयन एवं आयोजन में अधिकतम प्रभाव लाने की व्यग्रता, परम्परा के प्रति सत्यनिष्ठा, एवं विभिन्न दृश्यों के सजीव वर्णन में नैपुण्य प्रदर्शित करते हैं। ऐसे दृश्य और स्थल हैं जहाँ वे निःसन्देह वाल्मीकि से प्रेरणा लेते हैं और अपने क्रम में कालिदास को प्रेरणा प्रदान करते हैं। बुद्धचरित के अनेक दृश्य रामायण के दृश्यों के समान हैं। यह एक ऐसा तथ्य है जिसका समर्थन वाल्मीकि के महाकाव्य के पात्रों के उल्लेख से होता है। वे कामशास्त्र और नीतिशास्त्र से भी परिचित हैं।

सौन्दरनन्द में अश्वघोष बुद्ध के सौतेले भाई नन्द के धर्मपरिवर्तन की कथा कहते हैं जो महाभारत और निदानकथा में आती है। अश्वघोष एक कवि की भाँति कहानी को लिखते हैं और निष्पादित करते हैं। सुन्दरी एवं नन्द के चरित्र, उनकी प्रेमलीला, उनका अनुराग, और उनकी वियोगजन्य पीड़ा, सुन्दरी की दुःखद व्यथा इन सबका वर्णन प्राचार्य की भाँति करते है। नन्द के मानसिक संघर्ष का श्लाघ्य रूप से चित्रण किया जाता है। अन्ततः नन्द बुद्ध की सम्मति से सन्त (संन्यासी) बन जाता है।

अश्वघोष वैदर्भी रीति से लिखते हैं। वह विभिन्न अर्थालंकारों का और शब्दालंकारों का प्रयोग करते हैं। उपमा, रूपक, अनुप्रास सभी उनके भाषा सौन्दर्य को बढ़ाते हैं। स्वभावतः उनकी भाषा में महाकाव्य और पालि ग्रन्थों की भाषा से समानता के चिह्न बताती है। उनका छन्द संचालन भी अत्यन्त निपुण है। अश्वघोष एक बौद्ध कवि हैं, संन्यास धर्म के कवि हैं। उन्होंने लोगों के मस्तिष्क पर जीवनासक्ति की व्यर्थता एवं संसार के अस्थायित्व का प्रभाव डालने के उद्देश्य से लिखा। अपने उद्देश्य में उनकी निर्विवाद सफलता के बारे में दो मत नहीं हो सकते।

2. बौद्ध संस्कृत काव्य

अश्वघोष के पश्चात् कतिपय बौद्ध ग्रन्थ, विशेषतः अवदानों का उल्लेख करना समीचीन होगा जो संस्कृत काव्य में कुछ योगदान करते हैं। मातृचेट का शतपञ्चाशतिका स्तोत्र धार्मिक शक्ति के गीतिकाव्य के रूप में वास्तव में उल्लेखनीय है। आद्योपान्त कर्म के सिद्धान्त की शिक्षा दी जाती है। किन्तु लक्ष्य केवल नीतिकथन की अपेक्षा अधिक विस्तृत (व्यापक) है। अवदान महान् कार्यों की कथाएँ हैं जो पुरुष के भाग्य के निर्णायक होते हैं। बुद्ध के प्रति निष्ठा और एतन्निष्ठाजन्य कार्य से मनुष्य का कल्याण होता है, जबकि बुद्ध के प्रति अनादर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पाप है जिसका भयंकर परिणाम होता है। अवदान साहित्य में सबसे प्राचीन अवदानशतक 100 ई० का या इसके बाद का भी हो सकता है, क्योंकि इसमें दीनार शब्द आता है। अतिशयोक्ति और नियत सूत्र घटनाक्रम को अस्पष्ट बना देते हैं और लेखक साहित्यिक रूप की अपेक्षा अपनी शिक्षाओं (अपने प्रवचन या उपदेश) के लिए विचारशील है। कदाचित् अनिश्चित तिथि का दिव्यावदान अधिक रोचक है। ग्रन्थ के मुख्य कलेवर को महायानसूत्र कहा गया है। पात्रों की ओर से परम त्याग का वर्णन किया जाता है और बोधिसत्त्व का आदर्श महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त करता है। संग्रह में सर्वश्रेष्ठ कहानी स्पष्टतः अशोक के पुत्र कुणाल के दुःखद वर्णन वाली है। संस्कृत गद्य गाथा से मिश्रित है और यहाँ काव्यशास्त्र पर ग्रन्थों की उक्तियों के अनुसार लम्बे समास और जटिल छन्दों के प्रयोग में एक प्रयास देखा जा सकता है। इस ग्रन्थ में अश्वघोष के बुद्धचरित और सौन्दरनन्द का परिचय दिखाई पड़ता है और उनसे वास्तविक वाचिक समानताएँ भी हैं।

आर्यशूर की जातकमाला जिसमें काव्यशैली की संस्कृत में कथाएँ आती हैं उल्लेखनीय रचना है। ये सब कहानियाँ पालिजातक ग्रन्थ में दिखाई पड़ती हैं और उनमें से कुछ चरियापिटक में भी हैं। यहाँ उद्देश्य विभिन्न पूर्णताएँ—पारमिताएँ दिखलाना है, जो भावी बुद्ध से सम्बन्धित हैं। बोधिसत्त्व का आदर्श धार्मिक उत्साह के साथ वर्णित किया जाता है और इस ग्रन्थ ने अजन्ता के कतिपय भित्तिचित्रों को प्रेरित किया है। आर्यशूर का ग्रन्थ 434 ई० से पहले का है क्योंकि इसी वर्ष चीनी भाषा में इसका अनुवाद हुआ था। आर्यशूर परिष्कृत गद्य और श्रुतिमधुर पद्य लिखते हैं। उनका संयम, सरलता और अतिशयोक्ति के परिहार की अभिलाषा उनके ग्रन्थ को एक आकर्षक रचना बनाते हैं। यहाँ भी हम गद्य-पद्य परस्पर मिश्रित पाते हैं किन्तु ओल्डेनबर्ग की इस बात से सहमत होना कठिन होगा कि ये कहानियाँ आख्यान श्रेणी की हैं।

इस सन्दर्भ में आर्यदेव (250 ई०) की चतुश्शतिका उल्लेखनीय है जहाँ ब्राह्मण धर्म सम्मत गंगा (स्नान) की कटु आलोचना आती है। चन्द्रगोमिन् का शिष्य-लेख धर्म काव्य स्पष्टतया धार्मिक है, क्योंकि इसमें एक शिक्षक द्वारा एक विद्यार्थी को बौद्धधर्म की शिक्षा प्रदान की जाती है। चन्द्रगोमिन् का व्याकरण काशिकावृत्ति में प्रयुक्त होता है अतः उसे 700 ई० में रखा जा सकता है। शान्तिदेव में हम शिक्षक और कवि दोनों का संमिश्रण पाते हैं। अपने बोधिचर्यावतार में वे बौद्धमत की शिक्षा देते हैं और उनके विचार में महायान के अत्यन्त नकारात्मक दृष्टिकोण एवं मुक्ति प्राप्त करने की निश्चयात्मक अभिलाषा का आकर्षक सम्मिश्रण है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

3. ऋतुसंहार

संस्कृत कवियों में कालिदास सर्वश्रेष्ठ हैं जैसा कि परम्परागत रीति से उन्हें दी गई उपाधि "कविकुलगुरू" से स्पष्ट है। विद्वानों में उनके समय के वारे में मतैक्य नहीं है और उनके लिए भिन्न-भिन्न तिथियाँ प्रस्तावित की गई हैं। परम्परा कालिदास को विक्रमादित्य से सम्बद्ध करती है और इस आधार पर भी विद्वानों ने कालिदास के समय का निर्धारण करने का प्रयास किया है। बहुत-से विद्वान् विश्वास करते हैं कि विक्रमादित्य मालवा के समृद्ध राजा थे और उज्जैन में प्रथम शताब्दी ई० पू० में शासन करते थे। उनकी राजसभा में प्रसिद्ध नवरत्न थे और कालिदास उनमें से एक थे। कालिदास उज्जैन और मालवा के वारे में सौहार्द पूर्वक लिखते हैं। यद्यपि, अनेक विद्वान् ऐसे हैं जो शिलालेख और संस्कृत पाठों द्वारा दिए गए प्रमाण के आधार पर यह सोचते हैं कि प्रथम शताब्दी ई० पू० में कोई विक्रमादित्य नहीं हुए थे। यह गुप्तवंश के चन्द्रगुप्त द्वितीय थे जिन्होंने विक्रमादित्य की उपाधि को धारण किया और जिन्हें भी उज्जैन से सम्वद्ध किया जाता है। सामान्य रूप से गुप्तों के समय (320-480 ई०) ने साहित्य और ललितकलाओं को नई प्रेरणा दी। इन्होंने ब्राह्मणों के पुनरुज्जीवन का प्रतिनिधित्व किया और शाक्त, शैव तथा वैष्णवमत के पुनर्जीवन का भी प्रतिनिधित्व किया। कालिदास के ग्रन्थ गुप्तकाल के इसी वातावरण में श्वास लेते हैं जिस प्रकार अश्वघोष के ग्रन्थ जो निषेधवाद एवं संन्यास के दर्शन का प्रतिनिधित्व करते हैं और एक बौद्ध वातावरण में श्वास लेते प्रतीत होते हैं। इस संक्षिप्त अर्थ में कालिदास गुप्तकाल के प्रवक्ता और अश्वघोष के विरुद्ध प्रतिक्रिया के रूप में माने जा सकते हैं। कालिदास के ग्रन्थों से अश्वघोष का परिचय प्रकट होता है और, सर्वत्र, कालिदास के जो सूत्र और विचार अश्वघोष में मिलते हैं, उन्हें उतकृष्टतर प्रयोग में लाते प्रतीत होते हैं। कालिदास के अपने ग्रन्थों में विक्रम, चन्द्र और गुप्त शब्दों के उल्लेख चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य के समय में उनकी स्थिति को स्वीकार करते हैं।

कालिदास ने हमें कुल मिलाकर सात ग्रन्थ दिए हैं : चार काव्य ऋतुसंहार, कुमारसम्भव, रघुवंश और मेघदूत, और तीन नाटक मालविकाग्निमित्र, विक्रमोर्वशीय और अभिज्ञानशाकुन्तल जो सम्भवतः इसी क्रम में लिखे गए हैं। यह विश्वास करने का सर्वथा प्रलोभन है कि अभिज्ञानशाकुन्तल अन्तिम रचना थी क्योंकि कवि ने मुक्ति के लिए शिव से अति वैयक्तिक प्रार्थना की है। उनका कुमारसम्भव और शिव के प्रति सन्दर्भ स्पष्टतया महादेव के प्रति उनके झुकाव को सूचित करते हैं तथापि उनकी उदार मनोवृत्ति सर्वत्र देखी जा सकती है।

ऋतुसंहार अथवा ऋतुचक्र विभिन्न ऋतुओं का काव्यमय वर्णन है और यह

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सम्भवतः उनके अपरिपक्व कवित्व की कृति है। मनुष्य की मनोवैज्ञानिक प्रतिक्रियाओं का काव्यमय अभिलेख देते हुए यहाँ वर्ष के ऋतुपरिवर्तन को मानव-मस्तिष्क के निकट सम्पर्क में लाने का प्रयत्न किया गया है। काव्यशास्त्र के लेखक ऋतुसंहार से बहुत ही कम उद्धरण देते हैं, किन्तु यह तथ्य कालिदास के काव्य-कर्तृत्व को अप्रमाणित करने का तर्क नहीं बन सकता। ग्रीष्म-जन्य सन्ताप, वर्षा से सम्बद्ध उत्सुकता, और शरत् में उत्पन्न होने वाली अभिलाषा का निपुणता से वर्णन किया गया है। रूपक और उपमा जैसे अलंकारों का प्रयोग आचार्य की रीति से नहीं है, क्योंकि स्पष्ट रूप से यहाँ वह एक तरुण कवि है, जिसका प्रदर्शन विशेष रूप से प्रकृति के सुकुमार निरीक्षण के लिए एवं उसी के लिए स्नेहमय सहानुभूति के लिए प्रशंसनीय माना जा सकता है। प्रकृति को पुरुष और नारी के सम्पर्क में लाने का सचेत प्रयास विद्यमान है और ऋतुओं का मानवीकरण, जब वे आती हैं, सर्वथा सरस है। कालिदास ने हमें महान् कविता दी है, किन्तु उनके उत्कृष्ट गुणों के अंकुर जो उनके प्रौढ़ावस्था के दिनों में परिपक्व हुए, इस सुबोध काव्य में दिखाई पड़ते है।

4. कुमारसम्भव

कुमारसम्भव देवों के सेनापति स्कन्द का जन्म विषयक अलंकृत महाकाव्य है। तारकासुर के विरुद्ध युद्ध में सफलता के लिए देवताओं को एक सेनापति की आवश्यकता है। केवल शिव और पार्वती के पुत्र ही सेनापति बनकर उनको सफलता प्रदान कर सकते हैं। इस दिव्य उद्देश्य के लिए स्कन्द अथवा कुमार का शिव और पार्वती के विवाह से उत्पन्न होना है। हिमालय के भव्य वर्णन से कविता प्रारम्भ होती है, और बाद में इन्द्र काम के द्वारा शिव को प्रलोभन देने का प्रयास करते हैं जिससे कि वह पार्वती से विवाह कर लें। अपनी प्रथम पत्नी सती की मृत्यु के उपरान्त शिव योगी (तपस्वी) बन जाते हैं, और दूसरी पत्नी स्वीकार करने की मनोदशा में नहीं हैं। पार्वती उन पर अपना हृदय प्रवृत्त करती है और उनकी उपासना अद्वितीय भक्ति से कर रही हैं। ये सब घटनाएँ कालिदास को रमणीय पात्र एवं नयनाभिराम स्थितियों की सृष्टि में और अत्यन्त मनोहर संवाद लिखने में अपनी शक्तियों के प्रदर्शन का उत्तम अवसर प्रदान करती हैं। कामदहन, रतिविलाप, वटुवेश में शिव और पार्वती का मिलन एवं वार्तालाप का उल्लेख किया जा सकता है जो संस्कृत साहित्य में अविस्मरणीय परिच्छेद (अवतरण) बन गए हैं। शिव और पार्वती का विवाह होता है और कालिदास उनकी कामक्रीड़ाओं का वर्णन करते हैं जिसके लिए आनन्दवर्धन जैसे काव्यशास्त्र-कारों द्वारा उनकी समालोचना की गई है। वस्तुतः कुमारसम्भव गार्हस्थ्य प्रेम की कविता है और अश्वघोष के सौन्दरनन्द के प्रतियुक्ति का रूप साधारण

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

करता है। एक महान् योगी शिव को देवताओं द्वारा विवाह करने के लिए और संसार के हित के लिए गृहस्थ का उत्तरदायित्व स्वीकार (वहन) करने के लिए मनाया जाता है, जबकि अश्वघोष के काव्य में एक स्वच्छन्द राजकुमार को संन्यास लेने के लिए वाध्य किया जाता है। अत: कामक्रीडाओं के वर्णन केवल वर्ण्यवस्तु की अपेक्षा, युक्ति (तर्क) का एक अंग है। काव्य के उत्तर भाग में स्कन्द के जन्म का और तारकासुर से युद्ध में देवताओं की विजय का वर्णन है किन्तु इस भाग में कालिदास का स्पष्टत: श्रेष्ठ प्रदर्शन नहीं है, क्योंकि वह वीर रस के कवि नहीं हैं। विद्वान् इसके उत्तर भाग को प्रामाणिक मानने के लिए तैयार नहीं हैं, क्योंकि इसमें उत्कृष्ट काव्यगुण नहीं हैं और इस कारण से भी कि यह काव्यशास्त्र के ग्रन्थों में कदाचित् ही उद्धृत होता है। किन्तु ये दोनों तर्क शक्तिहीन हैं। एक कवि से आद्योपान्त एकरूपता से उत्कृष्ट काव्यरचना करने की आशा नहीं रखनी चाहिए। काव्य का प्रथम भाग नि:सन्देह कवि की असाधारण (विलक्षण) रचना (कृति) है और यहाँ हमें आने वाली महत्त्वपूर्ण घटनाओं की झलक मिलती है। यह कविता महत्त्वपूर्ण है क्योंकि यह वाल्मीकि और अश्वघोष के प्रभाव को प्रदर्शित करती है और रघुवंश लिखने का सुविचारित प्रयत्न प्रतीत होता है।

5. रघुवंश

रघुवंश कई दृष्टियों से विलक्षण काव्य है और परम्परा ने इसको सदा कवि की सर्वश्रेष्ठ कृति माना है। कुमारसम्भव में कालिदास केवल एक वर्ण्यविषय पर लिख रहे थे और मुख्य पात्रों पर उन्हें ध्यान केन्द्रित करना था। रघुवंश में उन्होंने जानबूझकर इक्ष्वाकु के प्रसिद्ध वंश के वर्णन को चुना जिसमें दिलीप, रघु, अज, दशरथ, राम, कुश सदृश अनेक वीर एवं पराक्रमी राजा थे जिन पर गर्व किया जा सकता है। उसी प्रकार से दिलाप की पत्नी सुदक्षिणा में, अज की रानी इन्दुमती में और श्री रामचन्द्र की सीता में विलक्षण नारियाँ हैं जो इन राजाओं की सुयोग्य अर्धाङ्गिनियाँ हैं। इन राजाओं और रानियों में प्रत्येक का अपना-अपना घटनापूर्ण (महत्त्वपूर्ण) जीवन था और कालिदास उनका वर्णन करने में प्रतिभा दिखाते हैं। इन श्रेष्ठ व्यक्तियों के जीवन में ब्राह्मण धर्म की प्रणाली और जीवन का आदर्श स्पष्ट है। वे सब नि:सन्देह अपने प्रकार से महान् हैं और यही सूक्ष्म सूत्र है जो स्तोत्र काव्य में एक कलात्मक एकता आरोपित करता है जिसमें एक प्रतापी राजवंश के अनेक देदीप्यमान व्यक्तियों के चित्र हैं। रघु का भारत दिग्विजय एवं राम का अयोध्या लौटना कवि को प्रकृति-वर्णन का अवसर प्रदान करते हैं। ये वर्णन कवि की सूक्ष्म निरीक्षण शक्ति व कल्पना प्रकट करते हैं। वे मानव-भावों के चित्रण में भी समान रूप से सिद्धहस्त हैं। दिलीप और सिंह का वार्तालाप, रघु और कौत्स का मिलन, इन्दुमती का स्वयंवर, उसकी मृत्यु और अज का विलाप, सीता का

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

परित्याग, विलासमय अग्निवर्ण सभी की कोमल कल्पना की गई है और ऐसा प्रतीत होता है कि मानव-भावों के समस्त क्षेत्र को वर्ण्य-विषय बनाया गया है। विभिन्न अलंकारों का बड़ी निपुणता से प्रयोग किया जाता है जिनमें उपमा प्रमुख है। कोई भी यह अनुभव कर सकता है कि सम्भवतः यह रघुवंश है जिसके आधार पर समालोचकों ने यह निर्णय लिया कि उपमा में कालिदास अतुलनीय हैं। अनेक विद्वान् रघुवंश को अपूर्ण मानते हैं। यह एक ऐसा निर्णय है जिससे सहमत होना कठिन है। यह तर्क दिया जा सकता है कि राजवंश एवं काव्य का अन्त रघुवंश में तीन कोमल व्यञ्जनामय उपमाओं से अतिनैपुण्य से सूचित किया जाता है।

यह स्पष्ट है कि वाल्मीकि कालिदास के स्रोत हैं, किन्तु महत्त्वपूर्ण तथ्य यह है, कि कालिदास वाल्मीकि से बढ़कर प्रतीत होते हैं। कालिदास का रघुवंश सम्भवतः संस्कृत में प्रथम महाकाव्य है जिसके बाद कदाचित् संस्कृत काव्यशास्त्र ने महाकाव्य की परिभाषा बनाई। यदि कुमारसम्भव गृहस्थजीवन का प्रबल समर्थन करता है, तो रघुवंश हिन्दू राजत्व के निश्चयात्मक आदर्श का प्रतिपादन करता है। यह जानना महत्त्वपूर्ण है कि अपने बुद्धचरित में अश्वघोष बुद्ध को सूर्यवंश का राजकुमार—आदित्य वन्धु बताते हैं और उत्साहपूर्वक उनके संन्यास का वर्णन करते हैं और कालिदास भी अपने रघुवंश में सूर्यवंश के राजाओं की महिमा वर्णन करने का कार्य अपने ऊपर लेते हैं और इस प्रक्रिया में प्रवृत्ति का आदर्श संस्तुत (समर्पित) करते हैं। कालिदास का कुमारसम्भव और रघुवंश इन दो के अतिरिक्त और कोई महाकाव्य उपलब्ध नहीं है और यह सुझाव कि प्रवरसेन के सेतुवन्ध में उनका हाथ था ऐतिहासिक विचारों में निःसंशय अत्यन्त आकर्षक है किन्तु विशुद्ध साहित्यिक दृष्टिकोण से समालोचनात्मक रूप से विचारणीय है।

6. मेघदूत

मेघदूत की रचना के समय कालिदास की कविता निःसन्देह परिपक्व थी। स्वल्प वर्ण्यवस्तु पर एक मनोहर काव्य का ढाँचा बनाने का प्रयत्न करने का साहस, मन्दाक्रान्ता छन्द का कुशल प्रयोग, प्रकृति के चित्रों की कोमलता और प्रचुरता तथा उनका सूक्ष्म रीति से मानव भावों से सम्बद्ध होना ऐसे तत्त्व हैं जो उनकी परिपक्वता प्रदर्शित करते हैं। इस कविता का भाव रामायण से मिला होगा क्योंकि एक उपमा इसे सूचित करती हैं (मेघदूत : उत्तरमेघ 37) तथापि इसमें कोई सन्देह नहीं है कि सम्पूर्ण कविता अद्वितीय मौलिकता और काव्य सौन्दर्य की परिचायक है। प्रवास में रहता हुआ रामगिरि से एक यक्ष अलका में अपनी पत्नी को मेघ के द्वारा सन्देश भेजना चाहता है। सन्देशवाहक मेघ स्वभावतः रामगिरि और अलका के बीच स्थित विभिन्न प्रदेशों से जाने का अवसर प्राप्त करता है। यह कवि को इन विभिन्न प्रदेशों के नदी, पर्वत, मन्दिर, उद्यान, नर और नारियों

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

का वर्णन करने के लिए अवसर प्रदान करता है। चार पंक्तियों का प्रत्येक छन्द अपने में एक पूर्ण इकाई है और सम्पूर्ण कविता मोतियों का हार-सा प्रतीत होती है। विभिन्न नदियों का मानवीकरण, मेघ की समस्त प्रेमिकाएँ कवि की मनोहर सृष्टि हैं और साथ-साथ नायक यक्ष के भावों का मूर्तिकरण हैं। किन्तु यक्ष की पत्नी अनुपम है जो कविता के उत्तर भाग में प्रमुख है। उसमें कालिदास की प्रत्येक नारी-सृष्टि पार्वती, सीता, उर्वशी और शकुन्तला का कुछ न कुछ विद्यमान है। मेघदूत की लोकप्रियता का इस स्थिति से अनुमान लगाया जा सकता है कि परवर्ती कवियों द्वारा इसका अनुकरण किया गया है, जैसे विक्रम का कालनेमिदूत, धेली का पवनदूत और हंसदूत। अपने महान् मौलिक ग्रन्थ के समक्ष में ये सभी फीके हैं। आठवीं शताब्दी के जैन कवि जिनसेन ने अपनी रचना पार्श्वाभ्युदय में मेघदूत के सम्पूर्ण पाठ को ग्रथित किया है किन्तु ये सभी अनुकरण मात्र हैं। किसी में सरलता, उक्ति की संक्षिप्तता, अर्थ और भाव की विपुलता के मापदण्ड से मेघदूत के सादृश्य का आभास भी नहीं है।

कालिदास तत्त्वतः ब्राह्मण धर्म के एक दार्शनिक हैं और उनके ग्रन्थों में उनके समय तक के समस्त वैदिक एवं शास्त्रीय साहित्य में प्रतिविम्वित दर्शन और शास्त्र का कलात्मक प्रदर्शन है। वह मानवप्रेम के कवि हैं। धर्म के विषय में उनका दृष्टिकोण उदार है और उनके ग्रन्थों में ब्रह्मा, विष्णु और शिव की समान प्रशंसा है। कालिदास ब्रह्माण्ड के बारे में सांख्य एवं योग के दृष्टिकोण को स्वीकार करते प्रतीत होते हैं और यह महत्त्वपूर्ण है कि उन्होंने अन्तिम ग्रन्थ शाकुन्तल के अन्तिम श्लोक में पुनर्जन्म से मुक्ति की प्रार्थना की है। उनका छन्दकौशल असंदिग्ध है और वे सभी अलंकारों के आचार्य हैं। उनकी निश्चित कलात्मक प्रवृत्तियों ने उनकी विद्वत्ता को सदा नियन्त्रित रखा है और कोई आश्चर्य नहीं है—यदि परम्परा ने उन्हें वैदर्भी रीति का आदर्श प्रतिनिधि माना है।

7. किरातार्जुनीय

हम भारवि और उनके जीवन के बारे में कुछ भी नहीं जानते। ऐहोल के शिलालेख (634 ई०) में उनका कालिदास के साथ उल्लेख आता है। अतः ये शिलालेख काल से प्राचीन हैं। उनके ग्रन्थ में कालिदास का प्रभाव मिलता है और इसलिए वह उनके बाद के रहे हैं। बाण उनका उल्लेख नहीं करते। यह एक ऐसा तथ्य है जो सूचित करता है कि बाण के समय तक उनकी महत्ता नहीं मानी जाती थी। इसलिए उन्हें 550 ई० के आसपास रखना उचित होगा।

उनका यश सत्रह सर्ग के महाकाव्य किरातार्जुनीय पर निर्भर करता है। जिस कहानी का वर्णन भारवि करते हैं उसका स्रोत महाभारत है। जुए की प्रतिस्पर्धा में स्वीकृत बारह वर्ष के दण्ड की शर्त को पूरी करने के लिए पाण्डव द्रौपदी के साथ

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

द्वैतवन को चले गए हैं। अपने प्रति किए गए अपमान एवं वर्तमान अपमानजनक स्थिति जिसमें वे सब रह रहे हैं, न सह सकने के कारण द्रौपदी तत्काल कार्यवाही का समर्थन करती है। अधिक बुद्धिमत्तापूर्ण परामर्श स्वीकृत किया जाता है और युधिष्ठिर अर्जुन को शिव से पाशुपत अस्त्र प्राप्त करने के लिए आदेश देते हैं। शिव को प्रसन्न करने के लिए अर्जुन तपस्या हेतु हिमालय के लिए प्रस्थान करते हैं। उनकी तपस्या से प्रसन्न होकर शिव वनवासी किरात के रूप में प्रकट होते हैं। अर्जुन और शिव साथ-साथ एक ही समय एक शूकर (वराह) देखते हैं, उस पर बाणवर्षा करते हैं और उसे मार डालते हैं। प्रत्येक वराह को अपना शिकार घोषित करता है और युद्ध छिड़ जाता है। शिव अर्जुन की वीरता से प्रसन्न होते हैं और उन्हें एक वरदान और अभीष्ट शस्त्र देते हैं। काव्य के सत्रह सर्गों में कहानी का वर्णन किया जाता है। द्रौपदी के युधिष्ठिर के प्रति ओजस्वी वचनों में, अप्सराओं के विहार वर्णन में, वन की सन्ध्याओं में, अपने परिवार की प्रतिष्ठा बचाने में, अर्जुन की स्पष्टवादिता और उत्सुकता में, किरात और अर्जुन के युद्ध में और उपसंहार में भारवि की कलात्मक प्रवृत्तियाँ देखी जा सकती हैं। भारवि में निःसन्देह उर्वर कल्पना है किन्तु सन्दर्भपूर्ण बहुत लम्बे वर्णन हमें थका देते हैं। भारवि में एक शान्त गरिमा है और उन्हें मानव आकृति और प्रकृति दोनों का सौन्दर्य परखने की दृष्टि है। किन्तु उनकी कला कृत्रिमता के चरम बिन्दु तक स्पष्ट रूप से पहुँच जाती है और हमें निरुत्साह छोड़ देती है। वर्णों और वृत्तों से वह कलाबाजी के कमाल दिखाने का प्रयास करते हैं जो कि संस्कृत काव्य के पतन का निश्चित संकेत है। वे विभिन्न भव्य छन्दों का प्रयोग करते हैं तथापि किरतार्जुनीय कल्पना, गरिमा एवं कवि-श्रम का महाकाव्य है।

8. रावणवध

भट्ट स्वयं हमें बताते हैं कि उन्होंने राजा श्रीधरसेन के समय में बलभी में लिखा। यह सुझाव स्वीकार करना कठिन है कि भट्टि मन्दसोर शिलालेख के वत्सभट्टि से अभिन्न हैं। इसका कारण यह है कि भट्टि प्रथम श्रेणी के वैयाकरण हैं जबकि वत्सभट्टि व्याकरण की त्रुटियों के दोषी हैं। एक मत यह भी है जो भट्टि को भर्तृ का प्राकृत रूप मानता है और भट्टि को भर्तृहरि से अभिन्न समझता है, किन्तु यह अविश्वसनीय प्रतीत होता है। शिशुपालवध काव्य की रचना में माघ को भट्टि से प्रेरणा मिली। भामह भट्टि की रचना से परिचित प्रतीत होते हैं और भट्टि में जो अलंकार दिखाई पड़ते हैं वे दण्डी और भामह के अलंकारों से भिन्न हैं। ये तीन परिस्थितियाँ ऐसी हैं जो उनकी तिथि को सूचित करती है जो दण्डी और माघ (छठी शताब्दी) के कुछ समय पूर्व होनी चाहिए।

भट्टिकाव्य या रावणवध लिखने में भट्टिके दो प्रयोजन हैं, एक,—राम के

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जीवन का वर्णन करना और दूसरे—व्याकरण के नियमों के उदाहरण देना। व्याकरण के काल और लकार, प्रमुख नियम एवं प्रकीर्ण नियम, काव्य के अलंकार सभी कुछ व्यवस्थित रूप में उदाहृत किए गए हैं। यह तथ्य बना रहता है कि काव्य के तत्त्व विद्वत्ता के प्रदर्शन में दब से जाते हैं। अतः भावुक रुचि के साहित्य प्रेमियों ने इस काव्य की उपेक्षा की है, जबकि विद्वानों ने इसकी सराहना की है। उन्होंने भट्टि को महाकवि की पदवी प्रदान की है। अधिक लम्बे छन्दों का अभाव है जिससे कथानक प्रवाहमय है। रावणवध का मूल्यांकन केवल पाण्डित्य-पूर्ण रचना के रूप में होना चाहिए और काव्यकलाकृति के रूप में नहीं।

9. जानकीहरण

कुमारदास का जानकीहरण (20 सर्ग) वास्तव में सराहनीय रचना है। सिंहल भाषा में इस काव्य का अक्षरशः अनुवाद विद्यमान है। एक सिंहल परम्परा ने कुमारदास को सिंहल के राजा (517-26 ई०) से अभिन्न माना है। कुमारदास कालिदास के प्रभाव में है और उन्होंने अभिव्यक्ति की रीति और कथा-वस्तु के वर्णन—दोनों में उनका अनुकरण किया है, जैसा कि रघुवंश के बारहवें सर्ग के जानकीहरण के बारहवें भाग की तुलना से स्पष्ट दिखाई पड़ता है। कुमारदास काशिकावृत्ति (650 ई०) जानते हैं, और वामन द्वारा एक वाक्य में प्रथम शब्द खलु का प्रयोग करने के लिए उनकी आलोचना की गई है। अतः वे इन दोनों के बीच में रहे होंगे। राजशेखर (800 ई०) उन्हें उच्च सम्मान प्रदान करते हैं।

जानकीहरण का कथानक साधारण है, जहाँ तक संस्कृत कवियों का सम्बन्ध है। लोकप्रिय कथा-वस्तु का इस प्रकार का चयन स्वभावतः नए आविष्कार के लिए कुछ भी क्षेत्र प्रदान नहीं करता, तथापि कुमारदास कथानक के निर्वाह में अपनी क्षमता दिखलाते हैं और उनकी पुरुषों और परिस्थितियों के वर्णन की कला प्रशंसनीय है। दशरथ, रावण, सीता और राम, सूर्यास्त और रात्रि के वर्णन सभी निपुणता से किए गए हैं। कुमारदास वैदर्भी रीति में लिखते हैं। उनका काव्य-शास्त्र और व्याकरण का ज्ञान विपुल है। वह अपने को समालोचक के रूप में प्रस्तुत करते हैं जब वे कुकाव्य के तत्त्व सूचित करते हैं। उनका छन्दप्रयोग कौशलपूर्ण है और उनके प्रयोग में वे कालिदास के आदर्श का अनुसरण करते हैं, पाण्डित्यपूर्ण कवि भारवि, माघ और दूसरों के आदर्श का नहीं।

10. शिशुपालवध

माघ 700 ई० के बाद के समय के हैं क्योंकि वे काशिका के टीकाकार न्यासकार जिनेन्द्र बुद्धि का उल्लेख करते हैं। माघ हर्ष के नागानन्द को जानते हैं और सुबन्धु और माघ की सदृशताएँ केवल यही प्रमाणित करती हैं कि माघ

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सुबन्धु की वासवदत्ता को जानते थे। माघ के पिता दत्तक सर्वाचार्य थे और उनके पितामह सुप्रभदेव राजा वर्मलाख्य या वर्मलात के मन्त्री थे। राजा वर्मलाख्य का शिलालेख (625 ई०) प्राप्य है।

भारवि की भाँति माघ महाभारत से कथानक लेते हैं। भारवि शिव का यशोगान करते हैं जबकि माघ विष्णु का। इस परम्परा में कुछ सत्य प्रतीत होता है जो प्रतिपादित करती है कि माघ ने भारवि को निस्तेज करने के लिए लिखा और परम्परा के अनुसार ऐसा करने में वह सफल हुए हैं। चौथे सर्ग में वे भारवि के चौथे और पन्द्रहवें सर्गों से प्रतिस्पर्द्धा करते प्रतीत होते हैं जहाँ विविध छन्दों और विचित्र रूपों का कष्टसाध्य प्रयोग है। शिशुपालवध की कथा अति सरल है, निर्विरोध है और व्यापक रूप से प्रसिद्ध है। माघ ने बड़ी सावधानी और चतुरता से कथानक का वर्णन किया है। उनके पात्रों के भाषण सजीव, प्रवाहमय और पाण्डित्यपूर्ण हैं। भारवि संक्षिप्त, शान्त और गरिमामय हैं, जबकि माघ में विलासमय अभिव्यक्ति (पदचयन) एवं कल्पना है। भारवि की भाषा अर्थगरिमा से झुक जाती है, व्याकरण की शुद्धता के कारण विद्वत्तापूर्ण है, जबकि माघ ने कई स्थलों पर महाकाव्य की सरलता और मधुरता सुरक्षित रखी है। भारवि और माघ दोनों भाषा को तोड़ने-मरोड़ने की शक्ति प्रदर्शित करते हैं। ये युक्तियाँ यद्यपि अपने-आप में चातुर्यपूर्ण हैं परन्तु महाकाव्य के लिए आवश्यक नहीं। ऐसे अभ्यासों में भाव और विचार कुण्ठित हो जाते हैं। माघ का पाण्डित्य निर्विवाद है। माघ भाषा और छन्द दोनों के आचार्य हैं, तथापि कोई भी उस परम्परागत मत से सहमत होने में संकोच करेगा कि माघ में अपने प्रतिद्वन्द्वियों—कालिदास की उपमा, दण्डी का सुरम्य एवं अनुनादी पदलालित्य और भारवि का अर्थगौरव के महान गुण हैं।

11. नैषधचरित

बारहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में हीर और मामल्लदेवी के पुत्र श्रीहर्ष के महाकाव्य नैषधचरित का उल्लेख यहाँ किया जा सकता है। श्रीहर्ष में हमें दार्शनिक कवि के दर्शन होते हैं, क्योंकि उन्होंने हमें विशद यश का वेदान्तग्रन्थ सुप्रसिद्ध खण्डनखण्डखाद्य दिया है। नैषधीय उत्कृष्ट गुणमयी कविता है क्योंकि श्रीहर्ष का शब्दचयन और छन्द पर प्रशंसनीय अधिकार है और शब्दों में श्लेष लाने की क्षमता है। उनका प्रकृति निरीक्षण कोमल है और वास्तव में काव्यमय है और उनकी पदावली अत्यन्त प्रभावशाली है। परम्परा उनके काव्य को पञ्चमहाकाव्यों की प्रसिद्ध सूची में सम्मिलित कर उनके गुणों का आदर करती है। वे दर्शन और पुराणगाथा से अभिज्ञ हैं और अलंकारशास्त्र के आचार्य हैं। उनके ग्रन्थ में कामसूत्र और व्याकरण का परिचय स्पष्ट रूप से विदित होता है। पञ्चनली आख्यान,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जहाँ दमयन्ती स्वयंवर के पाण्डाल में पाँच नलों को देखती है, एक विलक्षण रचना है, क्योंकि यहाँ प्रत्येक छन्द के पाँच अर्थ हैं। बड़ी कुशलता से विविध छन्दों का प्रयोग किया गया है और हर्ष में कोई कितना भी कृत्रिमता और अहंमन्यता की निन्दा करने के लिए उन्मुख हो जाय, उसे उनकी रचनाओं में लालित्य, माधुर्य और नैपुण्य के प्रसार को स्वीकार करना ही पड़ेगा।

12. अन्य काव्य

कल्हण हमें सूचित करते हैं कि मेण्ठ कवि नरेश मातृगुप्त की राजसभा में रहते थे। मातृगुप्त मेण्ठ की चित्ताकर्षक कविता हयग्रीववध से अत्यन्त प्रसन्न हुए और उन्हें सोने की तश्तरी से पुरस्कृत किया। राजशेखर वाल्मीकि और भवभूति के बीच में उन्हें प्रतिष्ठित कर मेण्ठ की प्रशंसा करते हैं, जबकि मंख उन्हें सुबन्धु, भारवि और बाण के समकक्ष मानता है। मेण्ठ छठी शताब्दी के उत्तरार्ध में रखे जा सकते हैं।

भौमक—जो भीम, भूम या भूमक के नाम से भी प्रसिद्ध है—द्वारा विरचित रावणार्जुनीय अथवा अर्जुनरावणीय कश्मीर की एक सुप्रसिद्ध कविता है। इस 27 सर्ग के महाकाव्य में भौमक ने अर्जुन-कार्तवीर्य और रावण के संघर्ष की कहानी वर्णित की है। भौमक भट्टि के सदृश हैं, क्योंकि उनका उद्देश्य भी व्याकरण के नियमों के उदाहरण देना है। यह परम्परा हलायुध के कविरहस्य में, जो एक उत्तरकालीन ग्रन्थ है, चलती रहती है, जहाँ हमें राष्ट्रकूट नरेश कृष्ण तृतीय की प्रशंसा और संस्कृत धातुओं के वर्तमान काल की रचना की प्रक्रिया के उदाहरण भी प्राप्त होते हैं।

शिवस्वामी के कप्फणाभ्युदय (नवीं शताब्दी) में अवदानशतक की एक कथा का वर्णन है जो तत्त्वतः बौद्ध महाकाव्य है। शिवस्वामी माघ और भारवि के प्रभाव में कार्य करते हैं। वर्ण्य-वस्तु के संचालन में और कविता के निष्पादन में ये प्रभाव पर्याप्त मात्रा में दिखाई पड़ते हैं। कदाचित् महाकाव्य की परिभाषा सार्थक करने के लिए सूर्यास्त, चन्द्रोदय, पर्वतों और ऋतुओं के वर्णन प्रस्तुत किए गए हैं।

राजानक वागीश्वर रत्नकार ने अपना हरविजय 850 ई० के लगभग लिखा। कथा में राक्षस अन्धक का वर्णन है जो अन्धा उत्पन्न हुआ था, परन्तु तपस्या के द्वारा नेत्र-ज्योति प्राप्त करके त्रैलोक्य का शासक बन गया और शिव के लिए इस अत्याचारी का वध करना आवश्यक हो गया। वर्ण्यवस्तु के संचालन और कविता की रचना में भारवि और माघ द्वारा प्रस्तुत आदर्श निबाहा गया है। कविता में वास्तव में काव्यत्व कहलाने योग्य कुछ भी नहीं है।

कश्मीर के ही अभिनन्द है, जिन्होंने कादम्बरी-कथासार लिखा और जो

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

राजशेखर के समकालीन थे। एक दूसरे अभिनन्द ने रामचरित लिखा जिसका केवल उल्लेखमात्र ही यहाँ आवश्यक है। क्षेमेन्द्र ने भारतमञ्जरी, दशावतारचरित, रामायणमञ्जरी और पद्यकादम्बरी लिखीं। कवि के रूप में क्षेमेन्द्र धूमिल-प्रकाश के नक्षत्र है। 25 सर्गों के महाकाव्य मंख के श्रीकण्ठचरित में शिव द्वारा त्रिपुर की पराजय का वर्णन है। कविता की योजना रूढ़िवद्ध है क्योंकि मंख महाकाव्य लिख रहे थे। मंख का मुख्य गुण यह है कि यह अपने समय के कश्मीर के यथार्थ जीवन की झलक देते हैं। शैव पुराण गाथाओं और शैव आचार के भण्डार के रूप में जयन्त के हरिचरितचिन्तामणि का उल्लेख किया जा सकता है। संध्याकर-नन्दिन ने अपने रामपालचरित में एक ही समय राम और वंगाल के राजा रामपाल (ग्यारहवीं शताब्दी) का वर्णन करने का प्रयास किया। उसी प्रकार के प्रयास कवि-राज का राघवपाण्डवीय है जिसमें रामायण और महाभारत की कथाओं का साथ ही साथ वर्णन है। हरदत्तसूरि का राघवनैषधीय जिसमें राम और नल की कथाओं का वर्णन है, और चिदम्बर का राघवपाण्डवीय जिसमें अतिरिक्त कृष्णकथा के साथ-साथ अन्य कथाओं का समावेश है। यह स्पष्ट है कि इन प्रयासों में हमें प्रचुर पाण्डित्यपूर्ण प्रयत्न मिलते हैं किन्तु व्यवहारतः कोई काव्य नहीं। अपने काव्य यशोधरचरित (950 ई०) में कनकसेन वादिराज उसी कथा का प्रयोग करते हैं जो सोमदेव ने अपने यशस्तिलक में दी है। माणिक्य सूरि अपने यशोधरचरित में उसी गाथा का दूसरा रूप देते हैं। हेमचन्द्र (1088-1172) त्रिषष्टिशलाका-पुरुषचरित के दस वर्षों में जैन धर्म के सर्वश्रेष्ठ 63 पुरुषों के जीवन का वर्णन करते हैं—24 जैन, 12 चक्रवर्ती, 9 वसुदेव, 9 बलदेव और 9 विष्णुद्विषस् (विष्णुद्रोही)। यह महाकाव्य विस्तृत है और सरल-भाषा में लिखा गया है। हेमचन्द्र महावीर के वर्णन में ही वास्तविक इतिहास के समीप आते हैं। हरिश्चन्द्र का धर्मशर्माभ्युदय 21 सर्गों का काव्य है जिसमें पन्द्रहवें तीर्थंकर धर्मनाथ का वर्णन है। यहाँ पर तेरहवीं शताब्दी के देवप्रभसूरि के पाण्डवचरित और मृगवतीचरित भी उल्लेखनीय हैं। चरित्रसुन्दरगणि ने चौदह सर्गों का एक महाकाव्य महीपालचरित लिखा। ये सब ग्रन्थ काव्य-गुण की अपेक्षा केवल कथा के लिए महत्त्वपूर्ण हैं। अश्वघोष और कालिदास द्वारा स्थापित महाकाव्यों के आदर्श आन्तरिक काव्य प्रेरणा की अभि-व्यक्ति की अपेक्षा पाण्डित्य प्रदर्शित करने के दुराग्रह के परिणामस्वरूप कष्टसाध्य रचनाओं में विकृत हो गए। इसके अतिरिक्त अश्वघोष और कालिदास दोनों जीवन के गम्भीरतम मूल्यों में रुचि रखते थे और अपने युग के बारे में सन्देश देना चाहते थे। इसी से इन दो महान् कवियों तथा उनके बाद के कवियों में इतना अन्तर था जिन्होंने उनका अनुकरण किया और जिनकी वास्तविक काव्य-प्रेरणा के कारण काव्य-गान करने की अपेक्षा अलंकारशास्त्र के नियमों का पालन करने और आदर्श का अनुकरण करने की अधिक अभिलाषा थी।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शाहजहाँ के शासनकाल में समृद्धिशाली पण्डित जगन्नाथ का भामिनीविलास अत्यन्त रोचक ग्रन्थ है। यह चार भागों में विभाजित है (1) अन्योक्ति 101 श्लोक (2) शृङ्गार 102 श्लोक (3) करुण 19 श्लोक (4) शान्त 31 श्लोक। यह देखा जाता है कि ग्रन्थ सम्पूर्ण रूप से शृङ्गारिक नहीं है। जगन्नाथ अत्यन्त निपुण कवि हैं जो स्वच्छ परिष्कृत रचना एवं चित्रमय तथ्यों के निरूपण में सर्वथा सक्षम हैं। दुर्भाग्यवश काव्य को महान् बनाने वाले भाव गाम्भर्य का उनमें अभाव है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

III. 6 गीतिकाव्य, सुभाषित एवं अन्य काव्य सङ्ग्रह

संस्कृत में प्रथम गीतिकाव्य ऋग्वेद में मिलता है जहाँ हमें सुख और दुःख के गीत मिलते हैं। इनमें वैयक्तिक अनुभवों को सरलता एवं निष्कपटता से अभिव्यक्त किया गया है, और हृदयस्पर्शी गीत अपने सौन्दर्य से पाठक को मन्त्रमुग्ध कर लेते हैं। इस सन्दर्भ में वसिष्ठ और वामदेव के गीत, द्यूतकार का गीत एवं रात्रि-गीत का उल्लेख किया जा सकता है।

1. शृङ्गार, वैराग्य एवं नीतिशतक

प्राचीनकाल में उत्पन्न होने पर भी यह गीतिकाव्य वस्तुतः बाद की शताब्दियों में विकसित हुआ। इस सन्दर्भ में प्रथम उल्लेखनीय कवि भर्तृहरि हैं, जिन्होंने हमें तीन शतक शृङ्गारशतक, वैराग्यशतक और नीतिशतक दिए हैं। उनमें से प्रत्येक में 100 श्लोकों का संग्रह है और प्रत्येक श्लोक अपने-आप में एक मुक्तक है। इस प्रकार के काव्य में स्वभावतः प्रक्षिप्तांश आ जाते हैं और भर्तृहरि के शतक इसके अपवाद नहीं हैं। ऐसे संग्रहों में पञ्चतन्त्र, शाकुन्तल, या मुद्राराक्षस से संगृहीत श्लोक दिखाई पड़ते हैं। विभिन्न सुभाषित संग्रहों में इन शतकों से चुने गए श्लोक विभिन्न लेखकों द्वारा रचित बताए जाते हैं। ऐसी स्थिति में उनके कालानुक्रम का निर्णय करने का प्रयास या उनके पारस्परिक सम्बन्ध या उद्यम निश्चित करने का प्रयास करना कठिन है। परम्परा तीनों शतकों को एक ही व्यक्ति भर्तृहरि की रचनाएँ मानती है। इत्सिंग हमें सूचित करता है कि 651 ई० के लगभग वाक्यपदीय के लेखक वैयाकरण भर्तृहरि का देहान्त हो गया था। वह हमें आगे भी सूचित करता है कि यह भर्तृहरि गृहस्थ और संन्यासी के जीवन के बीच डगमगाते रहे। यह बिल्कुल शतकों में वर्णित मनोदशा के अनुरूप है और इत्सिग द्वारा दिया गया वर्णन सम्भवतः भ्रतृहरि की ओर संकेत करता है। भर्तृहरि शैव वेदान्ती थे और राजसभा के जीवन का अच्छा अनुभव रखते थे। शतकों के भर्तृहरि और

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वाक्यपदीय के भर्तृहरि के एक होने के बारे में निश्चय करना कठिन है। शतक रचनात्मक मस्तिष्क की कृतियाँ हैं। श्रृङ्गारशतक में भर्तृहरि आनन्दपूर्ण प्रेम का गान करते हैं और हमें प्रेमासक्त सुन्दर नारियों के उत्तम चित्र देते हैं। परन्तु जैसा कि प्रायः देखा जाता है, प्रेम का परिपाक परितृप्ति प्रदान करता है जो पुनः विरक्ति में परिणत हो जाता है। प्रेम सांसारिक आसक्तियों को सुदृढ़ करता है तथा सौन्दर्य के मायाजाल के अतिरिक्त कुछ भी नहीं मानता। ये सुख क्षणभंगुर हैं और वास्तविक मुक्ति कहीं अन्यत्र है। मानव का वास्तविक लक्ष्य संन्यास एवं ब्रह्म में आसक्ति ही है। श्लोकों में आद्योपान्त एक व्यक्ति की मनोदशा की अभिव्यक्ति की छाप है। नीति और वैराग्यशतक इन अभिव्यक्तियों की पुष्टि करते हैं और भर्तृहरि अपने विचारों एवं मनोदशाओं की अभिव्यक्ति में अतिशयरूप से वैयक्तिक हैं। भर्तृहरि में संस्कृत के विशिष्ट गुण अर्थगौरव की शक्ति उत्कृष्ट रूप में दिखाई पड़ती है। प्रत्येक श्लोक अपने आप में पूर्ण है, जिसका प्रभाव सौन्दर्यपरक है और मस्तिष्क पर प्रचुर असर डालने वाला है। स्वरों की विविधता जिसमें भर्तृहरि बोलते हैं, प्रशंसनीय है। आशा, निराशा, विश्वास, उत्कण्ठा, शान्त, हास्य आदि सभी का मनोरम चित्रण किया गया है। भर्तृहरि शार्दूलविक्रीडित छन्द के अति अनुयायी प्रतीत होते हैं। दूसरे छन्दों का भी वे सफलतापूर्वक प्रयोग करते हैं, जिनमें शिखरिणी, श्लोक, वसन्ततिलका, स्रग्धरा, आर्या, मालिनी, हारिणी, मन्दाक्रान्ता, पृथ्वी, द्रुतविलम्बित, वंशस्थ आदि उल्लेखनीय हैं। साहित्य प्रेमियों की अनेक पीढ़ियों में शतकों की लोकप्रियता उनके साहित्यिक गुणों और मानव-मस्तिष्क के प्रति तीव्र आकर्षण का परिचायक है।

2. अमरुशतक

संस्कृत-गीतकाव्यों में अमरुशतक अत्यन्त प्रसिद्ध कृति है। इस रचना के चार संस्करण—दक्षिण भारतीय, बंगाल प्रान्तीय एवं अर्जुनवर्म प्रयुक्त और एक मिश्रित संस्करण—उपलब्ध हैं और यह आश्चर्यजनक बात है कि केवल 51 श्लोक सबमें समान हैं। उनका क्रम भी अनिश्चित एवं भिन्न-भिन्न है। एक अन्य विचित्र परिस्थिति यह है कि सुभाषित संग्रहों में इस शतक के श्लोक दूसरे कवियों के लिखे हुए बताए गए हैं, अमरु के नहीं, जबकि उनके द्वारा जो श्लोक अमरुकृत बताए गए हैं, वे इस संग्रह में नहीं मिलते। अतः मूलपाठ को निश्चित करने का कोई भी प्रयत्न सफल नहीं हो सकता, क्योंकि शार्दूलविक्रीडित छन्द या कृति की श्रेष्ठता के आधार पर कोई भी युक्ति अविश्वसनीय होगी और न ही हम लेखक या उसकी तिथि के बारे में अधिक ज्ञान रखते हैं। 850 ई० में हुए आनन्दवर्धन इस शतक से परिचित हैं और इसके बारे में यह कहते हुए इसकी बड़ी प्रशंसा करते हैं कि अमरु का प्रत्येक श्लोक भावों की उत्कृष्टता के कारण अपने आप में एक पूर्ण काव्य है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वामन भी इस शतक से तीन श्लोक उद्धृत करते हैं। अतः लेखक 750 ई० से पहले हुआ होगा। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि वे परम्पराएँ जो इस ग्रन्थ को कालिदास या शंकराचार्य द्वारा प्रणीत मानती हैं, बिल्कुल अनर्गल हैं। टीकाकार रविचन्द्र इन श्लोकों में ब्रह्मविद्यावादी अर्थ निकालने का प्रयत्न करते हैं। वेमभूपाल प्रत्येक श्लोक को काव्यशास्त्र के ग्रन्थों में वर्णित नायिका की विशेषताओं के अनुसार उसकी दशाविशेष का उदाहरण मानते हैं। दूसरे टीकाकार कृति में प्रयुक्त अलंकारों को ध्यान में रखते हुए इसका अध्ययन करते हैं। इस प्रकार के अध्ययन से निकाला गया निष्कर्ष कि शतक नायिकाओं के भेदों के अथवा विभिन्न अलंकारों के उदाहरण प्रदान करता है, छोड़ देना चाहिए और इस काव्य की प्रशंसा इस रूप में होनी चाहिए कि यह हमें शृङ्गारिक चित्र प्रदान करता है। लेखक की मनोदशा भर्तृहरि की मनोदशा से भिन्न है, क्योंकि भर्तृहरि प्रेम और नारियों के सामान्य पक्षों का वर्णन करते प्रतीत होते हैं, जबकि अमरु प्रेमियों के सम्बन्ध का चित्रण करने में ही रुचि लेते हैं। जिस प्रेम का गान अमरु करते हैं, वह उल्लासमय, ओजस्वी और आह्लादकारी है। यहाँ कोई गम्भीर कलह नहीं है और सब कलह मुस्कान में समाप्त होते हैं, न कि अश्रुप्रवाह में। क्रोध प्रेम का संहार या नाश नहीं करता। वियुक्त, विरक्त और जीवन की आवश्यकता के कारण यात्रा पर जाने वाले मनुष्यों का समागम अनिवार्य रूप से पुनः हो जाता है। जीवन के अन्य गम्भीर पक्ष यहाँ पर सर्वथा अविद्यमान हैं। चित्र अत्यन्त रमणीय हैं और सौम्यता एवं संक्षिप्तता से खींचे गए हैं। कवि की शैली कभी भी जटिल नहीं होती, क्योंकि पद परिचित हैं और लम्बे समास अविद्यमान हैं। कवि का प्रिय छन्द शार्दूलविक्रीडित है, यद्यपि हरिणी, वसन्ततिलका, शिखरिणी और स्रग्धरा भी बहुधा दृष्टिगोचर होते हैं।

3. चौरपञ्चाशिका

बिल्हण का गीतिकाव्य चौरपञ्चाशिका उनके ऐतिहासिक काव्य विक्रमाङ्कदेवचरित की अपेक्षा अधिक रोचक है। चौरपञ्चाशिका गुप्त प्रेम का काव्य है और इसमें 50 श्लोक हैं। इसके दो संस्करण हैं—एक कश्मीर का और दूसरा दक्षिण भारत का। टीकाकारों का कहना है कि इस काव्य में कवि के एक राजकुमारी से गुप्त प्रेम का वर्णन है। जब इस प्रेम-प्रसंग का राजा को पता चलता है, तो वह कवि को फाँसी का दण्ड देता है। जब वह कवि फाँसी के तख्ते पर ले जाया जा रहा था तो उसने राजकुमारी से अन्तिम मिलन के ये पचास श्लोक सुनाए। इन श्लोकों को सुनकर राजा दयार्द्र हुआ और उसने कवि को राजकुमारी से विवाह करने की अनुमति प्रदान कर दी। कश्मीरी संस्करण में यह राजकुमारी महिलापट्टन के राजा वीरसिंह की पुत्री चन्द्रलेखा है, जबकि दक्षिण के संस्करण में वह पाञ्चाल के राजा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi.

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मदनाभिराम की पुत्री यामिनीपूर्णतिलका है। एक अन्य टीकाकार रामतर्कवागीश इस काव्य को चौरपल्ली के राजकुमार सुन्दर द्वारा कालिका की स्तुति मानते हैं। यह राजकुमार वीरसिंह की पुत्री विद्या से गुप्त प्रेम करता था, जिसने उसे वध कर दंड दिया। ऐसा विश्वास किया जाता है कि कवि का नाम चोर था जैसा कि काव्य के शीर्षक से स्पष्ट है। बिल्हण अपनी आत्मकथा में किसी राजकुमारी से अपने प्रेम-प्रसंग का उल्लेख नहीं करता और जो कुछ भी तर्कसंगत रूप से कहा जा सकता है, वह यह है कि उसने चोरों के नेता और राजकुमारी के बीच प्रेम-प्रसंग की कल्पना की होगी। श्लोक वसन्ततिलका छन्द में हैं और उत्तम रूप से परिष्कृत हैं। वे सरल शैली में लिखे गए हैं और उस स्थिति के अनुकूल है जिसमें नायक पड़ जाता है। अतीत के सुखद प्रेम के चित्र सविस्तार वर्णित हैं और आकर्षक विविधता काव्य को नीरस नहीं होने देती है। यह असम्भव है कि इस काव्य को पढ़ते समय मेघदूत और अमरुशतक का ध्यान न आए, क्योंकि इन परिष्कृत और चित्ताकर्षक श्लोकों में हमें उसी अत्यन्त उल्लासमय और उत्कट प्रेम के संस्मरण प्राप्त होते हैं।

4. गीतगोविन्द

जयदेव का गीतगोविन्द एक अत्यन्त विलक्षण रचना है। जयदेव बिन्दुबिल्व के निवासी भोगदेव के पुत्र थे। वे बंगाल के राजा लक्ष्मण सेन की राजसभा में रहते थे। गीतगोविन्द काव्यकला की अद्वितीय कृति है जिसमें गोविन्द अर्थात् कृष्ण के राधा के प्रति अनुराग का वर्णन है। यह कविता इतनी लोकप्रिय हो गई है कि जयदेव के जन्म स्थान पर यह कई शताब्दियों तक प्रतिवर्ष एक पर्व पर गाई जाती रही है। 1292 के एक शिलालेख में इस कविता से एक पद्य उद्धृत है और उसमें जयदेव के लिए कविराज की उपाधि कहीं अधिक न्यायसंगत है।

काव्य का रूप सर्वथा मौलिक है। सर विलियम जोन्स इसे ग्राम्य नाटक का नाम देते हैं। लैसेन के अनुसार यह गीति नाटक है और वॉन श्रोडर के अनुसार यह एक परिष्कृत यात्रा है। पिशल और लेवी इसे संगीतमय नाटक मानते हैं तथा इसे गीत और नाटक के बीच की श्रेणी में रखते हैं। कविता के अन्तःसाक्ष्य से ज्ञात होता है कि जयदेव इसे काव्य के रूप में ही स्वीकृत देखना चाहते थे, और इससे कुछ अधिक नहीं क्योंकि काव्य सर्गों में विभाजित है, अंकों में नहीं। यह भी बहुत सम्भव है कि जयदेव ने अपने गीत यात्राओं में गाए जाने के लिए बनाए, क्योंकि हस्तलिपियों में प्रत्येक गीत के राग और ताल का निश्चित उल्लेख है।

जयदेव के गीतों का माधुर्य तभी समुचित रूप से प्रशंसित किया जा सकता है, जब यह स्मरण रखा जाय कि यात्रा के लोकप्रिय गीत कभी इतने उत्कृष्ट या श्रुतिमधुर नहीं होते। यहाँ पर गीत और कथानक का सुखद सम्मिश्रण है और

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

काव्य के पात्रों की भावनाओं का सूक्ष्म चित्रण किया गया है। परिस्थिति की व्याख्या करने वाले वर्णन नीरसता से मुक्ति प्रदान करते हैं और आगामी उक्तियों के लिए मार्ग प्रशस्त करते हैं। गीत भावों को व्यक्त करने में समर्थ हैं। यह सब कुशलता से गूँथा हुआ है। कृष्ण गोपियों के साथ कुंजों में नृत्य करते हैं, राधा निराश होती हैं। कृष्ण स्वयं आकर राधा को सान्त्वना देते हैं और राधा के मान के उपरान्त मेल-मिलाप हो जाता है। कथावस्तु अत्यन्त क्षीण है, किन्तु जयदेव ने कृष्ण के प्रति अपनी भक्ति एवं कृष्ण और राधा के बीच प्रगाढ़ प्रेम का चित्रण करने के लिए इसका प्रयोग किया है। इस काव्य को गम्भीर दार्शनिक अर्थ प्रदान करने के प्रयास भी किए गए हैं। इस काव्य की तुलना कुमारसम्भव से तो नहीं की जा सकती, जहाँ कालिदास शिव और पार्वती के प्रेम का वर्णन करते हैं, क्योंकि जयदेव का एकमात्र उद्देश्य नीति का प्रदर्शन करना है। प्रेम के सभी पक्षों का भव्य वर्णन है। उत्कण्ठा, आशा, निराशा, तीव्र कोप एवं समागम आदि हमें ऐसे गीतों में मिलते हैं जिनके पदों का लालित्य हमें मुग्ध कर देता है। संस्कृत कवि बहुधा शब्द और अर्थ के समन्वय की कला में उत्कर्ष प्रदर्शित करते हैं और जयदेव तो संभवतः इनमें सर्वोत्तम हैं। यह तथ्य ही, कि जयदेव की रचना का समुचित अनुवाद नहीं किया जा सकता, उनकी उत्कृष्ट कला की खुली स्वीकृति है। वह भाषा पर कभी भी बल नहीं डालते और उनकी शैली सरल एवं सुबोध है। यह मत कि मूल रचना अपभ्रंश में थी स्वीकार नहीं किया जा सकता। इसमें तो लय और यमक की भरमार है जो कि संस्कृत काव्य की ही विशेषता है। यह सत्य है कि काव्य में इनका विरल प्रयोग है और जयदेव की कृति में इनकी बहुलता इस बात की द्योतक है कि उस पर अपभ्रंश का किञ्चित् प्रभाव है। संस्कृत के महान् गीतिकाव्यकारों में जयदेव अन्तिम हैं।

5. सूर्यशतकं

इस सन्दर्भ में मयूर के सूर्यशतक का उल्लेख भी किया जा सकता है। इस काव्य में सूर्य की किरणों, अश्वों, सारथि, रथ और सूर्य देवता का वर्णन है। अनेक सुन्दर विचारों को मनोरम ढंग से व्यक्त किया गया है। इस प्रसंग में यह स्मरण रखना भी महत्त्वपूर्ण है कि सम्राट हर्षवर्धन और उसका परिवार सूर्य की उपासना करता था। मयूर के नाम से सुभाषितावली में कुछ सुन्दर पद्य पाए जाते हैं, जो सूर्यशतक की शैली में रचित हैं। बाण मयूर को हर्षवर्धन की राजसभा का कवि बताते हैं। मयूर स्वयं बाण के सम्बन्धी थे। एक किंवदन्ती के अनुसार मयूर ने अपनी ही पुत्री के सौन्दर्य का वर्णन किया था। इस पर उसने उन्हें कोढ़ी हो जाने का शाप दिया था। मयूर ने अपने सूर्यशतक में सूर्य देवता की अतीव स्तुति की और देवता के प्रसाद से रोगमुक्त हो गये। सूर्यशतक के श्लोक बोझिल और बेढंगे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हैं। श्लेष उनका प्रिय अलंकार है और यह कहना अतिशयोक्ति न होगी कि वह वाण की शैली में लिखते हैं परन्तु वाण के गुणों का उनमें अभाव है।

6. लघु काव्य

कुछ लघुतर गीतिकाव्य एवं सुभाषित संग्रह भी हैं जिनमें श्लोकों का चयन किया गया है। ये भी अपने उच्च साहित्यिक गुणों के कारण अवलोकन के योग्य हैं। इनका विषय अधिकतर शृङ्गारिक है और काव्य का रूप सांसारिक। यह ऐसा ही है जैसा कि होना चाहिए, क्योंकि संस्कृत काव्यशास्त्र ने शृङ्गार रस को अन्य रसों में उच्चतम स्थान प्रदान किया है। इन काव्यों में शृङ्गारतिलक उल्लेखनीय है। इस काव्य में 23 श्लोक हैं जो प्रेम के रमणीय चित्र हैं। इसमें सुन्दर वाग्विनोद भी है। इनको पढ़ने से पाठक को अमरु की स्मृति हो जाती है। परम्परा इस काव्य को कालिदास का लिखा हुआ मानती है किन्तु यह काव्य कितना भी वैदग्ध्यपूर्ण और सुन्दर हो, निश्चित रूप से कालिदास की शैली में नहीं है। घटकर्पर 22 श्लोकों का काव्य है, जो ऐसी परिस्थिति पर आधारित है जो मेघदूत की परिस्थिति के विपरीत है। एक नववधू वर्षा ऋतु के आगमन पर एक मेघ के द्वारा अनुपस्थित (परदेशी) पति को सन्देश भेजती है। घटकर्पर नाम चतुरता से रखा गया है, क्योंकि कविता के अन्त में लेखक किसी भी ऐसे व्यक्ति को चुनौती देता है जो यमक अलंकार की प्रयोगकला में उनको मात कर दे और पराजित हो जाने पर टूटे घड़े में पानी पहुँचाने का प्रस्ताव रखते हैं। परम्परा घटकर्पर काव्य की चर्चा करती है और विक्रमादित्य की राजसभा में कालिदास का समकालीन बताती है। जैकोबी घटकर्पर को कालिदास का पूर्ववर्ती रखते हैं क्योंकि उनका विचार है कि कवि की गर्वोक्ति कालिदास के उत्तरकालीन समय में न्यायसंगत नहीं हो सकती। कुछ भी हो, इस तर्क में कोई सार नहीं है। घटकर्पर से 21 श्लोकों की एक कविता नीतिसार, जो किसी महत्त्व का ग्रन्थ नहीं है, सम्बद्ध की जाती है और यह कवि के व्यक्तित्व अथवा समय के विषय में कुछ भी सहायता नहीं देती।

7. काव्यसंग्रह एवं स्तोत्र

गोवर्धन की आर्यासप्तशती 'हाल' की सतसई पर आधारित है जो कि ग्राम्य-जीवन विषयक सात सौ श्लोकों का प्रसिद्ध संग्रह है। गोवर्धन स्वयं कहते हैं कि उन्होंने संस्कृत में प्राकृत प्रेमगीत लाने का प्रयास किया है।

कवीन्द्रवचनसमुच्चय, सुभाषितावली और तत्सदृश काव्यसंग्रह एक कवि पाणिनि के बारे में बतलाते हैं और अति बुद्धिमत्तापूर्ण श्लोक प्रस्तुत करते हैं जो विलक्षण कवि प्रतिभा की छाप रखते हैं। इन पाणिनि का प्रसिद्ध वैयाकरण पाणिनि से तादात्म्य स्वीकार करना कठिन है। वाक्कूट, शीला भट्टारिका, विजयांका,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रभुदेवी, सुभद्रा ऐसे नाम है जो गुणी कवि और कवयित्रियों के रूप में प्रकट होते हैं। काव्यसंग्रहों में सुरक्षित प्रकीर्ण श्लोक, श्लाघ्य-गुण, मनोरम काव्यकल्पना एवं इन कलाकारों की सरल प्रसादमय रचना प्रदर्शित करते हैं।

देवताओं के सम्मान में कविता रचने का अभ्यास जो वस्तुतः वैदिक काल में प्रारम्भ हुआ निरन्तर चलता रहा। सुरक्षित स्तोत्रों की संख्या विशाल है किन्तु उनका काव्य गुण उपेक्षणीय है। बाणभट्ट का चण्डीशतक मुख्यतः स्रग्धरा छन्द में 102 श्लोकों का काव्य है जो देवी चण्डी और उनके द्वारा महिषासुर के वध का वर्णन करता है। कविता कष्टसाध्य है और उसमें निष्कपटता का अभाव है। मानतुङ्ग का भक्तामरस्तोत्र जैन साधु वृषभ के सम्मान में है। परम्परा मानतुङ्ग को वाण का समकालीन मानती है। वह योग्य कवि है और अलंकृत काव्य शैली का आचार्य। वृषभ की महानता सर्वत्र दृढ़ता से प्रतिपादित की जाती है और वह बुद्ध, शंकर और पुरुषोत्तम के रूप में प्रार्थित किए जाते हैं। एक अन्य जैन स्तोत्र जिसका यहाँ उल्लेख होना चाहिए सिद्धसेन दिवाकर का कल्याणमन्दिर-स्तोत्र है। बौद्ध स्तोत्र भी प्राप्य हैं। ये अष्टमहाश्रीचैत्यस्तोत्र तथा सुप्रभातस्तोत्र हैं जो एक परम्परा से हर्षवर्धन और दूसरी परम्परा से नैषधीय के रचयिता श्रीहर्ष के वताए जाते हैं। सर्ववर्मित्र ने स्रग्धरास्तोत्र वनाया जो देवी तारा को सम्वोधित है। आनन्दवर्धन का देवीशतक एक कविता है जिसमें अभिव्यक्ति के प्रकार पर अधिक ध्यान दिया गया है और सारतत्त्व की उपेक्षा की गई है। प्रसिद्ध समालोचक आनन्दवर्धन को इस शतक का कोई श्रेय नहीं है। लीलाशुक या विल्वमंगल का कृष्णलीलामृत सरल एवं आकर्षक शैली में लिखे गए 110 श्लोकों का काव्य है। यह काव्य अत्यन्त लोकप्रिय रहा है और कृष्ण गीतिकाव्यों की परम्परा जयदेव के गीतगोविन्द में चरमोत्कर्ष को प्राप्त होती है।

काव्यसग्रह साहित्य के इतिहास के दृष्टिकोण से महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि ये हमारे लिए लेखकों एवं ग्रन्थों के नाम सुरक्षित रखते हैं, जो अन्यथा अज्ञात एवं लुप्त रहते हैं। इस सन्दर्भ में कवीन्द्रवचनसमुच्चय उल्लेखनीय है जो हमारे लिए प्रेम एवं अन्य भावावेश विषयक श्लोक, व्यावहारिक बुद्धिमत्ता तथा नैतिक एवं राजनैतिक सूक्तियों को सुरक्षित रखता है। सभी कवि जिनके श्लोक उद्धृत किए गए हैं 1000 ई० के पहले के हैं। श्रीधरदास का सदुक्तिकर्णामृत और जल्हण (लगभग 1250 ई०) की सुभाषितमुक्तावली रोचक संग्रह हैं। शार्ङ्गधर (1368 ई०) की शार्ङ्गधरपद्धति वल्लभदेव की सुभाषितावली एवं श्रीधर का भी उल्लेख किया जा सकता है।

8. प्राकृत काव्य

संस्कृत गीतिकाव्य के साथ-साथ प्राकृत गीतिकाव्य भी विकसित हुआ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्राकृत गीतिकाव्य अत्यन्त लोकप्रिय हुआ, प्रचुर रूप से विकसित हुआ और अपभ्रंश और अन्य भाषाओं के साथ प्राकृत गीतिकाव्य पल्लवित, पुष्पित हुआ। हाल की सत्तसई (सतसई) इस अनुमान को पुष्ट करती है। राजा हाल की तिथि के बारे में निश्चित होना अति कठिन है। हाल में जो प्राकृत हम पाते हैं वह सम्भवतः 200 ई० में अस्तित्व में आई। यह अश्वघोष और शिलालेखों के प्राकृत से भिन्न हैं, विशेष रूप से व्यञ्जनों के कोमलीकरण में। इसका तात्पर्य यह है कि हाल के सत्तसई में उस प्राकृत काव्य का अभिलेख है जो दूसरी शताब्दी से पाँचवीं शताब्दी में विकसित हुआ। यहाँ प्राकृत काव्य वास्तविक जीवन की घनिष्ठता में संस्कृत काव्य से रोचक वैषम्य प्रस्तुत करता है। ग्रामीण लोग, धरती के पुत्र, कृषक, ग्वाले, उद्यान में खेलती हुई और अनाज पीसती हुई कन्याएँ, बधिक इसके पात्र हैं। सरल दृश्यों में भावुक प्रेम का रोचक वर्णन किया गया है। प्रेम और करुणा, दृश्य और कोमलता सभी यहाँ वर्णित हैं। गार्हस्थ्य प्रेम के सुखद दृश्य भी चित्रित किए गए हैं। कोई भी बौद्धों की थेरगाथा और थेरीगाथाओं का स्मरण कर सकता है, जहाँ भिक्षु और भिक्षुणियाँ अपने वैयक्तिक भावों को व्यक्त करते हैं और प्रकृति की नीरवता और शान्ति का वर्णन करते हैं, जो उससे प्राप्त होती है।

9. नीति काव्य

नैतिक रचनाओं के अंकुर ऋग्वेद में देखे जा सकते हैं और इसका सतत् प्रवाह ब्राह्मण, उपनिषद्, सूत्र और अन्त में महाभारत के विश्वकोष में पाया जा सकता है। इस प्रकार की नैतिक सूक्तियों के संग्रह किए गए हैं और उनके नाम राजनीतिसमुच्चय, चाणक्यनीति, वृद्धचाणक्य इत्यादि रखे गए हैं। ऐसे ग्रन्थों के संकलनकर्ताओं ने कई स्रोतों का उपयोग किया और चाणक्य को इन संकलनों से किसी प्रकार सम्बद्ध मानना असंगत स्वीकार किया है। इस संकलन का भोजराज द्वारा किया गया संस्करण शारदा लिपि में सुरक्षित है और इसके आठ अध्यायों में 576 श्लोक हैं। श्लोक प्रमुख छन्द है, यद्यपि इन्द्रवज्रा, वंशस्थ, और शार्दूला-विक्रीडित भी दिखाई पड़ते हैं। इस श्रेणी के ग्रन्थ—नीतिरत्न, नीतिसार और नीतिप्रदीप क्रमशः वररुचि, घटकर्पर, और वेतालभट्ट के बताए जाते हैं। कुसुमदेव का दृष्टान्तशतक रोचक है क्योंकि इसमें प्रत्येक सूक्ति का दृष्टान्त दिया गया है, जिससे इसका नामकरण है।

10. उपदेशपरक काव्य

उपदेशात्मक काव्य का नीति काव्य से निकट सम्बन्ध है। इसका स्पष्ट लक्ष्य शिक्षा देना है और उपदेशात्मक रूप को छिपाना नहीं है। शंकर जैसे प्रतिभाशाली कवि गीतिमत्ता को शिक्षा से संयुक्त कर सकते हैं, उदाहरण के लिए भव्य

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मोहद्गर में। दामोदर का (779-813 ई०) का कुट्टनीमत एक व्यङ्ग्यात्मक ग्रन्थ है जो पाठक को सांसारिक नीति में शिक्षित करना चाहता है। क्षेमेन्द्र के ग्रन्थ, समयमातृका, कलाविलास, दर्पदलन, सेव्यसेवकोपदेश, चतुर्वर्गसंग्रह, चारचर्याशतक सभी रोचक ग्रन्थ हैं, क्योंकि इनमें हम हास्यात्मक एवं व्यङ्ग्यात्मक रूप से समकालीन जीवन के भव्य चित्र पाते हैं। यहाँ वह वैद्य, जो जीवनलीला समाप्त कर देता है, स्वर्णकार जो धूल झोंकता है, ज्योतिषी जो ग्राहक की मनोकामना की भविष्यवाणी करता है और विलक्षण औषधियों के विक्रेता प्रकट होते हैं। क्षेमेन्द्र के हास्य और व्यङ्ग्य में एक आकर्षक आधुनिकता है। क्षेमेन्द्र कदाचित अकेले लेखक है जिन्होंने हमें हास्य, व्यङ्ग, वाग्वैदग्ध्य, बुद्धिमत्ता सभी एक साथ प्रदान किए हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

III. 7 नाटक

संस्कृत नाटक के उद्गम को समझाने के लिए विविध सिद्धान्त प्रतिपादित किए गए हैं। पिशेल के अनुसार कठपुतलियों का खेल इसका मूल स्रोत है, जबकि विण्डिश नाटक को यूनान देशीय मूलकता प्रदान करते हैं। रिजवे संस्कृत नाटक की उत्पत्ति धार्मिक नृत्यों में देखते हैं और भरत विशुद्ध पौराणिक विवरण देते हैं। इस विषय पर निश्चित होना कठिन होगा, किन्तु संस्कृत नाटक को नृत्य का विकास मानना, जो मनुष्य के लिए स्वाभाविक है, पूर्णतया तर्कसम्मत होगा। इस विषय में बाह्य प्रभावों की खोज करना व्यर्थ है। भरत का विवरण पौराणिक हो सकता है, किन्तु उनका यह कथन कि पाठ (संवाद, कथोपकथन) ऋग्वेद से लिया गया, अभिनय यजुर्वेद से लिया गया, संगीत सामवेद से लिया गया तथा रस अथर्ववेद से लिया गया, प्रामाणिक और विशुद्ध परम्परा को जीवित रखता है। यह भी सर्वथा सम्भव है कि नाटक ऋग्वेद के संवाद-सूक्तों से और महाव्रत सदृश कर्मकाण्डी अनुष्ठानों से विकसित किया गया हो। जवनिका, शकार सदृश महत्त्व-पूर्ण शब्दों के थोथे प्रमाणों पर आधारित मत विश्वसनीय नहीं हैं। संस्कृत नाटकों की उत्पत्ति देशीय है।

1. शारिपुत्रप्रकरण

अश्वघोष प्रथम नाटककार हैं जो हमारे समक्ष आते हैं, किन्तु दुर्भाग्यवश उनके नाटक हमारे सामने नहीं हैं। शारिपुत्रप्रकरण (अथवा शारद्वतीपुत्र) नौ अंकों का एक नाटक है जो तालपत्रों पर खण्डशः मध्य एशिया से प्राप्त हुआ है। ल्यूडर्स ने कुछ उद्धरणों का जीर्णोद्धार किया है। पुष्पिका में स्पष्ट रूप से ग्रन्थ और लेखक के नाम लिखे हैं। कथा में शारिपुत्र और मोग्गलायन का बुद्ध द्वारा धर्म-परिवर्तन विषयक उल्लेख है, किन्तु पाण्डुलिपि के आंशिक होने के कारण अश्वघोष के कथानकमूलक कौशल के बारे में कहना कठिन है। कुछ भी हो, विदूषक का प्राकृत-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रयोग, नाटक का अंकों में विभाजन एवं शालिनी, मालिनी, शिखरिणी, हरिणी और सुवदना सदृश छन्दों का प्रयोग संस्कृत नाटक के प्रविधि का विकास एवं प्रयोग सूचित करते हैं। इस नाटक के साथ दो अन्य नाटकों के खण्डित अंश प्राप्त हुए हैं—एक प्रतीकात्मक और दूसरा सामाजिक नाटक। अश्वघोष को इनका लेखक मानना अति कठिन है। सामाजिक नाटक में सोमदत्त और बौद्ध धर्म स्वीकार करने वाली गणिका मगधवती की प्रेम-कथा का वर्णन है—दूसरे पात्र हैं, एक राजकुमार, विदूषक और एक धूर्त (खल)। प्रतीक पात्र के रूप में कीर्ति, धृति, बुद्धि, सदृश पात्र आते हैं और बुद्ध भी प्रकट होते हैं। कथावस्तु के कारण ये अश्वघोष के माने जाते हैं। अश्वघोष के गुण हैं साहित्यिक अलंकारों के प्रयोग में सरलता एवं संयम। वह हमें बहुधा कालिदास की याद दिलाते हैं।

2. भास-नाटक

1912-1915 ई० के बीच में टी० गणपति शास्त्री ने त्रिवेन्द्रम से 13 नाटक प्रकाशित किए और उन्हें भासकृत बताया। इस समय तक भास केवल एक समाहृत नाम था जो कालिदास और अन्य कवियों के द्वारा, काव्यसंग्रहों में दी गई प्रशस्तियों से ज्ञात था। त्रिवेन्द्रम के 13 नाटक तीन वर्गों में विभाजित किए जा सकते हैं: कुछ रामायण के नाटक हैं—प्रतिमा और अभिषेक जो रामायण की पूरी कथा को नाटकीय रूप देते हैं। महाभारत के नाटक हैं—मध्यमव्यायोग, दूतवाक्य, दूतघटोत्कच, कर्णभार, ऊरुभङ्ग और पञ्चरात्र। इन सबमें महाभारत की घटनाओं का वर्णन है। मध्यमव्यायोग एक हास्यपूर्ण नाटक है जिसमें भीम, हिडिम्बा और घटोत्कच से सम्बद्ध घटनाओं का वर्णन है। दूतवाक्य में कृष्ण भगवान् के शान्ति-प्रयत्नों का उल्लेख है। दूतघटोत्कच में अभिमन्यु की दुःखद मृत्यु और घटोत्कच से सम्बद्ध घटनाओं का उल्लेख है। पञ्चरात्र में पाँच रात के अन्दर पाण्डवों को ढूंढ़ निकालने के लिए दुर्योधन के प्रयत्नों का वर्णन है। कर्णभार में रणक्षेत्र में कर्ण के मस्तिष्क पर मनोवैज्ञानिक दबाव का वर्णन है। ऊरुभङ्ग में चकनाचूर जाँघवाले दुर्योधन के अपने माता-पिता से अन्तिम समय मिलने का वर्णन है। विद्वानों का विश्वास है कि लेखक सम्पूर्ण महाभारत को नाटकीय रूप प्रदान करना चाहता था और यहाँ पर महाभारत के नाटकों का चक्र है। तीसरा वर्ग पुराणगाथाओं पर अथवा नवाविष्कृत कथावस्तुओं पर आधारित नाटकों का है। स्वप्नवासवदत्तम् और प्रतिज्ञायौगन्धरायण में चतुर मन्त्री यौगन्धरायण द्वारा राजा उदयन के हारे हुए राज्यांश को पुनः प्राप्त करने के लिए किए गए उपायों का वर्णन है। बालचरित्र में कृष्ण-गाथा का वर्णन है। अविमारक और चारुदत्त कल्पित कथावस्तु वाले नाटक हैं जिनमें सामाजिक प्रसंग हैं। अविमारक में साधारण स्थान में रहने वाले एक सिंहासनच्युत राजकुमार और राजकुमारी की प्रेमकथा है,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जबकि चारुदत्त में एक ब्राह्मण व्यापारी, जो उदारता के कारण निर्धन हो गया है, और उसके गुणों पर आसक्त एक गणिका की प्रेमकथा है। नाटक अपूर्ण है और शूद्रक के प्रसिद्ध नाटक मृच्छकटिक से अनिवार्य रूप से सम्बद्ध है।

इन सब नाटकों से स्पष्ट है कि लेखक में बहुकृतित्व है और वह कथावस्तु-संरचना एवं चरित्र-चित्रण में अत्यन्त कुशल है। यह मानना सम्भव है कि महाभारत के नाटक मध्यम श्रेणी के हैं किन्तु यह निर्णय मध्यमव्यायोग, कर्णभार और ऊरुभङ्ग के प्रसंग में पूर्णतया सत्य न होगा। मध्यमव्यायोग भ्रान्तियों का हर्षदायक सुखान्त नाटक है और कदाचित् हमारे समक्ष नाटक-साहित्य में अपने प्रकार का अद्वितीय नाटक है। लेखक कर्णभार और ऊरुभङ्ग में दुःखान्त घटना से सम्बन्ध रखता है। इन संक्षिप्त नाटकों में लेखक अपने सर्वोत्कृष्ट रूप में है और कोमल, व्यंजनापूर्ण एवं प्रभावशाली है। ऊरुभङ्ग नाट्यशास्त्र के नियमों का उल्लंघन करता है और नाटककार के कथावस्तु, मूलक, कौशल एवं प्रागल्भ्य का प्रमाण है। चरित्रों के निर्माण में भी लेखक की प्रगल्भता देखी जा सकती है क्योंकि उसका कर्ण महाभारत के कर्ण से अधिक मानव है और उसका दुर्योधन महाभारत के दुर्योधन से अधिक गौरवशाली है। रामायण के नाटकों में भी, कैकेयी परम्परागत कैकेयी नहीं है। बालचरित उत्तेजक घटनाओं का सूत्र है और इस नाटक में नाटकीय एकता का अभाव है। किन्तु, लेखक का यश इन नाटकों पर उतना आधारित नहीं है जितना कि अनिन्द्य सौन्दर्यवाले स्वप्नवासवदत्तम् पर आश्रित है। राजा उदयन, वासवदत्ता और पद्मावती का चित्रण अत्यन्त स्पष्ट रीति से किया गया है और प्रेम का वर्णन, अभिव्यक्ति एवं गहनता गरिमामय एवं सूक्ष्म हैं। राजशेखर यह उल्लेख करते हैं कि भास नाटकचक्र में स्वप्नवासवदत्तम् नाटक अग्निपरीक्षा में सफल रहा।

ये सब नाटक सूक्ष्म हास्य एवं सुखद, विचारोत्तेजक नाटकीय विडम्बना प्रदर्शित करते हैं। उनमें प्रचुर कल्पनाशक्ति है और उनके कथानक शीघ्रता से चलते हैं। नाटककार परिचित कथाओं को परिवर्तित करने में नहीं चूकते और वे नए लाए गए परिवर्तन, कलात्मक प्रवृत्ति, रुचि और संस्कृति के सूचक हैं। शैली और शब्दचयन स्पष्ट और शक्तिशाली हैं। इन सभी नाटकों के लेखक की महत्ता के बारे में कोई सन्देह नहीं हो सकता। ये सब नाटक निःसन्देह केवल एक ही लेखक द्वारा प्रणीत हैं, जैसा कि घटनाओं, विचारों, पदावली और प्रविधि से स्पष्ट है। इस प्रश्न पर कि यह लेखक कौन है विद्वानों के भिन्न मत हैं। चूँकि ये सब नाटक एक समरूप वर्ग बनाते हैं, जो अनुमानतः एक ही लेखक द्वारा लिखे गए हैं और चूँकि परम्परा से अवगत भास द्वारा प्रणीत स्वप्नवासवदत्तम् है, यह निष्कर्ष निकलता है कि ये सब नाटक भास द्वारा ही लिखे गए हैं। किन्तु विषय उतना सरल नहीं है। विभिन्न ग्रन्थों में स्वप्नवासवदत्तम् से उद्धरण लिए गए हैं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

और त्रिवेन्द्रम की स्वप्नवासवदत्तम् में ये उद्धरण उपलब्ध नहीं होते। अतः यह नाटक वह मूल रूप नहीं है जैसा भास ने लिखा था और परिणामतः नाटक भास के नहीं हो सकते। चारुदत्त इस समस्या को मृच्छकटिक से सम्बद्ध होने के कारण अधिक जटिल बना देता है। चारूदत्त अपूर्ण है और चौथे अंक तक ही प्राप्य है। किन्तु ये चार अंक मृच्छकटिक के प्रथमार्ध भाग से विशिष्ट रूप से मिलते-जुलते हैं। यह विश्वास करने के लिए तर्क है कि चारुदत्त का उत्तर भाग अपरिष्कृत है जब कि मृच्छकटिक परिष्कृत है। समस्या अब यह बन जाती है कि क्या चारूदत्त मृच्छकटिक का संक्षेप है अथवा मृच्छकटिक चारुदत्त का परिवर्धन है। किसी भी रूप से, त्रिवेन्द्रम के नाटक मंच पर प्रदर्शन हेतु लघु प्रतीत होते हैं और केरल के चक्यार इन संक्षेपों के विधायक रहे होंगे। हमारे ज्ञान की वर्तमान स्थिति में यही मानना ठीक होगा कि ये नाटक भासकृत माने जा सकते हैं। नाटकों का अपरिष्कार, व्याकरण की अशुद्धियाँ, नाट्यकला के नियमों का उल्लंघन, एवं महाकाव्यों के पात्रों एवं घटनाओं में किए गए परिवर्तन सूचित करते हैं कि भास महाकाव्यों और भरत के प्रामाणिक होने के पहले प्राचीन काल के लेखक रहे होंगे।

3. मृच्छकटिक

शूद्रक का मृच्छकटिक एक अद्वितीय नाटक है। नाटक में उज्जैन के एक व्यापारी चारुदत्त, जो अति उदारता के कारण निर्धन हो जाता है और एक गणिका वसन्तसेना, जो बजाय धन के गुण के पीछे आकृष्ट हो जाने का निर्णय लेती है, की रोमाञ्चकारी प्रेमकथा है। राजा के श्याल शकार को वसन्तसेना से प्रेमासक्त करके विरोध का तत्त्व लाया जाता है। वसन्तसेना इस प्रेम को ठुकरा देती है। शकार अपने मित्रों के साथ उज्जैन के प्रमुख मार्ग पर वसन्तसेना का पीछा करता है, और वसन्तसेना चारुदत्त के मकान पर पहुँचती है। प्रेमी मिलते हैं और वसन्तसेना चारुदत्त के पास अपने आभूषण रखकर उस स्थान से निकल जाती है और स्पष्टतः दूसरे आगमन के लिए बहाना बना देती है। आर्यक का मित्र शर्विलक वसन्तसेना की दासी मदनिका पर प्रेमासक्त हो जाता है। वह वसन्तसेना से उसकी स्वतन्त्रता खरीदना चाहता है और इस उद्देश्य से चारुदत्त के मकान में चोरी करके धन प्राप्त करने का प्रयत्न करता है। वह वसन्तसेना के आभूषण चुराता है और मदनिका से यह जानकर व्याकुल होता है कि वे वसन्तसेना के आभूषण हैं। वसन्तसेना ने उनके वार्तालाप को सुन लिया है, जो कुछ घटित हुआ है वह सब जान जाती है और आभूषणों को स्वीकार करती है। चारुदत्त चुराए गए आभूषणों की क्षतिपूर्ति के रूप में अपनी पत्नी का हार इन शब्दों के साथ भेजता है कि उसने उन्हें द्यूत में खो दिया। वसन्तसेना उसकी सज्जनता से भावार्द्र होकर वर्षा में उससे मिलने जाती है। एक रात वहाँ रुकती

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

है और उद्यान को प्रस्थान करने के पूर्व, जहाँ उसे चारुदत्त से प्रातःकाल मिलना है, चारुदत्त के पुत्र को जो मिट्टी की गाड़ी के लिए क्रन्दन करता है, अपने आभूषण दे देती है। दुर्भाग्यवश रथों के बदल जाने (दूसरे रथ में बैठ जाने) से वसन्तसेना शकार के पास पहुँच जाती है और आर्यक, जो कारागार से भाग निकला है, चारुदत्त के पास पहुँच जाता है। आर्यक भाग निकलता है और शकार वसन्त सेना का गला घोंट देता है। आभूषण हेतु वसन्तसेना की हत्या का अपराध शकार चारुदत्त पर लगाता है। चारुदत्त के मित्र मैत्रेय से न्यायालय में गिरे हुए आभूषणों से आरोप सिद्ध हो जाने पर चारुदत्त को मृत्यु-दण्ड की सजा दी जाती है। एक भिक्षु द्वारा बचाई गई वसन्तसेना ठीक समय पर पहुँचती है और चारुदत्त के जीवन की रक्षा करती है। आर्यक पालक का वध करता है और सब कुछ सानन्द समाप्त होता है। चारूदत्त के पुत्र के पास मिट्टी की गाड़ी है और वह सोने की गाड़ी के लिए क्रन्दन करता है। वसन्तसेना बालक को प्रसन्न करने के लिए अपने आभूषण प्रदान कर देती है। इस प्रकार मिट्टी की गाड़ी से जटिलताएँ उत्पन्न होती हैं। अतएव नाटक के नामकरण का यही कारण है। यह रोमाञ्चक कथा क्रान्ति-विषयक काव्यमय पृष्ठभूमि उपस्थित करती है। राजा पालक अत्याचारी शासक है और आर्यक के नेतृत्व में, जो शर्विलक तथा दूसरों से सहायता प्राप्त करता है, एक लोकप्रिय आन्दोलन के द्वारा हटा दिया जाता है। दो कथाएँ विलक्षण कौशल से अन्तर्ग्रथित हैं जो संस्कृत नाट्य साहित्य के सम्पूर्ण क्षेत्र में अनुपम हैं। शूद्रक के पात्र संसार के नागरिक हैं जो कहीं भी पाए जा सकते हैं। कालिदास और भवभूति विशिष्ट प्रकार के भारतीय हैं और इस दृष्टिकोण से शूद्रक का प्रभाव अधिक विस्तृत एवं व्यापक था। उसकी वसन्तसेना, मदनिका, धूता स्नेह करने योग्य पात्र हैं और वैसे ही मैत्रेय और विदूषक। शूद्रक की नाटकीय प्रतिभा शकार के पात्र निर्माण में देखी जा सकती है जिसमें मूर्खता और शठता का सम्मिश्रण है। शकार हृदय से इतना अधिक दुष्ट है कि वह वसन्तसेना का गला घोटने के बाद कमल सरोवर में क्रीडा करने की बात सोच सकता है। न्यायालय के दृश्य में उसका राजकीय सम्बन्धों से उत्पन्न अंहकार निपुणता से दिखलाया जाता है। वह हास्य का साधन भी बनाया जाता है, क्योंकि शूद्रक ने उसे अपनी भाषा और पुराण-गाथा प्रदान की है। उसके द्वारा महाकाव्य और ऐतिहासिक घटनाओं का उल्लेख वास्तविक हास्य की प्रचुर मात्रा उत्पन्न करता हैं। मृच्छकटिक का कथानक अति-कौशल से ग्रंथित है और कार्य द्रुतवेग से आगे बढ़ता है। यहाँ शेक्सपियर के समान कमाल प्रदर्शित किया गया है। श्लोक सरल और परिष्कृत हैं तथा संवाद अतिचातुर्यपूर्ण एवं यथार्थवादी हैं। मृच्छकटिक सारे संसार में लोकप्रिय है और संसार की तेरह भाषाओं में अनूदित हैं। किसी भी मापदण्ड से यह महान् नाटक है। प्रस्तावना प्रक्षेप प्रतीत होती है क्योंकि यह लेखक की मृत्यु सूचित करती है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

निस्सन्देह नाटककारों में शूद्रक, कालिदास और भवभूति के पार्श्व में अपना स्थान ग्रहण करते हैं जिसके लिए वे सर्वथा योग्य हैं।

4. मालविकाग्निमित्र

कालिदासकृत इस नाटक में शुङ्ग राजा अग्निमित्र का दासी के छद्मवेश में स्थित विदर्भ राजकुमारी मालविका के प्रति प्रेम का वर्णन है। प्रेम का मार्ग निष्कपट नहीं है और दो रानियाँ धारिणी और इरावती को लाने से विरोध का तत्त्व भी रखा गया है। दोनों रानियाँ प्रेम-प्रसंग के विकास को रोकने का प्रयत्न करती हैं किन्तु विदूषक अपनी युक्तियों से राजा को अपना हठ पूरा करने देता है। अन्त में रानियाँ हार मान लेती हैं, मालविका का वास्तविक पद ज्ञात होता है और उसका विवाह राजा से हो जाता है। राजा अग्निमित्र का एक पुत्र है जो शत्रु के विरुद्ध युद्ध में उसकी सेना का नेतृत्व करता है। राजा अग्निमित्र और मालविका की आयु का वैषम्य, उसके बड़ी आयु के पुत्र का होना, और विदूषक का प्रेम-प्रसंग में पूर्ण उपक्रमण सौंप देना नाटक को अधिक हृदयग्राही नहीं बनाते। दोनों रानियों द्वारा किए गए विरोध की स्थिति और इरावती का रुक्ष व्यवहार भी इसमें जुड़ जाते हैं। श्लोक परिष्कृत रूप से रचित हैं और संवाद सजीव हैं। नायक एवं नायिका द्वारा कोई उपक्रमण नहीं होता और पूरा नाटक किसी बड़ी ऊँचाई तक नहीं उठता। विदूषक द्वारा संचालित नाटक धूर्त प्रवंचनाओं की अपेक्षा और अधिक सफल नहीं हो सकता था। कालिदास का परिष्कार तब भी स्पष्टतः वहाँ है। इन सबसे हमारा यह विश्वास होता है कि मालविकाग्निमित्र कालिदास का प्रथम नाटक था जिसमें आगामी महत्तर घटनाओं के अंकुर विद्यमान हैं।

5. विक्रमोर्वशीय

विक्रमोर्वशीय नाटक में राजा पुरूरवा और अप्सरा उर्वशी की प्रेमकथा का वर्णन है। कथावस्तु पुरूरवा और उर्वशी के ऋग्वेदीय संवाद-सूक्त से प्राप्त होती है और यह कथा ब्राह्मणों में भी वर्णित है। परम्परा से प्राप्त कथानक का कालिदास ने कौशलपूर्वक निर्वाह किया है और यह नाटक मालविकाग्निमित्र से संरचना और चरित्र-चित्रण में प्रकृष्टतर उपलब्धि प्रदर्शित करता है। मालविकाग्निमित्र एक नाटिका है जबकि विक्रमोर्वशीय एक त्रोटक है जिसमें नायक मानवीय होता है और नायिका दिव्य अथवा अर्ध-दिव्य होती है। अभिनवगुप्त इस प्रकार के दिव्य या अर्धदिव्य पात्रों वाले कथानकों में दोष निकालते हैं क्योंकि उनके सुख-दुःख का हमारे लिए कोई महत्त्व नहीं है। कथानक गरिमामय एवं रोमांचक वातावरण में चलता है और सभी पात्रों में—राजा पुरूरवा, रानी और उर्वशी में स्वीय गरिमा है। उर्वशी और उसकी सहचरी कुशल वाग्वैदग्ध्य वाली

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सखियाँ हैं जो हमें गुदगुदाती हैं। शापजन्य वियोग का प्रयोग किया गया है परन्तु अन्त सुखद है। चौथा अंक स्मरणीय है, जहाँ पुरूरवा उर्वशी को, जो एक अभिशप्त वन में प्रवेश करते ही लता में परिणत हो गई है, ढूंढ़ने का प्रयत्न करता है। यह दृश्य हमें रामायण की याद दिलाता है, जहाँ राम सीता को ढूँढ़ने का प्रयास करते हैं। इस दृश्य में पर्याप्त गीत, नृत्य और संगीत हैं और अनेक सुन्दर श्लोक हैं जिन्होंने कालिदास के प्रेमियों की कई पीढियों को आकर्षित किया है। इस प्रकार की चुनी हुई कथावस्तु से कालिदास उस मर्मस्पर्शी प्रेम और वियोग-दुःख का चित्रण नहीं कर सकते थे जैसा उन्होंने अपने अन्तिम और सर्वश्रेष्ट नाटक अभिज्ञान-शाकुन्तल में किया।

6. अभिज्ञानशाकुन्तल

यह कालिदास का अमर नाटक है जिसने पूर्व एवं पश्चिम में लोगों के मन को मन्त्रमुग्ध कर दिया है। कालिदास कथावस्तु के विकास, चरित्र-चित्रण तथा भाव-व्यञ्जना में सर्वोत्कृष्ट हैं। कथानक के विकास में कालिदास ने यथासंभव विदूषक को दूर रखने का प्रयत्न किया है और उसे केवल परम्परा निभाने के लिए ही प्रविष्ट किया है। पुरुवंशीय राजा दुष्यन्त शकुन्तला के प्रेम में मोहित होकर उससे गान्धर्व विवाह कर लेते हैं। शकुन्तला मेनका और विश्वामित्र की पुत्री है, किन्तु माता-पिता से परित्यक्त हो जाने पर वह कण्व द्वारा उन्हीं के आश्रम में पालित होती है जहाँ प्रकृति के वातावरण से उसका तादात्म्य स्थापित हो गया है। परिणामस्वरूप शकुन्तला में मेनका के सौन्दर्य, विश्वामित्र की कामवासना के मनोविकार और प्रकृति की सरलता एवं पवित्रता का अपूर्व संमिश्रण लक्षित होता है। राजा दुष्यन्त मूर्तिमान गरिमा हैं और पुत्रहीन हैं। इस प्रकार वहाँ उसे प्रेम-प्रसंग पर कोई नैतिक आपत्ति नहीं हो सकती थी। जिस समय दुष्यन्त आश्रम में प्रवेश करते हैं और शकुन्तला से मिलते हैं, कण्व शकुन्तला के अनिष्ट ग्रहों की शान्ति के लिए बाहर गए हुए थे। इस कारण शकुन्तला का प्रेम अंकुरित होता है और उनकी अनुपस्थिति में ही परिपक्व होता है। दुष्यन्त शकुन्तला को अपनी अभिज्ञान मुद्रिका देकर लौट जाते हैं। उसी समय क्रोधी और उद्दण्ड दुर्वासा ऋषि आते हैं। दुष्यन्त के ध्यान में मग्न गर्भवती शकुन्तला उनका आतिथ्य सत्कार नहीं करती। ऋषि उसे शाप देते हैं कि वह पुरुष जिसका वह ध्यान कर रही है उसे भूल जाएगा। शकुन्तला की सखियों द्वारा प्रार्थना करने पर दुर्वासा शान्त होकर कह देते हैं कि अभिज्ञान चिह्न दिखाने पर वह शाप से मुक्त हो जाएगी। कण्व लौटने पर घटनाचक्र जान लेते हैं और शकुन्तला को राजदरबार में भेज देते हैं। हस्तिनापुर जाने के मार्ग में शकुन्तला मुद्रिका को एक सरोवर में खो देती है। दुर्वासा के शाप के कारण शकुन्तला दुष्यन्त के द्वारा अस्वीकृत होती है और मेनका उसे ऊपर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उठा ले जाती है। मुद्रिका पुनः प्राप्त होती है और राजा के पास लाई जाती है। उसे देखते ही राजा को शकुन्तला की याद आ जाती है। तत्पश्चात् राजा के हृदय में वियोग-वेदना उमड़ती है। इन्द्र राजा को एक दैत्य के विरुद्ध युद्ध करने के लिए आमन्त्रित करते हैं और लौटते समय राजा दुष्यन्त मारीच के आश्रम में विश्राम के लिए ठहरते हैं जहाँ सुखद आश्चर्य उनके लिए संचित है। वे अपने पुत्र भरत से मिलते हैं तथा उनका शकुन्तला से पुनर्मिलन होता है और नाटक की सुखद समाप्ति होती है।

नाटक निर्बाध रूप से और प्रचुर कोमलता से प्रगति करता है। सभी श्लोक साधिकार रूप से रचित हैं और उनमें से अनेक सुभाषित बन गए हैं।

सुन्दर एवं साहित्यिक अलंकारों से परिपूर्ण संवाद हैं। प्रकृति को एक व्यक्तित्व प्रदान किया गया है और वह नाटक में एक पात्र है। एक मानव प्राणी के कार्य-कलाप का मनुष्य की स्नेहमयी माता प्रकृति से इतना सामंजस्यपूर्ण सुखद सम्बन्ध कहीं अन्यत्र नहीं मिलता। कहानी महाभारत से ली गई है किन्तु महाकाव्य के अत्यन्त व्यावहारिक पात्र कवि की प्रतिभा से आदर्श रोमांचक प्रेमियों में परिणत कर दिए गए हैं। दुर्वासा के शाप का समावेश कहानी को सर्वथा विभिन्न ऊंचाइयों पर उठा देता है, क्योंकि तब कथा निरपराध की यातनाओं के चित्रण का स्वरूप धारण कर लेती है और गहराई में बैठती है। भारतीय समालोचकों की पीढ़ियों ने नाटक के चतुर्थ अंक को नाटक साहित्य में सर्वश्रेष्ठ माना है क्योंकि यह वधू के गृह-परित्याग का चित्रण करता है। वास्तविक रूप में यह बतलाना कठिन होगा कि कौन अंक सर्वश्रेष्ठ है, प्रथम, पंचम, अथवा सप्तम, क्योंकि नाटककार आद्योपान्त एक रूप से उत्कृष्ट है। अतः यह आश्चर्यजनक नहीं है कि हम सर विलियम जोन्स, गेटे, राइडर, टैगोर और अन्य सभी साहित्य प्रेमियों को महान् नाटक की उच्चतम प्रशंसा करते हुए पाते हैं।

7. चतुर्भाणी

उभयाभिसारिका, पद्मप्राभृतक, धूर्तविटसंवाद एवं पादताडितक, जो क्रमशः वररुचि, शूद्रक, ईश्वरदत्त और समिलक द्वारा रचित बताए जाते हैं, चार एकांकी एकालाप भाणों का संग्रह हैं और चतुर्भाणी के नाम से प्रसिद्ध हैं। यह संदिग्ध है कि उक्त शूद्रक वही मृच्छकटिक के रचयिता शूद्रक हैं या कोई अन्य। अभिनवगुप्त, कुन्तक और क्षेमेन्द्र पादताडितक का उल्लेख करते हैं और पद्मप्राभृतक एवं धूर्तविट संवाद का उल्लेख हेमचन्द्र अपने काव्यानुशासन में करते हैं। उभयाभिसारिक के सम्बन्ध में कहीं भी उल्लेख नहीं मिलता। ये नाटक प्राचीनकाल के प्रतीत होते हैं और टामस उनके सामान्य वातावरण, पात्र, कथावस्तु एवं शैली के आधार पर उनको उत्तरकालीन गुप्तों के या कन्नौज के राजा हर्ष के समय के

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बतलाते हैं। विट इन सभी नाटकों में प्रमुख पात्र हैं, ठीक नायक नहीं, यद्यपि वह अपनी वार्ता से विभिन्न पात्रों और उन प्रेम-प्रसंगों पर प्रकाश डालता है। गणिकाएँ, शठ, जीर्णांग, मूर्ख, ब्राह्मण तथा बौद्ध भिक्षु आदि सभी पर टीका-टिप्पणी की जाती है। मुख्य स्थिति सदा हास्यपूर्ण एवं व्यंग्यपूर्ण रहती है। दृश्य सदा उज्जयिनी या कुसुमपुर सदृश नगरों में रखे जाते हैं। भाण का कथानक सदा तुच्छ होता है और विट नायक या नायिका की ओर से दूसरे वर्ग के प्रति किसी दूत-कार्य पर रहता है। प्रहसनात्मक व्यंग्यचित्र देने के लिए और सामाजिक व्यंग्य उत्पन्न करने के लिए भाण के रूप को प्रयोग करने की एक निश्चित प्रवृत्ति है। संस्कृत गद्य में प्रयुक्त भाषा लालित्यपूर्ण है और पद्यों में प्रयुक्त भाषा सरल है। वे रुचि को विकृत नहीं करते। बाद के भाण अश्लीलता में विकृत हो जाते हैं और बहुधा बिना किसी महत्त्व के हैं। चतुर्भाणी गुण, अभिप्राय और अभिव्यक्ति में उत्तरकालीन भाणों से तीव्र विरोध प्रस्तुत करती है। चतुर्भाणी का यथार्थवाद भी उत्तरकालीन भाणों के रूढ़िवाद का तीव्र विरोध प्रस्तुत करता है।

8. मत्तविलास

पल्लव राजवंश के राजा महेन्द्रविक्रम वर्मन् द्वारा रचित मत्तविलास एक प्रहसन है। महेन्द्रविक्रम वर्मन् 620 ई० के लगभग कांची में शासन करता था। शिलालेखों में महेन्द्र वर्मन् और उसके ग्रन्थ मत्तविलास का उल्लेख है। उसकी उपाधियाँ हैं—गुणाभार, अवनिभाजन, मत्तविलास और शत्रुभत्त जिसके वर्णन इस नाटक में भी मिलते हैं।

नाटक एक मदिरामत्त शैव साधु के साहसिक कार्यों का सजीव वर्णन करता है। वह एक कपाली है जो खोए हुए भिक्षापात्र के स्थान पर मानव कपाल लिए हुए हैं। वह बौद्ध भिक्षु से कलह करता है जिसको वह भिक्षापात्र चुराने वाला समझता है। उसके बाद वह एक भ्रष्ट पाशुपत से मिलता है और अन्त में वह कटोरा उसे एक पागल व्यक्ति से प्राप्त होता है जिसने उसे एक श्वान से छीना था। साहित्यिक गुण निश्चित रूप से उच्च स्तर के नहीं हैं। भाषा सरल और सपाट है। कथावस्तु निम्न कोटि की है और लेखक का मुख्य उद्देश्य एक व्यापक एवं तीक्ष्ण व्यंग्य प्रस्तुत करना है। प्रहसन रोचक है, क्योंकि यह उत्तरकालीन प्रहसनों से भिन्न है जो अभद्रता का अधिक और कौशल का कम दर्शन करते हैं।

9. कुन्दमाला

कुन्दमाला के लेखक के बारे में विद्वानों में विभिन्न मत हैं। उनका नाम

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दिङ्नाग दिया गया है, जो कुछ विद्वानों के अनुसार प्रसिद्ध बौद्ध तार्किक थे। अन्य विद्वान् उसका नाम घोरनाग मानते हैं, जबकि डा० पुसालकर और अय्यर जैसे कुछ दूसरे विद्वान् इसे वीरनाग मानते हैं। वस्तुतः लेखक के नाम और काल के बारे में निश्चित रूप से कुछ भी कहना कठिन होगा। यदि लेखक बौद्ध तार्किक दिङ्नाग ही है, तो वह सम्भवतः कालिदास का समकालीन होगा, क्योंकि वे उसकी ओर मेघदूत में संकेत करते प्रतीत होते हैं। नाटक के अन्तःसाक्ष्य के आधार पर ऐसा प्रतीत होता है कि नाटककार दक्षिण भारत और श्रीलंका से परिचित था। कुन्दमाला एक अति सुन्दर नाटक है जिसमें संरचना और पद-विन्यास की आकर्षक सरलता है। कथानक रामायण की कहानी पर आश्रित है और नाटक अपना नाम पुष्पों की माला से प्राप्त करता है जो अभिज्ञान के प्रतीक के रूप में नाटक में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। दिङ्नाग ने राम और सीता को अत्यन्त प्रभावशाली रीति से प्रस्तुत किया है और यह तथ्य इसकी भवभूति के उत्तररामचरित से तुलना करने के लिए प्रेरित करता है; क्योंकि दोनों नाटकों में समान कथावस्तु का वर्णन है। यहाँ वाल्मीकि और सीता का मिलन उल्लेखनीय है, जहाँ नाटककार अत्यन्त प्रभावशाली है। नाटक में अनेक स्थल हैं जो हमें कालिदास, भवभूति और वाणभट्ट की याद दिलाते हैं।

10. वेणीसंहार

इस नाटक के लेखक भट्टनारायण हैं। वे 800 ई० के पहले अवश्य हुए होंगे, क्योंकि वामन, आनन्दवर्धन और धनञ्जय नाटक से उद्धरण देते हैं। प्रस्तावना में उल्लेख है कि लेखक का दूसरा नाम या उपाधि मृगराजलक्ष्मण थी। बंगाल में प्रचलित पौराणिक किंवदन्ती से सूचना प्राप्त होती है कि भट्टनारायण बंगाल के राजा आदिशूर द्वारा आमन्त्रित पाँच कान्यकुब्ज ब्राह्मणों में से एक थे। विद्वानों का मत है कि वे पाञ्चरात्र मतानुयायी होंगे, क्योंकि नाटक में वैष्णव सिद्धान्तों का उल्लेख है। यह कहना अतिशयोक्ति होगी कि चार्वाक पात्र के माध्यम से जो कि नाटक में एक राक्षस है, भट्टनारायण चार्वाक दर्शन का उपहास करते हैं। वेणीसंहार एक भव्य नाटक है जो महाभारत की मुख्य घटना को नाटकीय रूप प्रदान करता है। दुःशासन द्वारा घसीटकर द्यूतभवन में लाने के समय से द्रौपदी की वेणी शिथिल थी और उसे भीमसेन द्वारा अपने प्रण के अनुसार दुःशासन के रक्त से रंजित हाथों से ग्रथित किया जाना था। वेणीसंहार में इस प्रण की पूर्ति को दर्शाया गया है। नाटक का स्वरूप कथात्मक हो गया है, क्योंकि लेखक कर्ण और अश्वत्थमा के कलह अथवा सुन्दरक के दृश्यों के वर्णन करने का लोभ संवरण नहीं कर सके। नाटक का रस वीर है और इसमें महाकाव्य की भव्यता है। भीम और द्रौपदी तथा कर्ण और अश्वत्थामा के चरित्र-चित्रण में लेखक विशिष्ट रूप से सफल

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हुआ है। दुर्योधन और भानुमती के प्रेम का दृश्य अत्यन्त अभिव्यंजनापूर्ण है, किन्तु अलंकार शास्त्रियों ने नाटक के वातावरण में इसे अनुचित कहकर इसकी आलोचना की है। भट्टनारायण कथावस्तु की संरचना में कुछ अधिक कार्य नहीं कर सके क्योंकि हमारे लिए कहानी सुपरिचित है, किन्तु उन्होंने हमें प्रभावोत्पादक दृश्य अवश्य प्रदान किए हैं। क्रोध, करुणा, भय आदि भावों का प्रशंसनीय रूप से परिपाक हुआ है और शैली ओजपूर्ण गौड़ी रीति है। नाट्यशास्त्र और काव्यशास्त्र के लेखक बहुधा शास्त्रीय विषयों की व्याख्या के लिए वेणीसंहार का उल्लेख करते हैं। इसी दृष्टिकोण से वे रत्नावली का भी उल्लेख करते हैं। यह हो सकता है कि वे इन नाटकों को शास्त्रीय दृष्टिकोण से पूर्ण नाटक मानते थे और उनसे दृष्टान्त लेते थे। किन्तु हमें याद रखना चाहिए कि शास्त्रीय रूप से पूर्ण नाटक अनिवार्य रूप से महान् नाटक नहीं होता। कुछ भी हो, भट्टनारायण का नाटक अपने वीर-रसपूर्ण दृश्यों के लिए विलक्षण नाटक रहेगा।

11. मुद्राराक्षस

इस नाटक के लेखक विशाखदत्त हैं और नाटक की प्रस्तावना में वे हमें बतलाते हैं कि वे महाराज भास्करदत्त के पुत्र और सामन्त वटेश्वरदत्त के पौत्र थे। उनकी तिथि की समस्या भरतवाक्य में उनके द्वारा एक राजा चन्द्रगुप्त के उल्लेख से जटिल हो गई है जिसका राज्य म्लेच्छों द्वारा आक्रान्त हुआ था। भरतवाक्य में चन्द्रगुप्त शब्द के लिए अनेक पाठ हैं जैसे दन्तिवर्मन, रन्तिवर्मन एवं अवन्तिवर्मन। अत: भरतवाक्य में दिया हुआ नाम कोई संकेत नहीं प्रदान करती। जायसवाल और कोनो चन्द्रगुप्त को चन्द्रगुप्त द्वितीय मानते हैं और विशाखदत्त को उसके शासनकाल में रखते हैं। कीथ उसे नवीं शताब्दी में रखते हैं। जैकोवी भी उसे नाटक में वर्णित चन्द्रग्रहण के आधार पर नवीं शताब्दी में रखते हैं। दूसरे विद्वान् राजा के नामान्तरों को स्वीकार करते हुए उसे सातवीं शताब्दी में रखते हैं। केवल इतना ही निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि वह कालिदास के परवर्ती समय के हैं।

मुद्राराक्षस का कथानक चन्द्रगुप्त मौर्य की सहायता से विष्णुगुप्त चाणक्य द्वारा नन्दों के विध्वंस का वर्णन करता है। इस उपलब्धि के पश्चात् चन्द्रगुप्त को राजसिंहासन पर बिठा कर चाणक्य सक्रिय राजनीति से संन्यास लेना चाहते हैं और नन्दों के भूतपूर्व मन्त्री राक्षस को चन्द्रगुप्त की राजसभा में अपने पद को स्वीकार कराना चाहते हैं। परन्तु राक्षस नन्दों का बहुत ही स्वामिभक्त है और चाणक्य का विरोध करता है। चाणक्य अपनी कूटनीति से राक्षस को असहाय बना देते हैं, उसे अपने मित्रों से वियुक्त कर देते हैं और अन्त में उसे पद स्वीकार करने के लिए बाध्य कर देते हैं। यहाँ पर प्रत्यभिज्ञान मुद्रिका का प्रयोग

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

राक्षस की पराजय का कारण बनता है। इसी पर नाटक का नामकरण किया गया है। सम्भवतः मुद्राराक्षस ही केवल एक ऐसा नाटक है जो राजनैतिक षड्यन्त्र पर आधारित है। नाटक असाधारण है, क्योंकि इसमें न तो कोई नायिका है और न ही शृङ्गार रस। यहाँ राजनैतिक संघर्ष की शुष्क क्रीड़ा में, जिसमें दो षड्यन्त्रकारी मस्तिष्क भिड़े हुए हैं, किसी भी प्रकार के कोमल तत्त्वों के लिए कोई स्थान नहीं है, धर्म और सदाचार के लिए भी नहीं। राक्षस संघर्ष में पराजित होता है। इसलिए नहीं कि वह निम्नकोटि का राजनीतिज्ञ है, बल्कि इसलिए कि विष्णुगुप्त इस क्षेत्र में अधिक महान् है। राक्षस की दुर्बलता उसकी भावुकता में है, जो चाणक्य में नहीं है। चाणक्य राक्षस की योग्यता एवं स्वामिभक्ति को जानते हैं और इसीलिए उसके पीछे पड़े हुए हैं। यही तथ्य राक्षस की महत्ता की प्रशस्ति है। कथानक गुणाढ्य की बृहत्कथा से लिया गया होगा, परन्तु नाटक के गुण लेखक के स्वयं के हैं। चरित्र-चित्रण अत्यन्त कुशलता से किया गया है। दो स्वार्थरहित एवं स्वामिभक्त किन्तु धर्मभीरुता से रहित चतुर राजनीतिज्ञों के चरित्र-चित्रण में लेखक को अभूतपूर्व सफलता मिली है। चन्द्रकेतु और मलयकेतु का भी श्लाघ्य रीति से चित्रण किया गया है और तुलना के सिद्धान्त का सकौशल प्रयोग किया गया है। घटनाएँ योजना के अनुसार चलती हैं और इसमें घटनाओं और पात्रों, संवादों और युक्तियों में विलक्षण एकता और क्रम है जो कि नाटक के अन्त की ओर बढ़ते हैं। संस्कृत में कोई दूसरा नाटक हमें इस प्रकार की सुव्यवस्थित एकता नहीं प्रदर्शित करता। विशाखदत्त की शैली ओजस्वी एवं प्रवाहयुक्त है तथा उसके संवाद और पद्य वक्ता के चरित्र को अभिव्यक्त करते हैं। उसके संवाद सजीव हैं और कथानक को तीव्र गति प्रदान करने के लिए स्पष्टता और द्रुत प्रवाह से युक्त हैं।

12. देवीचन्द्रगुप्त

विशाखदत्त का समान रूप से प्रशंसनीय एक अन्य नाटक भी था जो अब केवल उद्धरणों में ही सुरक्षित है। रामचन्द्र और गुणचन्द्र के नाट्यदर्पण में इस नाटक के उद्धरण प्राप्त हैं। उद्धरणों से यह प्रतीत होता है कि नाटक में पाँच अंक थे। अभिनवगुप्त और भोज ने भी इससे उद्धरण प्रस्तुत किए हैं। कथानक में कुमार चन्द्रगुप्त द्वारा ध्रुवस्वामिनी की रक्षा एवं उनके विवाह का वर्णन है। रामगुप्त समुद्रगुप्त के उत्तराधिकारी बने और एक शक राजा द्वारा आक्रान्त होकर पराजित हुए। शक राजा ने इस अपमानजनक शर्त के साथ रामगुप्त से सन्धि की कि उसकी रानी ध्रुवस्वामिनी उसके पास भेज दी जाय। इस शर्त को मूढ़ रामगुप्त ने स्वीकार कर लिया। कुमार चन्द्रगुप्त इस कलंकमय सन्धि से अत्यन्त क्रुद्ध हुआ, वह ध्रुवस्वामिनी के वेष में शक राजा से मिला और

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उसका वध कर दिया। कुमार चन्द्रगुप्त देवी ध्रुवस्वामिनी की शीलरक्षा के शौर्य के कारण उसकी प्रशंसा का पात्र बन गया। ध्रुवस्वामिनी अपने दुर्बल पति से पहले से ही घृणा करने लगी थी। रामगुप्त इन प्रतिकूल परिस्थितियों के कारण चन्द्रगुप्त को राजमहल से दूर रखने लगा। चन्द्रगुप्त ने विक्षिप्तता का स्वाँग बनाकर राजमहल में प्रवेश किया, अपने भाई का वध किया और उसकी पत्नी तथा राजसिंहासन दोनों को प्राप्त किया। नाटक ऐतिहासिक तथ्य पर आधारित है, क्योंकि बाण के अनुसार भी चन्द्रगुप्त ने नारी के वेष में शत्रु के शिविर में एक शक राजा का वध किया था। नाटक प्रभावशाली रहा होगा जैसा कि उद्धरणों से प्रतीत होता है।

13. अभिसारिकावञ्चितक

अभिनवगुप्त और भोज अभिसारिकावञ्चितक को विशाखदेव, जो सम्भवतः विशाखदत्त ही है, की रचना मानते हैं। नाटक में उदयन की प्रेमगाथा का वर्णन है। उदयन पद्मावती पर अपने पुत्र का वध कर देने का सन्देह करते हैं और इसलिए उससे विमुख हो जाते हैं। पद्मावती शबरी के वेष में अभिसारिका के रूप में गमन करती है और अपने भावुक पति का प्रेम पुनः प्राप्त कर लेती है।

14. महावीरचरित

नाटक के लेखक महाकवि भवभूति हैं जो कालिदास के महान् प्रतिद्वन्द्वी माने जाते हैं। समस्त संस्कृत नाटककारों में भवभूति सर्वाधिक अभिव्यक्तिशील हैं और अपने तीन नाटकों के आमुखों में उन्होंने उल्लेख किया है कि वह विदर्भ पद्मपुर के निवासी थे, यजुर्वेद की तैत्तिरीय शाखा के उदुम्बर ब्राह्मण थे, और उनका दूसरा नाम श्रीकण्ठ था। उनके पितामह गोपालभट्ट, पिता नीलकण्ठ, और माता जातुकर्णी थी। उनके गुरु ज्ञाननिधि थे। वह सातवीं शताब्दी के कन्नौज के राजा यशोवर्मन् के राजकवि थे। उन्होंने तीन नाटक महावीरचरित, मालतीमाधव और उत्तररामचरित लिखे हैं। इन सब नाटकों का उद्देश्य कालप्रियानाथ के सम्मान में आयोजित समारोह में अभिनीत किया जाना था।

सम्भवतः महावीरचरित उनका प्रथम नाटक है। महावीरचरित में राम के बाल्यकाल से लेकर रावण से संघर्ष तक के प्रारम्भिक जीवन की घटनाओं को नाटकीय रूप देने का प्रयत्न किया गया है। सम्पूर्ण नाटक की कल्पना रावण और राम के बीच राजनैतिक षड्यन्त्र के रूप में की गई है और रावण का मन्त्री माल्यवान् नाटक में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। रावण ने राम से तभी से शत्रुता ठान ली थी जब से वह सीता और जनक द्वारा वर रूप में अस्वीकृत कर दिया गया था। रावण का क्रोध राम द्वारा ताड़का, सुबाहु और अन्य राक्षसों के

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वध के कारण प्रज्ज्वलित हो जाता है। परशुराम आख्यान और बाली आख्यान को राम का संहार करने की माल्यवान् की योजना के अंश बनाते हुए उपाख्यानात्मक कथावस्तु को साक्यव एकता का आभास दिया गया है। भवभूति का प्रागल्भ्य राम का वनवास प्राप्त कराने के लिए मन्थरा के वेष में शूर्पणखा का कैकेयी के पास जाने में देखा जा सकता है। अन्त में नाटक यह प्रदर्शित करता है कि रावण और माल्यवान् की युद्ध नीति विफल हो गई है।

भवभूति वास्तविक अन्तर्द्वन्द्व (संघर्ष) चित्रित नहीं कर सके, क्योंकि राम के पक्ष में कोई विरोधी युद्धनीति नहीं थी। राम को सफल होना था, क्योंकि वह दिव्य गुणसम्पन्न थे। भवभूति अर्थशास्त्र के सम्मोहन में थे जैसा कि नाटक के विचार और शैली से प्रकट होता है। भवभूति संवादों में और श्लोकों में सामंजस्य स्थापित नहीं कर सके। उनकी शैली और कथा योजना नाटक के लिए वस्तुतः उपयुक्त नहीं है। समग्र रूप से यह नाटक हमें प्रभावित नहीं करता।

15. मालतीमाधव

यह दस अंकों का भवभूतिकृत एक प्रकरण है जिसमें दो मन्त्री भूरिवसु और देवरात के पुत्र एवं पुत्री के प्रेम का वर्णन है। मन्त्रियों ने इस विवाह के लिए तभी निश्चय कर लिया था, जब वे स्वयं विद्यार्थी थे किन्तु अपनी योजना कार्यान्वित नहीं कर सके, क्योंकि राजा अपने चचेरे भाई नन्दन का विवाह मालती से कराना चाहते थे। इस राजकीय इच्छा के विरुद्ध मन्त्रियों के लिए स्पष्ट उदासीनता धारण करना और इस प्रसंग को अपने एक मित्र कामन्दकी को सौंपना आवश्यक हो जाता है। इसीलिए सम्पूर्ण नाटक में कामन्दकी द्वारा घटनाचक्र नियंत्रित किया जाता है। यह माधव और मालती को निरुत्साहित कर देता है और यह नीरस प्रेमप्रसंग मकरन्द और मदयन्तिका के अधिक स्वाभाविक प्रेमप्रसंग से तीव्र वैषम्य प्रदर्शित करता है। ये प्रेमी प्रगल्भ, उपायकुशल, सोपक्रम हैं और इसीलिए अधिक सजीव हैं। इस नाटक में यह दोष है कि मुख्य कथावस्तु से गौण कथावस्तु अधिक रोचक हो गई है। माधव और मालती अधिक आदर्शमय हो गए हैं और वे गुणों के आदर्श मूर्तरूप हैं। निराश माधव मानवमांस-विक्रेता बन जाता है क्योंकि वह दोनों विरोधों के सामने अपने सर्वनाश का अनुभव करता है—मालती में राजकीय रुचि और कापालिक अघोरघण्ट की शत्रुता। देवी को बलि देने के लिए कापालिकों द्वारा मालती का अपहरण किया जाता है। संयोगवश माधव अघोरघण्ट का वध करके मालती को बचाता है। उसकी शिष्या नाटक के उत्तर भाग में बदला लेने के लिए जीवित रहती है और कामन्दकी के एक अन्य मित्र द्वारा अपने उपाय में विफल होती है। माधव और मालती का गुप्त रूप से विवाह हो जाता है और इस प्रकार राजकीय विरोध का निराकरण हो जाता

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

है। मकरन्द का मालती के वेष में नन्दन से विवाह कराया जाता है और यह नाटक में हास्य-तत्त्व की सृष्टि करता है। मालती दो बार मृत्यु के मुख से वाल-वाल बचा ली जाती है।

यह प्रतीत होता है कि भवभूति इस नाटक को लिखते समय कामशास्त्र और नाट्यशास्त्र के प्रभाव में थे। उन्होंने काम (प्रेम) की सभी सूक्ष्म अवस्थाओं के वर्णन का प्रयत्न किया है और विभिन्न रसों के परिपाक का भी प्रयत्न किया है जैसा वे स्वयं इंगित करते हैं। किन्तु नाटक में अवश्यंभाविता का अभाव है। समय के अभाव एवं सामञ्जस्य के अभाव से नाटक की संरचना दोषपूर्ण हो जाती है। उनके सम्वाद और श्लोक कथानक के विकास को अवरुद्ध करते हैं और अनेक सुन्दर काव्यात्मक प्रसंग होते हुए भी नाटक हमें रुचिकर नहीं प्रतीत होता।

16. उत्तररामचरित

इस नाटक में भवभूति राम के उत्तरकालीन जीवन की घटनाओं को नाटकीयता का रूप प्रदान करते हैं। रावण से युद्ध में विजय-साफल्य प्राप्त करके राम सीता के साथ वापस आ जात हैं। सीता के बारे में गुप्तचर से लोकापवाद सुनकर वे उनका परित्याग कर देते हैं। बारह वर्ष के बाद वह तपस्या करते हुए एक शूद्र तपस्वी शम्बूक का वध करने के लिए वे पंचवटी जाते हैं। पंचवटी पहुँचकर वे प्राचीन सुखद दिनों की याद करते हैं जब वे वहाँ सीता के साथ अयोध्या से दूर रहते थे और अपने शोक को अभिव्यक्त करने के लिए स्वतन्त्र थे। भवभूति केवल सीता को राम की बातें सुनने ही नहीं देते, प्रत्युत शोकविह्वल राम की दशा भी देखने देते हैं और इस युक्ति से उनका प्रेम अति विश्वसनीय बन जाता है। सीता ने वाल्मीकि के आश्रम में दो बालकों को जन्म दिया है और उन्होंने उनसे शस्त्रविद्या और उनके द्वारा विरचित रामायण भी सीखी है। अश्वमेध यज्ञ का भ्रमणकारी अश्व लक्ष्मण के पुत्र चन्द्रकेतु द्वारा रक्षित है और सीता के ज्येष्ठ पुत्र लव अश्व को अपने अधिकार में ले लेते हैं। लव और चन्द्रकेतु युद्ध करते हैं और लव जृम्भास्त्र का प्रयोग करते हैं जो राम ने सीता की सन्तान को विशेष उपहार में दिया था। युद्ध-वार्ता सुनकर राम युद्ध-भूमि पर पहुँचते हैं और अपने पुत्रों सें मिलते हैं। वे उन्हें सीता के रूप से मिलते-जुलते व उनके रघुवंशी राजकुमार के लक्षणों से विशिष्ट रूप से जृम्भास्त्रों के प्रयोग से पहचान लेते हैं। सभी पात्र मिलते हैं और नाटक का सुखद अन्त होता है।

नाटक भवभूति की निस्सन्देह अत्युत्कृष्ट कृति है। घटनाक्रम अति दुर्बल है और नाटक की घटनाओं के बीच 12 वर्ष की अवधि का व्यवधान है। तथापि नाटकीय प्रविधि एवं श्रेष्ठ चरित्र-चित्रण पर अधिक अधिकार है। यहाँ हम काव्य के संसार में एवं रामायण के आदर्शवाद में गतिशील होने का अनुभव करते

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हैं। भवभूति ने महाकाव्य के पात्रों में मानव अनुभूति की विलक्षण गहनता जोड़ी है और उच्चादर्शों की गाथा को ज्वलन्त यथार्थमय दैनिक अनुभव की कथा से परिणत कर दिया है। शोक से परिष्कृत दाम्पत्य प्रेम की कथा वास्तव में अद्वितीय है और परम्परा कहती है कि करुण रस में भवभूति की विशेष योग्यता है। चित्र दीर्घा दृश्य जिससे नाटक प्रारम्भ होता है, छायाङ्क जिससे अदृष्ट सीता राम की वेदना को अवलोकन करती है, गुरुजनों का पारस्परिक मिलन और अन्त में राम की पुत्रों से भेंट की कल्पना उत्कृष्ट नाटकीय प्रविधि और रुचि से की गई है। अभिज्ञानशाकुन्तल से तुलना करने पर हम उत्तररामचरित से एक ऐसे संसार में भ्रमण करते प्रतीत होते हैं जो अधिक गम्भीर है, जिसमें गहनतर अनुभव होते हैं और जो अधिक संघर्षशील है। इसमें अनुपम सौन्दर्य के काव्यमय अवतरण हैं और यह प्रतीत होता है कि भवभूति ने अब सुन्दर वाक्य एवं परिष्कृत और भावपूर्ण श्लोक लिखने की कला पर अधिकार प्राप्त कर लिया है। उनके पात्रों में शक्तिशाली भाव हैं और ये भाव अभिव्यक्ति में सदा सरल हैं। इस दिशा में भवभूति कालिदास से तीव्र विरोध में सामने आते हैं। उसी प्रकार उनकी प्रकृति भव्य और भय-विस्मयकारी है और वह उस परिष्कार और निखार पर कठिनता से ध्यान देते हैं जो कालिदास की कला में विशिष्ट गुण हैं। एक अर्थ में भवभूति ने हमें नाटकीय कविताएँ दी हैं, नाटक नहीं किन्तु उनकी मार्मिक कविता उच्च गाम्भीर्य विचारशीलता, आध्यात्मिकता और दाम्पत्य प्रेम की उच्च कल्पना ने उन्हें कालिदास का गम्भीर प्रतिद्वन्द्वी बना दिया है।

अपने तीन नाटकों में भवभूति ने एक योजना के अनुसार काम किया है। अपने महावीरचरित में उन्होंने बालक नायक और बालिका नायिका को एवं वीररस को चुना; मालतीमाधव में युवा नायक-नायिका एवं शृङ्गाररस को चुना और उत्तररामचरित में नायक एवं नायिका के जीवन की वृद्धावस्था एवं करुणा को चुना। यह उनके सम्पूर्ण जीवन का चित्रण है और वह यह अनुभव करते प्रतीत होते हैं कि करुण ही केवल एक रस है।

17. प्रियदर्शिका एवं रत्नावली

सातवीं शताब्दी (606-628 ई०) के पूर्वार्ध में हुए स्थाण्वीश्वर के राजा हर्षवर्धन शीलादित्य के तीन नाटक हैं—प्रियदर्शिका, रत्नावली और नागानन्द। वे मत जो इन नाटकों को बाण, धावक और अन्य कवियों का मानते हैं, निःसार हैं। हमें नवीं शताब्दी के दामोदर गुप्त मिलते हैं जो रत्नावली को हर्षकृत बतलाते हैं। इत्सिंग हमें सूचित करते हैं कि हर्ष ने नागानन्द की रचना की। प्रियदर्शिका और रत्नावली दोनों ही मालविकाग्निमित्र श्रेणी की चार अङ्कों की नाटिकाएँ हैं। हर्ष व्यावहारिक रूप से उसी कथावस्तु का उसी रूप में वर्णन करते हैं। प्रियदर्शिका

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

में नायिका आरण्यका है और रत्नावली में सागरिका है। उनका नाम ऐसा रखा गया है, क्योंकि एक का परित्राण वन में और दूसरी का सागर में किया गया था। इन दोनों नाटकों में उदयन अपने मित्र वसन्तक के साथ और रानी वासवदत्ता अपनी दासी काञ्चनमाला के साथ प्रकट होते हैं और कथावस्तु का विकास उसी प्रणाली पर होता है। हर्ष का चरित्र-चित्रण अत्यन्त क्षीण है और वे कथावस्तु और नाटक के रूप दोनों दिशाओं में परम्परा के प्रभाव है। वह आह्लादक सुखान्त नाटककार और कालिदास से अत्यन्त प्रभावित है।

18. नागानन्द

नागानन्द इन दो नाटकों से कथावस्तु और प्रेरणा में भिन्न हैं। इसमें हर्ष जीमूतवाहन की बौद्धगाथा का वर्णन करते हैं जो अपने जीवन को बलिदान करके गरुड़ से नागों की स्वतन्त्रता प्राप्त करता है। नाटक में शृङ्गार और शान्त रसों का अद्‌भुत मिश्रण है, क्योंकि प्रथमार्ध में जीमूतवाहन और मलयवती की प्रेमकथा का वर्णन है, जबकि उत्तरार्ध में शङ्खचूड के उपाख्यान और जीमूतवाहन के बलिदान का वर्णन है। लाल वैवाहिक-परिधान नायक के लिये बध्य का कंचुक बन जाता है और नायक का स्वेच्छापूर्वक बलिदान गरुड़ का हृदयपरिवर्तन कर देता है। इस प्रकार पढ़ाया गया सिद्धान्त अहिंसा का है। हर्ष हमें प्रभावोत्पादक दृश्य देने में सफल हुए हैं। नाटक दुःखान्त नाटक का रूप धारण कर लेता है, किन्तु गौरी के दिव्य व्यवधान के कारण नाटक सुखान्त नाटक में परिणत हो गया है। हर्ष निपुण और रम्य नाटककार हैं।

19. अनर्घराघव

यह नाटक वर्द्धमानांक और तन्तुमती के पुत्र मुरारि द्वारा रचित है। कवि कलचुरियों के अधीन निवास करते हुए प्रतीत होते हैं क्योंकि वह कलचुरियों की राजधानी माहिष्मती का उल्लेख करते हैं। उन्होंने भवभूति के महावीरचरित से राम और माल्यवान् के राजनैतिक संघर्ष के भाव को उधार-सा लिया है। उनका उद्देश्य अपने पाठकों को, जिन्हें अन्यत्र पर्याप्त भय और आतंक मिला था, उच्च और चित्ताकर्षक रचना देनी थी। नाटक बहुत विस्तृत है, निरूपण, निरंकुश, उच्छृङ्खल है और नाटक अनाटकीय है। मुरारि नाटककार की अपेक्षा कवि अधिक हैं।

20. बालरामायण एवं विद्धशालभञ्जिका

बालरामायण में राजशेखर ने राम के राज्याभिषेक तक रामायण की सम्पूर्ण कथा को दस अंकों में नाटकीय रूप देने का प्रयत्न किया है। यह नाटक ह्रासोन्मुखी संस्कृत नाटक का एक बहुत अच्छा उदाहरण है पर राजशेखर अपने प्रयास

Gaṇesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

में पूरी तौर से असफल हुए हैं। उन्होंने कालिदास, हर्ष, भवभूति से प्रधान विचार ग्रहण किए हैं। उनके विस्तृत वर्णन, प्रसंग एवं भावप्रवण श्लोक जो संख्या में 780 हैं, कथावस्तु के विकास का हनन करते हैं। घटनाओं के चयन एवं प्रबन्ध में कौशल का अभाव है। केवल एक विसंगति का उल्लेख किया जाता है। नाटक के अन्तिम अंक में राम की वायुयात्रा में लगभग 100 श्लोकों का प्रयोग हुआ है और इस यात्रा में चन्द्रयात्रा भी सम्मिलित है।

राजशेखर का दूसरा नाटक बालभारत प्रचण्डपाण्डव के नाम से भी प्रसिद्ध है जो महाभारत की कथा को नाटक का रूप देता है, अकलात्मक है और नाटक अपूर्ण छोड़ दिया गया है। अपने पूर्ण रूप में भी यह महत्वपूर्ण नाटक नहीं हो पाता।

विद्धशालभञ्जिका राजदरबार का सुखान्त रूपक नाटिका है। नाटक का नाम प्रतिमा की युक्ति से प्राप्त होता है, जो नाटक में महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है। इसमें एक महिला मृगांकवती बालक मृगांकवर्मन् के वेष में प्रकट होती है। यह ऐसा गुप्त रहस्य है जो विदूषक को ज्ञात है, किन्तु रानी को अज्ञात है। रानी राजा का असंदिग्ध लिङ्ग के बालक से विवाह कराती है और राजा को अभीष्ट प्राप्त होती है। भागुरायण द्वारा सब मामले ठीक किए गए हैं और वह यौगन्धरायण की याद दिलाता है। यथापूर्व प्रेम, उत्कण्ठा और गुप्त मिलन के वर्णन प्रचुर संख्या में हैं।

राजशेखर कृत कर्पूरमञ्जरी प्राकृत में एक नाटक सट्टक है और परम्परापरक राजदरबार के प्रेम के सुखान्त नाटक के ढाँचे पर है। रत्नावली का प्रभाव स्पष्ट है। कथावस्तु का अयोग्यता से निर्वाह किया गया है और चरित्र-चित्रण प्रायः असफल है। राजा चण्डपाल एक कन्या से प्रेम करते हैं जिसका पद अज्ञात है। रानी स्वभावतः ईर्ष्यालु है और विदूषक राजा और उसकी प्रेमिका के संयोग का प्रबन्ध करता है। भैरवानन्द की तान्त्रिक शक्तियों का प्रयोग अविश्वसनीय रूप से नाटक में महत्त्वपूर्ण भाग निभाता है। राजशेखर कालिदास, भवभूति और हर्ष जसे आचार्यों का अनुकरण करता है, किन्तु किसी प्रकार से भी महान् नाटककार नहीं है।

21. तापसवत्सराजचरित

अनङ्गहर्षमातृराज का तापसवत्सराजचरित शारदा लिपि में हस्तलेख में सुरक्षित है। नाटक छः अंकों में है और इसमें स्वप्नवासवदत्ता की कथावस्तु अर्थात् राजा के वासवदत्ता की तथाकथित मृत्यु पर शोक का वर्णन है। पद्मावती उसके चित्र को देखकर राजा उदयन से प्रेम करती है। यौगन्धरायण छल से पद्मावती और उदयन का विवाह करा देता है। वासवदत्ता परिव्राजिका बन गई है और जीवन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

से ऊब कर प्रयाग में आत्महत्या करना चाहती है। उदयन भी जीवन से ऊब कर आत्महत्या करने प्रयाग जाते हैं। ऐसे भावुकतापूर्ण क्षण में उदयन और वासवदत्ता का पुनः संयोग होता है। इस नाटक पर विक्रमोर्वशीय का प्रभाव है किन्तु इसमें न तो कार्यगति है और न चरित्र-चित्रण। कुछ सुन्दर काव्य और मर्मस्पर्शी करुण-रस के अंश नाटक के सुखद रूप हैं। आनन्दवर्धन, अभिनवगुप्त और कुन्तक इसका उल्लेख करते हैं।

22. प्रकीर्ण नाटक

अनेक अन्य नाटक हैं जो उन उद्धरणों से जाने जाते हैं जो अभिनवगुप्त, कुन्तक, रामचन्द्र, गुणचन्द्र, राजशेखर और दूसरों के ग्रन्थों में प्राप्त होते हैं। उनमें से अनेक लुप्त हो गए हैं और उनकी तिथियाँ तथा लेखक अज्ञात हैं। इनमें से तीन राम-नाटक, छलितराम, कृत्यारावण, एवं मायापुष्पक, वसुनागकृत प्रतिमानिरुद्ध, पाण्डवानन्द, पुष्पदूषितक प्रतिज्ञाचाणक्य, तरङ्गदत्त, शंकुककृत चित्रोत्पलावलम्बितक, वीणावासवदत्त तथा उन्मादवासवदत्त उल्लेखनीय हैं। आश्चर्यचूड़ामणि सात अंकों का एक नाटक है और रामायण की कथा को नाटकीय रूप देता है। लेखक शीलभद्र हैं जो दक्षिणापथ के निवासी हैं और जो नवीं शताब्दी में रहे। नाटक का नामकरण सीता की चमत्कारिक चूड़ामणि और अंगुलीयक का भाव बाल्मीकि द्वारा इंगित किया जाता है। नाटक का प्रदर्शन निम्न कोटि का है और उपाख्यानों के वृत्तान्त स्तर से ऊँचे नहीं उठते।

भोज अपने शृङ्गारप्रकाश में और चण्डपाल अपने नलचम्पू में बाणकृत एक नाटक मुकुन्दताडितक का उल्लेख करते हैं। नाटक में दुर्योधन और भीम के युद्ध की कथावस्तु का वर्णन है। शारदातनय अपनी भावप्रकाशिका में बाणकृत एक दूसरा नाटक शारदचन्द्रिका का उल्लेख करते हैं। बाण द्वारा इन नाटकों का कर्तृत्व अत्यन्त संदिग्ध है।

कान्यकुब्ज के राजा भवभूति के संरक्षक यशोवर्मन द्वारा प्रणीत एक अन्तिम नाटक रामाभ्युदय है। मायूराज ने उदात्तराघव एक नाटक लिखा जिसका उल्लेख दशरूपक में है। मायूराज कलचुरी कवि के रूप में वर्णित हैं।

पार्वतीपरिणय पाँच अंकों का एक नाटक है जो अभिनवबाण अथवा वामन भट्टबाण द्वारा लिखा गया है। यह कोण्डविडू के रेड्डी राजकुमार के सभापण्डित थे जो चौदहवीं शताब्दी के अन्त में रहते थे। पार्वतीपरिणय उसी कथा का वर्णन है जैसा कुमारसम्भव में है। यह वास्तव में अनाटकीय रचना है जो कि एक सुन्दर कथा का वर्णन करती है। वामनभट्ट ने एक भाण शृङ्गारभूषण लिखा जो अत्यन्त शृङ्गारिक है।

मल्लिकामारुत दस अंकों का प्रकरण है जो उद्दण्डिन् अथवा उद्दण्डनाथ द्वारा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रचित है। ये सत्रहवीं शताब्दी के कालीकट के मानविक्रम जमोरिन के राजदरबार में थे। इसमें एक विद्याधर की राजकुमारी मल्लिका और कुन्तल राजकुमार मारुत के प्रेम की कथा का वर्णन है। इसमें एक दूसरी भी प्रेमकथा है जो उपकथावस्तु है। इसमें कलाकण्ठ, नायक का मित्र और नायिका की दासी मदयन्तिका प्रेमासक्त हैं। एक जादूगरनी मन्दाकिनी कथावस्तु का सञ्चालन करती है और इसमें मत्त हाथियों से दो परित्राण और दो अपहरण काण्ड हैं। इस नाटक में मालतीमाधव की निकृष्ट अनुकृति है।

मुरारि और राजशेखर के पश्चात् वस्तुतः मुरारि और राजशेखर स ही संस्कृत का ह्रासोन्मुखी नाटक का प्रारम्भ हो जाता है। बाद की शताब्दियों में ऐसे नाटक मिलते हैं जो महाकाव्यों एवं पुराणों के कथानकों एवं गाथाओं का वर्णन करते हैं, किन्तु इन नाटकों में नाटकीय शक्ति का अभाव है। वे श्लाघ्य साहित्यिक रचनाएँ हैं, किन्तु असफल नाटक हैं। जयदेव का प्रसन्नराघव इस अवधि का प्रतिनिधि ग्रन्थ माना जा सकता है। वे रामायण को नाटकीय रूप देना चाहते हैं और हास्यास्पद रीति से दुष्यन्त और शकुन्तला के प्रेम के आधार पर राम और सीता के प्रेम का चित्रण करते हैं। शिवधनुष उठाने के पहले राम-सीता एक उद्यान में मिले थे। वासन्ती लता आम्रवृक्ष से संयोग की श्लाघा करती हैं और प्रेम के स्वर गुनगुनाती है। मधुमक्षिकाएँ संस्कृत में वार्तालाप करती हैं। बाद में राम दूसरे पुरूरवा बन जाते हैं। यहाँ आलंकारिक चमत्कार और श्लोकों की स्निग्धता हो सकती है किन्तु स्पष्टतः नाटकीय मनोवृत्ति का अभाव है। दूसरे राम-नाटक हैं—जामदग्न्यजय, अभिनयराघव, रघुविलास, राघवाभ्युदय, एवं जानकीपरिणय। महाभारत-नाटकों में चित्रभारत, नलविलास, निर्भयभीम, तपतीसंहरण, सुभद्रा-धनञ्जय, द्रौपदीस्वयंवर, कल्याणसौगन्धिक का उल्लेख किया जा सकता है। कृष्ण-नाटकों में रुक्मिणी परिणय, वृषभानुजा, कंसवध, विदग्धमाधव उल्लेखनीय हैं। उन नाटकों में जो गाथाओं अथवा काल्पनिक कथावस्तुओं से संबन्धित है—कर्णसुन्दरी, पारिजातमञ्जरी, कमलिनीकलहंस, मृगाङ्कलेखा, किरातार्जुनीय, तथा त्रिपुरदाह का उल्लेख किया जा सकता है। सामाजिक नाटकों में अनंगसेना हरिनन्दी, मल्लिकामकरन्द तथा रोहिणीमृगाङ्क उल्लेखनीय हैं।

विज्जकक्कृत कौमुदीमदोत्सव विशेष रूप से रोचक होगा। कथानक सामान्य राजनैतिक षड्यन्त्र है, कहानी परम्परागत है। प्रतीकात्मक नाटकों में कृष्णमित्र के प्रबोधचन्द्रोदय का उल्लेख किया जा सकता है जहाँ मनस्, प्रवृत्ति, निवृत्ति, मोह जैसे पात्र प्रकट होते हैं। इस श्रेणी में मोहपराजय, चैतन्यचन्द्रोदय तथा विद्यापरिणय भी आत हैं।

प्रेम नाटकों में अनेक भाण एवं प्रहसन हैं जो इस अवधि में निर्मित हुए किन्तु

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इनमें से कोई भी ध्यान देने योग्य नहीं है, क्योंकि उनमें नाटकीय कौशल का अभाव ह। वे गुणयुक्त साहित्यिक रचनाएँ नहीं हैं और निकृष्ट कुरुचि प्रदर्शित करते हैं। बोधायन के भगवदज्जुकीय का उल्लेख आवश्यक है। यह श्लाघ्य रचना है जहाँ तक नाटक के प्रहसन रूप का सम्बन्ध है। एक तपस्वी की आत्मा का गणिका के शरीर में प्रवेश एवं गणिका की आत्मा का तपस्वी के शरीर में प्रवेश मुख्य घटना की मनोहर रूप से कल्पना की गई है और यह हास्यपूर्ण परिस्थितियों की सृष्टि करती है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

IV

शास्त्रीय साहित्य

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

IV

शास्त्रीय साहित्य

व्याकरण, ज्योतिष, गणित जैसे विभिन्न शास्त्रों का आविर्भाव यज्ञ सम्बन्धी वैदिक प्रथा से हुआ। इसी प्रकार धर्मशास्त्र, कामशास्त्र और मोक्षशास्त्र जैसे अन्य शास्त्रों का विकास भी वैदिक साहित्य में इधर-उधर बिखरे हुए विभिन्न विचारों से ही हुआ है। वैदिक मन्त्रों का शुद्ध उच्चारण कर उन्हें सही अर्थों में समझना होता था। इन आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए व्याकरण तथा शिक्षाशास्त्र का आविर्भाव हुआ। वैदिक यज्ञ भी ग्रहों की स्थिति देखकर किसी निश्चित मुहूर्त पर किए जाने होते थे और इसके कारण ज्योतिषशास्त्र का प्रणयन हुआ। वैदिक यज्ञों की वेदिका भी सुव्यवस्थित ढंग से किसी खास आकार-प्रकार की बनाई जाती थी। अतः इस आवश्यकता की पूर्ति के लिए गणित तथा भवन-निर्माण आदि शास्त्रों का अभ्युदय हुआ। चिकित्साशास्त्र का प्रारम्भ अथर्ववेद में दृष्टिगत होता है। धर्मशास्त्रों का विकास पिछली पीढ़ियों के लिखित सामाजिक और शास्त्रविहित व्यवहारों तथा वैदिक साहित्य में अनेक स्थानों पर व्यक्त विचारों के आधार पर हुआ। ऋग्वेद और अथर्ववेद के दार्शनिक सूक्तों तथा ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषदों के चिन्तन ने दर्शनशास्त्र को जन्म दिया। उपनिषदों में यत्र-तत्र नर और नारी के प्रेम का उल्लेख मिलता है। इस प्रकार के विचारों को स्वतन्त्र कामशास्त्र का आरम्भिक रूप माना जा सकता है। कोई भी विचार सिद्धान्त बनने से पूर्व व्यावहारिक रूप में होता है। वैदिक काव्य में विविध प्रकार के छन्दों तथा विभिन्न शब्दालङ्कारों एवं अर्थालङ्कारों का प्रयोग दिखाई देता है। इससे काव्यशास्त्र का आविर्भाव हुआ। अर्थशास्त्र पहले तो धर्मशास्त्र के अंग के रूप में विकसित हुआ, परन्तु बाद में यह पृथक् शास्त्र बन गया। यास्क ने वैयाकरणों, नैमित्तिकों, याज्ञिकों, ऐतिहासिकों आदि की विभिन्न शाखाओं का उल्लेख किया है। कालान्तर में इन सभी शास्त्रों में काफी विकास हुआ और प्रत्येक का अपना विपुल साहित्य हो गया। विभिन्न वैदिक चरणों ने इन शास्त्रों का अध्ययन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

किया और इनके क्रमिक अध्ययन केन्द्रों ने प्रत्येक शास्त्र में विभिन्न परम्पराओं को जन्म दिया।

विभिन्न शास्त्रों में इस प्रकार का उल्लेखनीय साहित्य है। प्रारम्भिक काल में जब मौखिक परम्परा द्वारा ही ज्ञान का आदान-प्रदान एवं संरक्षण होता था, तब केवल आवश्यकता के अनुरूप अधिकांश शास्त्रीय वाङ्मय सूत्र रूप में ही था। इनमें कम से कम शब्दों का उपयोग किया जाता है। संक्षिप्तता इनका आदर्श है और स्पष्टता तथा सूक्ष्मता जैसे गुणों को इनमें प्रायः तिलांजलि दे दी जाती है। इस प्रकार के सूत्र जब कालान्तर में बोधगम्य नहीं रह गए तो उन पर शास्त्र और वार्तिक लिखे जाने लगे। ये सूत्र की समीक्षा करते हैं और उसके प्रत्येक शब्द को स्पष्ट करते हुए इसकी व्याख्या देते हैं। समय की माँग के अनुसार इस प्रकार के साहित्य का काफी मात्रा में सृजन हुआ। इन रचनाओं में अक्सर गद्य से काम लिया जाता है और यह गद्य प्राचीन संस्कृत गद्य से भिन्न है और इसमें लगभग सूत्र जैसी संक्षिप्तता और सरलता होती है। इसका अर्थ यह नहीं कि इस गद्य में साहित्यिक गुण नहीं हैं। इस संदर्भ में शबर, कौटिल्य, शंकर और रामानुज द्वारा रचित साहित्य देखना उपयोगी होगा जहाँ उच्चकोटि के संस्कृत गद्य के दर्शन होते हैं। समय बीतने पर इन बड़े-बड़े भाष्यों को भी संक्षिप्त करने की आवश्यकता पड़ी है और उनके सार को ध्यान में रखते हुए उनका अध्ययन करना पड़ा। इससे छोटी और सरल संहिताओं, जो संग्रहों और निबन्धों के नाम से प्रसिद्ध हैं, का जन्म होता है। इस प्रकार की रचनाओं में प्रायः पद्य का उपयोग भी कर लिया गया है और महाकाव्यों जैसी रचनाओं के विभिन्न छन्दों जैसे अनुष्टुप् श्लोक और आर्यों का प्रयोग प्रभावकारी सिद्ध हुआ। अलङ्कारिक भाषा लिखने का कोई प्रयत्न नहीं किया गया, फिर भी उपमा, श्लेष और अर्थान्तिरन्यास जैसे साधारण अलङ्कारों की छटा उसमें दिखाई देने लगी। सम्भवतः इसी पृष्ठभूमि में विभिन्न शास्त्रों ने अपना साहित्य भण्डार भरा। यह भी देखने में आया है कि प्रतिष्ठा प्राप्त करने के उद्देश्य से पाञ्चरात्र दर्शन और आयुर्वेद की रचनाओं का नाम भी संहिता रख दिया गया। इस सन्दर्भ में जो दूसरी महत्त्वपूर्ण याद रखने योग्य बात है—वह यह है कि परम्परा से वैदिक साहित्य को अपौरुषेय माना गया है और इस प्रकार उसे श्रुति कहा गया है अर्थात्, ऋषियों द्वारा सुना गया। इसके विपरीत यहाँ उल्लिखित साहित्य पौरुषेय है और यह स्वाभाविक है कि इस प्रकार की अधिकांश रचनाएँ स्मृति कहलाती हैं, अर्थात्, वह सब जो याद रखा जाता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

IV. 1 कोशशास्त्र

यास्क ने अपने निरुक्त में निघण्टु ग्रन्थों का उल्लेख किया है। इसमें वैदिक शब्द संकलित किए गए हैं और संभवतः ये सबसे प्राचीन कोश रचनाएं हैं। इन संग्रहों का उद्देश्य वेद मन्त्रों के अर्थ समझने में सहायता देना था क्योंकि दिन-प्रतिदिन ये दुर्बोध होते जा रहे थे। निघण्टु ग्रन्थों में शब्दों के संज्ञात्मक और क्रियात्मक रूप ही दिए गए हैं और वे किसी विशेष अवतरण से ही सम्बन्धित हैं। वैयाकरणों के धातुपाठों ने भी इस प्रकार के साहित्य सृजन में अवश्य ही योगदान दिया होगा। इसी प्रकार शब्दकोशों का निर्माण भी कवियों को शब्द उपलब्ध करने के लिए आरम्भ किया गया होगा। कोशकारों में वाण, मयूर और मुरारि तथा श्रीहर्ष का नाम लिया जाता है। श्रीहर्ष ने श्लेषार्थपदसंग्रह के रूप में हमें एक कोश दिया है जिसमें द्व्यर्थक शब्द दिए गए हैं। इन कोशों में केवल सञ्ज्ञाएँ और अव्यय शब्द दिए गए हैं और समस्त भाषा से शब्दों को एकत्रित करने का प्रयत्न किया गया है। ये कोश छन्दोवद्ध रचनाएँ हैं और इनमें श्लोक तथा आर्या छन्दों का उपयोग किया गया है। ये कोश दो प्रकार के हैं—एक वे जिनमें पर्याय शब्द दिए गए हैं और दूसरे वे जिनमें अनेकार्थक शब्द संगृहीत हैं। ये आधुनिक कोशों की भाँति अकारादिक्रम में नहीं हैं और ऐसा प्रतीत होता है कि विभिन्न कोशकारों ने विभिन्न प्रकार के सिद्धान्त अपनाए। विषय वस्तु के आधार पर प्रायः शब्दों का वर्गीकरण किया गया है। और सभी शब्द कर्ताकारक में दिए गए हैं। अनेक कोशों की रचना हुई, परन्तु अब इस कोश साहित्य का केवल एक अंश ही हमें उपलब्ध है। कात्यायन ने नाममाला, वाचस्पति ने शब्दार्णव और विक्रमादित्य ने संसारावर्त लिखा। व्याडि ने अपने उत्पलिनी में बौद्ध शब्दावली को भी शामिल किया। अमरसिंह का नामलिङ्गानुशासन जो अमरकोश के नाम से प्रसिद्ध है, कोशनिर्माण की प्रमुख रचना है। अमरसिंह बौद्ध धर्मावलम्बी थे और महायान शाखा का अच्छा ज्ञान रखते थे। उन्होंने अपनी रचनाओं में कालिदास का भी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उल्लेख किया है। कुछ लोग इन्हें विक्रमादित्य का समासद् और कालिदास का समकालीन मानते हैं। इस पुस्तक के तीन खण्डों में विषय के अनुसार समानार्थक शब्द दिए गए हैं और अन्तिम खण्ड के परिशिष्ट में समध्वनीय भिन्नार्थक (अनेकार्थ) और अव्यय शब्द तथा लिङ्ग दिए गए हैं। क्षीरस्वामी (ग्यारहवीं शताब्दी) सर्वानन्द (1159 ई०) और रायमुक्तामणि (1431 ई०) ने इस पर टीकाएँ लिखीं। पुरुषोत्तमदेव का त्रिकांडशेष विरल शब्दों का एक मूल्यवान् संग्रह है और इनकी रचना हारावली में समानार्थक, और अनेकार्थक शब्द संगृहीत किए गए हैं। यह बौद्ध ग्रन्थों से संग्रहीत विरल शब्दों का महत्त्वपूर्ण संग्रह हैं। शाश्वत का अनेकार्थसमुच्चय अमरकोश की तरह ही प्राचीन तथा काफी प्रसिद्ध है। इसमें अनेकार्थ शब्द अपने स्पष्टीकरण के लिए अपेक्षित स्थान के क्रम में दिए गए हैं। पूरा श्लोक, आधा श्लोक एवं एक चरण इनका क्रम है। अन्त में अव्यय शब्द दिए गए हैं। हलायुध का अभिधानरत्नमाला (950 ई०), यादव प्रकाश का वैजयन्ती (1050 ई०), हेमचन्द्र का अभिधानचिन्तामणि (1200 ई०), धनञ्जय का नाममाला (1123 ई०), महेश्वर का विश्वप्रकाश (1111 ई०), मंख का अनेकार्थ-कोश (1123 ई०), केशव स्वामी का नानार्थार्णवसंक्षेप (1200 ई०), मेंदिनीकर का अनेकार्थशब्दकोश (1400 ई०) इस विषय की कुछ महत्त्वपूर्ण रचनाएँ हैं।

हमारे पास एकाक्षरकोश, द्विरूपकोश और त्रिरूपकोश भी हैं। एक बौद्ध रचना महाव्युत्पत्ति बहुत ही उल्लेखनीय पुस्तक है जिनमें बौद्ध धर्म के अनेक विषयों के सम्बन्ध में काफी अच्छी सामग्री दी हुई है और इसमें क्रियारूपों, वाक्यांशों और वाक्यों के विषय में भी बताया गया है। धनपाल (972 ई०) ने अपनी बहिन सुन्दरी के लिए पाइयलच्छीनाममाला लिखी। हेमचन्द्र ने अपनी पुस्तक देशीनाममाला में इस पुस्तक का प्रयोग किया है। पारसीप्रकाश अकबर के काल में संकलित फारसी और संस्कृत का सुन्दर कोश है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

IV. 2 छन्दःशास्त्र

छन्दों में वर्णों की संख्या तथा छन्दों के बारे में दूसरे विवरण यजुर्वेद, ब्राह्मण ग्रन्थों साङ्ख्यायन श्रौतसूत्र, निदानसूत्र, ऋक्प्रातिशाख्य कात्यायन की ऋग्वेद की अनुक्रमणी में देखे जा सकते हैं। वेदमन्त्रों को ठीक प्रकार से समझने के लिए छन्दों का ज्ञान होना आवश्यक था। छन्दःशास्त्र के विषय में पिंगल का छन्दःसूत्र सम्भवतः पहली रचना प्रतीत होती है। परन्तु यह ग्रन्थ वैदिक छन्दों की अपेक्षा लौकिक छंदों का वर्णन अधिक करता है। प्राकृत के छन्दों के बारे में भी पिंगल के नाम से एक पुस्तक है। परन्तु इसका रचनाकाल काफी बाद का है। पिंगल ने लघु के लिए 'ल' और गुरु के लिए 'ग' इत्यादि जैसे चिह्नों का प्रयोग किया है। नाट्यशास्त्र का अध्याय 14 और 15 और अग्निपुराण का एक खण्ड छन्दों के विषय में है। परन्तु ये दोनों ही रचनाएँ पिंगल के बाद की हैं। छन्दःशास्त्र पर श्रुतबोध नामक एक ग्रन्थ है जिसका रचयिता बिना किसी ठोस प्रमाण के कालिदास को बताया गया है। कुछ लोग इस रचना के साथ वररुचि का नाम भी जोड़ते हैं। वराहमिहिर ने अपने ग्रन्थ बृहत्संहिता के एक अध्याय में छन्दों तथा ग्रहों की गति पर एक साथ प्रकाश डालने का असाधारण प्रयास किया है। दण्डी ने भी सम्भवतः छन्दःशास्त्र पर छन्दोविचिति नामक ग्रंथ लिखा था, परन्तु यह अब उपलब्ध नहीं है। क्षेमेन्द्र कृत सुवृत्ततिलक बहुत ही रुचिकर कृति है क्योंकि इसमें सर्वप्रथम उसी ने अपनी पद्यबद्ध रचना द्वारा छंदों के लक्षण दिए हैं, जो उदाहरण का कार्य भी करते हैं। इसके बाद वह छन्दों की असंगतियों का विवेचन भी करता है और अन्त में विषय के अनुसार छन्दों के उपयोग को बताते हुए वह प्रतिष्ठित लेखकों के प्रिय छन्दों का वर्णन करता है; उदाहरण के लिए पाणिनि को उपजाति, कालिदास को मंदाक्रान्ता, भारवि को वंशस्थ, भवभूति को शिखरिणी इत्यादि छन्द प्रिय थे। यहाँ पर हेमचन्द्र रचित छन्दोऽनुशासन का, केदारभट्ट (पन्द्रहवीं शताब्दी) के वृत्तरत्नाकर और गंगादासकृत छन्दोमञ्जरी का उल्लेख करना उचित होगा।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वैदिक एवं लौकिक संस्कृत कालों के बीच छन्दों के विकास के विषय में विश्वसनीय सामग्री बहुत कम उपलब्ध है। परन्तु वैदिक छन्द जैसे-जैसे परिष्कृत और सुव्यवस्थित रूप ग्रहण करते गए, वैसे-वैसे वे कवियों में आदर्श बनते गए। अक्षर छन्द बहुत ही लोकप्रिय हो गए और लौकिक संस्कृत में इसकी संख्या 150 से भी अधिक है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

IV. 3 व्याकरणशास्त्र

ब्राह्मण ग्रन्थों में शब्दों के उच्चारण, वचन और काल के बारे में जो व्यवस्थाएँ दी गई हैं, उसके कारण शब्दों का निरूपण करने की आवश्यकता पड़ी और इस प्रकार व्याकरणशास्त्र का आविर्भाव हुआ। यास्क द्वारा रचित ग्रन्थों का अवलोकन करने पर विदित होता है कि वे नामों (संज्ञाओं), सर्वनाम, आख्यात, उपसर्ग और निपात आदि पारिभाषिक शब्दावली से परिचित थे। ब्राह्मण ग्रन्थों में उल्लिखित निरुक्तियाँ काल्पनिक हैं और यास्क पहले व्यक्ति हैं, जिन्होंने इस सम्बन्ध में सिद्धान्तों के प्रतिपादन की दिशा में प्रयत्न किया है। क्रियाओं से संज्ञाओं के उद्भव के विषय में यास्क ने जो लिखा है उसके बारे में शाकटायन, गार्ग्य और अन्य आचार्यों ने भिन्न-भिन्न सिद्धान्त प्रातिपादित किए हैं। शाकटायन के अनुयायियों की कमी नहीं है और उणादिसूत्र सम्भवत: उन जैसे विचारकों के चिन्तन का परिणाम है। व्याकरणशास्त्र का मुख्य उद्देश्य वेदमन्त्रों को सुरक्षित रखना तथा उनके अर्थ का विवेचन करना था। इस दृष्टि से शाकल्य के ऋग्वेद के पदपाठ और प्रातिशाख्य ने अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है।

जिन शिक्षाशास्त्रों की हमें जानकारी है, उनका रचनाकाल पाणिनि के बाद का है। व्याकरणाचार्य दैनन्दिन बोलचाल की भाषा के बारे में अधिक चिन्तित थे और वेदमन्त्रों का उनके लिए कोई खास महत्त्व नहीं था। इससे लौकिक व्याकरण का आविर्भाव हुआ। पाणिनि ने शाकटायन, आपिशलि और शौनक का अपने पूर्ववर्ती के रूप में स्मरण किया है और उसने पूर्व में रहने वालों को प्राच्य और उत्तर में रहने वालों को उदीच्य कहा है। इससे उनके चिन्तन और अध्ययन की व्यापकता का बोध होता है।

1. अष्टाध्यायी

संस्कृत व्याकरण के क्षेत्र में पाणिनि एक ख्यातिप्राप्त नाम है और उनकी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अष्टाध्यायी में लगभग 4000 सूत्र हैं। यह आठ अध्यायों में विभक्त है। पहला अध्याय पारिभाषिक शब्दावली और अर्थों से सम्बन्धित नियमों के बारे में हैं। दूसरा अध्याय संज्ञाओं की रचना और कारक सम्बन्धों, तीसरा अध्याय धातु के साथ प्रत्यय जोड़कर संज्ञाओं की रचना, चौथा व पाँचवाँ अध्याय संज्ञा के साथ प्रत्यय जोड़कर संज्ञाओं की रचना, छठा तथा सातवाँ अध्याय शब्दों के निर्माण में स्वर तथा ध्वनि परिवर्तन और आठवाँ अध्याय वाक्य में शब्दों के स्थान के बारे में हैं। चरम संक्षिप्तता यहाँ ध्येय है, परन्तु जिस विधा का यहाँ निरूपण किया गया है, उसका पूर्णतः अनुपालन करना सम्भव नहीं। पाणिनि उपयुक्त पारिभाषिक शब्दावली ढूंढ़ने का प्रयत्न करते हैं और इसी कारण अनियमिताएँ पैदा होती हैं। प्राचीन भारत में सारा साहित्य कंठस्थ रूप से चलता था और पाणिनि द्वारा निर्धारित क्रम से ग्रन्थ को कंठस्थ करने में सुगमता होती थी। अष्टाध्यायी के अध्ययन से विदित होता है कि पाणिनि को अपेक्षाकृत काठक और मैत्रायणीय संहिता का ज्ञान था। इस पुस्तक का मूल उद्देश्य क्रियाओं से संज्ञा बनाने के नियम तथा उपसर्गों और प्रत्ययों के महत्त्व को बताना है। यद्यपि इसमें ध्वनि परिवर्तन पर कोई अधिक ध्यान नहीं दिया गया है तथापि गुण और वृद्धि के कारण होने वाले परिवर्तनों का इसमें बहुत अच्छा विवरण है। निःसन्देह पाणिनि के विवेचन का मुख्य विषय बोलचाल वाली भाषा है, और विभिन्न तरीकों से इसमें संक्षिप्तता लाई गई है। अनुबन्ध पाणिनि से पूर्वकाल के प्रतीत होते हैं। पाणिनि का काल अनिश्चित है, यद्यपि यह यास्क और शौनक से बाद का है। उनका जन्म शलातुर स्थान में हुआ था और माता का नाम दाक्षी था। इसमें कोई सन्देह नहीं कि वे उत्तर-पश्चिम प्रदेश के रहने वाले थे। परम्परानुसार उनका शरीरान्त, सम्भवतः, सिंह द्वारा हुआ था। कात्यायन ने पाणिनि द्वारा प्रतिपादित नियमों में जो संशोधन किए, उनको देखते हुए पाणिनि को कात्यायन से कुछ शताब्दी पूर्व का माना जाना चाहिए।

2. वार्तिक एवं महाभाष्य

वार्तिक के रचियता कात्यायन का समय ईसा से 300 वर्ष पूर्व माना जाता है। जायसवाल इन्हें 248 से 200 वर्ष ईसा से पूर्व का मानते हैं और वी० जी० परांजपे इन्हें इससे भी पूर्व अवधि का मानते हैं। कात्यायन के समय तक भाषा में जो परिवर्तन आ गए थे, उनके अनुसार उन्होंने पाणिनि द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तों की समालोचना कर उन्हें ठीक किया। कात्यायन और पतञ्जलि में परस्पर कोई विशेष अन्तर नहीं प्रतीत होता है। वस्तुतः कात्यायन ने पाणिनि के व्याकरण की आलोचना कम और पूर्ति अधिक की है। पतञ्जलि अपने महाभाष्य में कात्यायन की आलोचना के विरुद्ध पाणिनि का समर्थन करते हुए प्रतीत होते

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हैं। इसके अतिरिक्त, पतञ्जलि ने कात्यायन तथा दूसरे आलोचकों की आलोचनाओं से पर्याप्त ज्ञान प्राप्त किया। पतञ्जलि ने व्याडि के संग्रह का उल्लेख किया है। कीलहार्न कात्यायन और पतञ्जलि के काल में काफी अन्तर मानते हैं। पतञ्जलि ने लिखा है कि कात्यायन दक्षिणवासी थे। पतञ्जलि को शेष का अवतार माना जाता है। कई उन्हें योगसूत्र का रचनाकार भी मानते हैं। इनका समय अनिश्चित है। उन्होंने पुष्पमित्र शुंग के यज्ञों तथा साकेत और माध्यमिका पर यवनों के आक्रमण का उल्लेख अपने समय की घटनाओं के रूप में किया है। पुष्पमित्र का काल 185 ईसापूर्व है। पाणिनि, कात्यायन और पतञ्जलि के कालानुक्रम के विषय में देवानांप्रिय शब्द रोचक और महत्त्वपूर्ण है। पाणिनि ने कहीं भी इस शब्द का उल्लेख नहीं किया, जबकि कात्यायन ने इस वाक्यांश को उस अर्थ में लिखा है जिसमें इसे अशोक के शिलालेखों में उत्कीर्ण किया गया है। पतञ्जलि ने अपने महाभाष्य को वार्तालाप की शैली में लिखा है। कैयट (बारहवीं शताब्दी) ने महाभाष्य पर टीका लिखी और नागोजीभट्ट (सत्रहवीं शताब्दी) ने इस टीका पर टीका लिखी और ये दोनों ही टीकाएँ इस बात की द्योतक हैं कि पतञ्जलि को समझना कितना कठिन है।

3. अन्य ग्रन्थ

व्याकरण के क्षत्र में अन्य महत्त्वपूर्ण नाम वररुचि का है। उनके द्वारा रचित प्राकृतप्रकाश तथा वाररुचसङ्ग्रह इस सन्दर्भ में विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। एक और विशेष रूप से उल्लेखनीय वैयाकरण भर्तृहरि हुए हैं। इनकी मृत्यु 650 ई० में हुई और इन्होंने महाभाष्य पर टीका लिखी। उनके द्वारा रचित वाक्यपदीय ग्रन्थ बहुत ही प्रसिद्ध है। यह पद्यबद्ध रचना तीन भागों में है जिनमें मुख्यतः भाषा सम्बन्धी दर्शन की जटिल समस्याओं पर विचार किया गया है। भर्तृहरि की विद्वत्ता तथा समकालीन दर्शन का गहन ज्ञान होने के कारण उनकी रचनाओं को समझना कठिन हो गया है।

काशिकावृत्ति की रचना जयादित्य और वामन ने की। यह पाणिनि पर टीका है और इसका रचनाकाल इत्सिग का भारत आने से पूर्व का है। काशिकावृत्ति पर माघ द्वारा उल्लिखित न्यास नामक टीका के लेखक बौद्ध जिनेंद्रबुद्धि हैं। सारङ्गदेव ने जोकि एक अन्य बौद्ध हैं 1172 ई० में दुर्घटवृत्ति की रचना की, जिसमें पाणिनि के जटिल परिच्छेदों पर विचार किया गया है। रामचन्द्र (1400 ई०) ने प्रक्रियाकौमुदी की रचना की है। इस ग्रन्थ में पाणिनि की सामग्री को फिर से व्यवस्थित ढंग से रखा गया है, जिससे संस्कृत तथा व्याकरण की पढ़ाई सरलता से की जा सके। भट्टोजि दीक्षितकृत सिद्धान्तकौमुदी, प्रक्रियाकौमुदी पर आधारित है और प्रौढ़मनोरमा भट्टोजि दीक्षित द्वारा रचित सिद्धान्तकौमुदी पर लिखित

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

टीका है। व्याकरण पढ़ाने के काम में और भी सरलता लाने के लिए वरदराज ने मध्यसिद्धान्तकौमुदी और लघुसिद्धान्तकौमुदी की रचना की।

उणादिसूत्र पाणिनि-पूर्व रचना है जिसकी कल्पना पाणिनि से पहले की है। शाकटायन या वररुचि को इसका लेखक बताया गया है। धातुपाठ में वर्गों के अनुसार धातुरूप दिए गए हैं और इसकी रचना का अधिकांश श्रेय पाणिनि को है। मैत्रेयरक्षित का धातुप्रदीप, देव का दैव, कृष्णलीलाशुक का पुरुषाकार और माधवीयधातुवृत्ति धातुपाठ पर आधारित हैं। गणपाठ प्रक्षिप्तांशों से पूर्ण रचना प्रतीत होती है। पतञ्जलि के बाद शान्तदेव ने फिट्सूत्र लिखा जिसमें वैदिक और लौकिक संस्कृत और उससे सम्बन्धित नियमों का उल्लेख किया गया है। व्याकरण की रचना के सम्बन्ध में विवेचन के नियमों के बारे में अनेक दूसरे ग्रन्थ हैं, जिनमें नागेशभट्ट कृत परिभाषेन्दुशेखर बहुत महत्त्वपूर्ण है।

4. अन्य सम्प्रदाय

व्याकरण के सम्बन्ध में अन्य शाखाएँ भी हैं, जिनमें बहुत रुचिकर साहित्य मिलता है। कातन्त्र शाखा कौमार या कालाप नाम से भी प्रचलित हुई जिसका रचनाकार सातवाहन वंश का राजा शर्ववर्मन् था। इस रचना का कश्मीर और बंगाल में बहुत महत्त्व था और कच्चायन के पालि व्याकरण और द्रविड़ वैयाकरणों की रचनाओं पर भी इसका प्रभाव पड़ा। इसके चार भाग हैं और इसका तिब्बती अनुवाद और इस पर दुर्गसेनकृत टीका इसके पूरक के रूप में हैं। उग्रभूतिकृत शिष्यहितान्यास भी इसी पर एक टीका है। नेपाल में बौद्धों में प्रचलित इन्द्रगोमिन् का व्याकरण जिसका शर्ववर्मन् ने उपयोग किया था अब उपलब्ध नहीं है। चन्द्र का व्याकरण चान्द्रव्याकरण बौद्धों में बहुत प्रसिद्ध था और कश्मीर, तिब्बत, नेपाल और श्रीलंका में उसका प्रचार हुआ था। चन्द्र का महाभाष्य से कुछ विशेष सम्बन्ध प्रतीत होता है, क्योंकि दक्षिण भारत की परम्परा के अनुसार उन्होंने महाभाष्य की आलोचना की। उनका कार्यकाल 470 ई० से 600 ई० के मध्य का प्रतीत होता है। उन्होंने अपने व्याकरण पर स्वयम् टीका लिखी। वे पाणिनि पर काफी आश्रित हैं परन्तु उनकी अपनी विशिष्ट पारिभाषिक शब्दावली है। उनकी पुस्तक में धातुरूप, गणपाठ, उणादिसूत्र और परिभाषासूत्र हैं। कश्यप ने जो कि बारहवीं शताब्दी के बौद्ध भिक्षु थे, बालावबोधन की रचना की। यह ग्रन्थ श्रीलंका में बहुत प्रचलित था।

वस्तुतः जैनेन्द्रव्याकरण पूज्यपाद देवनन्दिन् के द्वारा 678 ई० के लगभग लिखी गई थी। शाकटायनव्याकरण का संकलन शाकटायन (814-877 ई०) ने किया था और उन्होंने पाणिनि, चन्द्र और पारिभाषिक जिनेन्द्र की शब्दावली का प्रयोग किया था। सिद्धहेमचन्द्र में उल्लिखित हेमव्याकरण जयसिंहसिद्धराज

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

द्वारा लिखा गया था। कुछ ऐसे व्याकरण भी थे जो कुछ प्रान्तों में प्रचलित थे। क्रमदीश्वर (1150 ई०) के संक्षिप्तसार में आठ अध्याय हैं, जिसमें से सात संस्कृत व्याकरण के बारे में हैं और आठवाँ प्राकृत के बारे में है। यह व्याकरण पश्चिम बंगाल में बहुत प्रचलित था। पूर्वी बंगाल में पद्मनाभदत्त का सुपद्मव्याकरण प्रचलित था। बिहार और बनारस में अनुभूतिस्वरूप का सारस्वतीप्रक्रिया नामक व्याकरण प्रचलित था।

लिङ्ग के बारे में अनेक लिङ्गानुशासन रचनाएँ हैं जिनमें से एक पाणिनि, दूसरी वररुचि, तीसरी हर्षदेव और चौथी वामन (800 ई०) कृत हैं। हेमचन्द्र तथा शाकटायन ने भी लिङ्गानुशासनों की रचना की।

5. प्राकृत व्याकरण

प्राकृत के व्याकरणों में वररुचि, जो कि पूर्व के रहने वाले थे, का प्राकृतप्रकाश विशेषरूप से उल्लेखनीय है। इस व्याकरण में संस्कृत को सभी प्राकृतों का मूल बताया गया है। महाराष्ट्री प्राकृत का आठ अध्यायों में विशद विवरण दिया गया है और पैशाची, मागधी और शौरसेनी पर एक-एक अध्याय लिखा गया है। यहाँ जिन प्राकृतों का उल्लेख किया गया है, वे अश्वघोष द्वारा प्रयुक्त प्राकृतों से बाद की प्रतीत होती हैं, और इस प्रकार वररुचि का समय लगभग 300 ई० का हो जाता है। चन्द्र का प्राकृणलक्षण नामक व्याकरण दो संस्करणों में उपलब्ध है और उसमें अनेक मूल अवधारणाएँ हैं। नाट्यशास्त्र में भी एक अध्याय प्राकृतों पर है। लंकेश्वर या रावण ने अपनी रचना प्राकृतकामधेनु और उस पर शेषनाग कृत प्राकृतव्याकरणसूत्र नामक टीका के द्वारा पूर्वी विचारधारा में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया था। प्राकृत के वैयाकरणों की पश्चिमी शाखाओं का प्रतिनिधित्व करने वाली पुस्तक वाल्मीकिसूत्र है, परन्तु हेमचन्द्र कृत व्याकरण में अब ये उपलब्ध नहीं है। ब्लाक के अनुसार प्राकृत तथा पालि के वैयाकरण संस्कृत के वैयाकरण से अत्यधिक प्रभावित हैं, परन्तु उन्होंने अपने व्याकरणों में कोई खास बात नहीं कही है परन्तु पिशल ने उनको काफी महत्त्वपूर्ण माना है। पाली के वैयाकरणों में कच्चायन (ग्यारहवीं शताब्दी), मोग्गलायन (बारहवीं शताब्दी) और अग्गवंस (1154 ई०) विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

IV.4 धर्मशास्त्र

अपने सदस्यों के मार्गदर्शन के लिए सूत्रकाल में सूत्रों की रचना विभिन्न चरणों में हुई होगी। सामान्यतया ये सूत्र पूर्व वैदिक साहित्य पर आधारित थे। इस प्रकार पारिवारिक अनुष्ठान, धार्मिक अनुष्ठान और दर्शन को गृह्यसूत्रों, श्रौतसूत्रों, और ब्रह्मसूत्रों के रूप में संहिताबद्ध किया गया। सम्भवतः इसी प्रकार विभिन्न धर्मसूत्रों की रचना भी की गई। ये धर्मसूत्र अपनी विषयवस्तु के लिए वैदिक परम्पराओं पर आधारित हैं। उनमें यत्र-तत्र वैदिक साहित्य के अंश दिए हुए हैं। इन धर्मसूत्रों से धर्मशास्त्र का आरम्भ होता है। जिन रचनाओं को हम कल्पसूत्र कहते हैं, वे एक ही चरण के धर्मश्रौत और गृह्यसूत्रों का संग्रह है। ये रचनाएँ गद्य में हैं, परन्तु कहीं-कहीं पर श्लोक त्रिष्टुपछन्द में भी हैं। इन धर्मसूत्र ग्रन्थों में गौतम, वसिष्ठ, बौधायन, आपस्तंब, मानव और अन्य सूत्रकारों के धर्मसूत्र हैं। इन सब ग्रन्थों की रचना दूसरी या तीसरी शताब्दी ई० पू० में हो चुकी थी, परन्तु वैदिक साहित्य के अध्ययन के ह्रास के साथ-साथ इन धर्मसूत्रों का भी लोप होता गया। तथापि विधि का व्यापक अध्ययन प्रत्येक काल में होता रहा है, और इस आरम्भिक काल के अनेक सूत्रों का विस्तार होता गया या वे छन्दोबद्ध स्मृति रचनाओं में परिणत हो गए। महाभारत के कुछ अंशों और इन स्मृतिग्रन्थों में दिए गए विचारों और अभिव्यंजना शैली में बहुत समानता है। इससे यह सिद्ध होता है कि आरम्भिक काल में विधि के विद्वानों के अध्ययन का यह परिणाम है। ये शाखाएँ ब्राह्मण धर्म को मानने वाली थीं और प्रत्यक का सुनिश्चित कार्य क्षेत्र था। ये क्षेत्र अर्थशास्त्र के अन्तर्गत आने वाले क्षेत्रों से नितान्त भिन्न थे। अर्थशास्त्र का दृष्टिकोण व्यावहारिक है और जीवन की यथार्थताओं से सम्बद्ध हैं। इसके विपरीत धर्मशास्त्र का दृष्टिकोण आदर्शवादी है, जो ब्राह्मण-वाद के सिद्धान्तों के अनुसार जीवन को नियमित करने का प्रयत्न करते हैं। इस प्रकार तुलनात्मक दृष्टि से धर्मशास्त्र का आदर्शवाद, अर्थशास्त्र के यथार्थवाद

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

और भौतिकवाद से नितान्त भिन्न है।

1. मनुस्मृति

धर्म सूत्र विषयक ग्रन्थों से स्मृतियों का निर्माण हुआ। उदाहरण स्वरूप प्रसिद्ध ग्रन्थ मनुस्मृति या अधिक शुद्ध रूप में भृगुसंहिता प्रारम्भिक मानवधर्म-सूत्र से निर्मित है। मनुस्मृति के सम्बन्ध में इस तथ्य को प्रायः स्वीकार नहीं किया जाता। बुह्लर साहब का मत है कि मानवधर्म-सूत्र ही मनुस्मृति का आधार बना होगा। परन्तु काणे इस मत को स्वीकार नहीं करते। मनुस्मृति एक विशिष्ट प्रकार का धर्मशास्त्र है, और महाभारत से इसका घनिष्ठ सम्बन्ध है। प्रथम अध्याय में पौराणिक, वेदान्त सम्बन्धी और सांख्य विचारधाराओं का विवरण है। द्वितीय अध्याय में विधि के स्रोत और ब्रह्मचारियों के कर्त्तव्यों का विवरण दिया गया है। तीसरे से पाँचवें अध्यायों में गृहस्थ के कर्त्तव्यों को बताया गया है, छठे अध्याय में जीवन के दो अन्य आश्रमों वानप्रस्थाश्रम और संन्यास के विषय में बताया गया है। इस प्रकार दूसरे से छठे अध्याय तक व्यक्ति के जीवन पर चर्चा की गई है। सातवें अध्याय में राजा के कर्तव्यों का उल्लेख है। आठवें तथा नवें अध्यायों में दीवानी और फौजदारी कानून और ऋण, धरोहर, उपहार, वेतन, मानहानि, प्रहार और क्षति, चोरी, उत्तराधिकार और विभाजन आदि कानून सम्बन्धी अठारह विषयों पर चर्चा की गई है। दसवें अध्याय में वर्ण-संकर के कर्तव्य और ग्यारहवें अध्याय में उपहार, यज्ञ और पश्चात्ताप के नियम दिए गए हैं। बारहवें अध्याय में मोक्ष के नियम और दूसरे जन्म में अच्छा जीवन व्यतीत करने के लिए पापी का मार्गदर्शन किया गया है। यहाँ पर दी गई विषय वस्तु पर वेदान्त, सांख्य और योग का प्रत्यक्ष प्रभाव है। विधि-निर्माता के रूप में मनु को बहुत सम्मान से स्मरण किया जाता है। वैदिक काल में भी ऋग्वेद में मनु का पिता के रूप में उल्लेख किया गया है। यह स्पष्ट है कि मनुस्मृति के साथ महान् मनु का नाम जुड़ने से उसे बहुत उच्च कर्तव्य तथा लोकप्रियता प्राप्त हुई है। मनुस्मृति में वर्णित विधान की प्रणाली ब्राह्मणवाद के सिद्धान्तों से अत्यधिक प्रभावित है। इसमें आदिकालीन कानून को मानव के अनुकूल बनाया गया है। इसके अनुसार राजा को ईश्वर का अवतार माना जाता है। यहाँ पर यह उल्लेखनीय है कि व्यावहारिक अर्थशास्त्र में पढ़ाए जाने वाले सामाजिक समझौते के सिद्धान्त के अनुसार राजा को प्रजा को सुरक्षा प्रदान करने के बदले में वेतन-भोगी माना गया है। मनुस्मृति पर जो अनेक टीकाएँ की गई हैं। वे इसकी लोकप्रियता और उत्कृष्टता की द्योतक हैं। इस ग्रन्थ में ब्राह्मणवाद के पुनरुत्थान तथा ब्राह्मणों के प्रभुत्व का बहुत अधिक उल्लेख है, उससे यह सुंगकालीनन कृति प्रतीत होती है। इसकी भाषा बहुत सरल है। परन्तु लेखक ने विषय का प्रतिपादन बहुत ही

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गम्भीरता और अधिकार से किया है तथा शैली बहुत ही हृदयग्राही है।

2. याज्ञवल्क्यस्मृति

यह वहुत ही महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है और पर्याप्त प्रभावशाली है। यह शुक्ल यजुर्वेद के पारस्कर-गृह्यसूत्र से सम्बन्धित है, तथा कुछ अंश तक मानव-गृह्यसूत्र से भी। इसमें बृहदारण्यक उपनिषद का भी उल्लेख है। स्पष्टतः यह मनु से काफी बाद की कृति है, क्योंकि इसमें प्रमाण के रूप में लिखित प्रलेखों का विवरण दिया गया है, पाँच कठोर आदर्शों को मान्यता दी गई है और ग्रीक ज्योतिष का इसमें उल्लेख है। इसमें सोने की मुद्रा के लिए नाणक शब्द का प्रयोग किया गया है, जिससे यह 300 ई० से पूर्व की रचना नहीं हो सकती। याज्ञवल्क्य-स्मृति में मनु की अपेक्षा अधिक प्रगतिशील विचार दिए गए हैं और यह कृति मनु की अपेक्षा अधिक व्यवस्थित ढंग से लिखी गई है। मनु के अठारह विषयों में दो और विषयों को जोड़ दिया गया है और आचार-व्यवहार को अधिक व्यवस्थित ढंग से प्रतिपादित किया गया है। यह सव होते हुए भी मनु और याज्ञवल्क्य में अनेक समानताएँ हैं। दोनों में की गई दार्शनिक चर्चाएँ वेदान्त, सांख्य और योग सम्वन्धी विचारों से समान रूप से प्रभावित हैं। इसकी शैली भी मनुस्मृति से मिलती-जुलती है। मनु की भाँति याज्ञवल्क्य स्मृति पर भी अनेक टीकाएँ लिखी गई हैं। जिनमें विज्ञानेश्वर की मिताक्षरा टीका सर्वाधिक प्रसिद्ध है। मिताक्षरा टीका को उत्तर भारत, बनारस और दक्षिण में वहुत मान्यता प्रदान की गई है। अपरार्क (वारहवी शताब्दी) ने स्मृति और बालभट्ट और उसकी पत्नी लक्ष्मीदेवी ने मिताक्षरा पर टीका लिखी, जिसमें सम्पत्ति में महिलाओं के अधिकारों पर बल दिया गया है।

3. अन्य स्मृतिग्रन्थ

नारदस्मृति की रचना दूसरी शताब्दी के बाद कभी हुई होगी, क्योंकि इसमें काफी पांडित्यपूर्ण प्रौढ़ विचार दिए गए हैं और इसमें दीनार शब्द का भी प्रयोग किया गया है। सातवीं शताब्दी में वाण ने इसका उल्लेख किया है और आठवीं शताब्दी में असहाय ने इस पर टीका लिखी।

बृहस्पतिस्मृति संप्रति अपूर्ण रूप में उपलब्ध है, और वह मनु की वार्त्तिक के रूप में प्रतीत होती है। नारद की तुलना में इसमें विधान सम्वन्धी मामलों में अधिक प्रगतिशील विचार दिए गए हैं और सती प्रथा को स्वीकृति देना इसमें विशेष रूप से उल्लेखनीय वात है। यह छठी या सातवीं शताब्दी की रचना हो सकती है। यह दो पाठों में उपलब्ध है। भाव और विचारों में इसमें मनुस्मृति की तरह ही गाम्भीर्य है, परन्तु इसे उतना महत्त्व नहीं मिला है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्मृतियों की सूची में 150 से अधिक स्मृतियाँ उल्लिखित हैं। परन्तु एक ही ग्रन्थ के लघु और वृहद्—दो रूपान्तर होने के कारण इनकी संख्या इतनी बढ़ गई है। उदाहरण के रूप में इन स्मृतियों में से पराशर-स्मृति को ही लीजिए। इस पर माधव (चौदहवीं शताब्दी) ने बहुत बड़ी टीका लिखी और इसका वृहद् संस्करण भी उपलब्ध है, जोल घुसे पाँच गुना बड़ा है। हमें अत्रि, उशनस्, आपस्तंव, दक्ष, शङ्ख, लिखित, संवर्त इत्यादि रचनाकारों की स्मृतियाँ भी उपलब्ध हैं। कुछ स्मृतियाँ आंशिक रूप से उपलब्ध हैं। पितामह, कात्यायन और हारीत इस सम्बन्ध में उल्लेखनीय हैं।

4. निबन्ध

जब स्मृतियों की संख्या काफी बढ़ गई तो छोटी रचनाओं की आवश्यकता अनुभव की जाने लगी और इस प्रकार की रचनाएँ बारहवीं शताब्दी के बाद होने लगीं। ये रचनाएँ धर्मनिबन्ध के नाम से ख्यात हुईं और राजाओं की आज्ञा पर तैयार की जाती थीं। कन्नौज के गोविन्दचन्द्र (1105 से 43 ई०) के विदेश मन्त्री लक्ष्मीधर ने स्मृतिकल्पतरु की रचना की जिसमें धर्म, दीवानी और फौजदारी कानून और कार्यविधि के नियम बताए गए हैं। हलायुध ने बंगाल के राजा लक्ष्मणसेन के लिए ब्राह्मणसर्वस्व नामक ग्रन्थ की रचना की। इस ग्रन्थ को किसी भी रूप में विधि की रचना नहीं माना जा सकता, क्योंकि इसमें मुख्यतः ब्राह्मणों के कर्तव्यों का विवेचन किया गया है। इसी प्रकार की लिखी रचनाएँ देवण्णभट्ट (1200 ई०) की स्मृतिचंद्रिका और यादव राजकुमारी के लिए हेमाद्रि (1260-1309 ई०) की चर्तुवर्णवर्ग चिन्तामणि हैं। मदनपाल के लिए (1360-70 ई०) विश्वेश्वर ने मदनपारिजात की रचना की, जिसमें धार्मिक कर्तव्यों और उत्तराधिकार के कानून का विवेचन है। कानून की दृष्टि से सम्भवतः कुछ महत्त्वपूर्ण रचनाएँ हैं, चण्डेश्वर (1325 ई०) की स्मृतिरत्नाकर और वाचस्पति (1510 ई०) की चिन्तामणि। चौदहवीं शताब्दी में जीमूतवाहन ने धर्मरत्न की रचना की, प्रसिद्ध दायभाग जिसका एक अंग है। उत्तराधिकार के बारे में दायभाग में दिए गए विचार बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। सोलहवीं शताब्दी में अनुष्ठानों, प्रक्रियाओं और उत्तराधिकार के बारे में रघुनंदन ने अपने अट्ठाईस निबन्ध लिखे। कमलाकर ने सत्रहवीं शताब्दी में निर्णयसिन्धु की रचना की और महाराष्ट्र में इसे बहुत ही प्रामाणिक माना जाता है। नीलकण्ठ का भगवन्तभास्कर और मित्रमिश्र का वीरमित्रोदय भी उल्लेखनीय पुस्तकें हैं।

इन सब रचनाओं से यह विदित होता है कि इनके रचनाकारों ने इस विषय पर रचित पूर्व रचनाओं का पूर्ण अध्ययन किया होगा, परन्तु उनके कानूनी पाण्डित्य तथा कानूनी व्याख्या करने की तर्कशक्ति का कोई उल्लेख नहीं किया गया है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

केवल विवादास्पद मामलों में सामञ्जस्य स्थापित करना और स्थानीय रीति-रिवाजों को शाब्दिक वैधता तथा प्रामाणिकता प्रदान करने का प्रयत्न किया गया है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

IV.5 अर्थशास्त्र, नीतिशास्त्र

यह एक भ्रामक धारणा है कि भारतीय अधिकांशतः परलोक के प्रति अधिक चिन्तनशील होते हैं और इहलोक के बारे में उनके कोई विचार नहीं हैं अथवा निश्चयात्मक धारणा नहीं है। इसके परिणामस्वरूप अर्थशास्त्र जैसे लौकिक शास्त्रों का उतना विकास नहीं हुआ जितना कि वेदान्त और योग का हुआ। आद्य साहित्य में धर्म, अर्थ और काम जीवन के तीन लक्ष्य बताए गए हैं। यद्यपि इन लक्ष्यों पर अधिक रचनाएँ नहीं रची गईं, फिर भी ऋग्वेद से उपनिषदों तक की ऋचाओं में इन -पर बल दिया गया है। हिरण्यकेशी गृह्यसूत्र में इन तीन पुरुषार्थों का उल्लेख है और महाभारत में इन्हें स्वीकार किया गया है। भारतीय चिन्तन शैली पर इस विचार का गहरा प्रभाव है और विष्णुस्मृति, मनुस्मृति, पतञ्जलि, अश्वघोष और पंचतन्त्र में इसे स्वीकृति प्रदान की गई है। आरम्भ में अर्थ धर्म का ही एक अंग था, और इसी कारण धर्मसूत्र और स्मृति उन विषयों पर चर्चा करते हुए दिखाई देते हैं, जो वस्तुतः अर्थशास्त्र के विषय हैं। महाभारत में बृहस्पति, विशालाक्ष, उशनस्, प्राचेतस्-मनु और गौरशिरस आदि का धर्म शास्त्र और राज्यशास्त्र पर आधिकारिक विद्वान के रूप में उल्लेख किया गया है। इसके बाद ऐसी शाखाएँ विकसित हुईं, जिन्होंने अर्थ और काम का स्वतंत्र विषयों के रूप में अध्ययन किया। इस प्रकार अर्थशास्त्र और कामशास्त्र का आविर्भाव हुआ।

महाभारत से विदित होता है कि ब्रह्मा ने एक लाख अध्यायों की एक रचना की। शिव तथा विशालाक्ष ने इसको संक्षिप्त करदस हजार अध्यायों का ग्रन्थ बना दिया। इन्द्र ने इसे और घटाकर पाँच सहस्त्र अध्यायों का ग्रन्थ बना दिया, जिसका नाम था बाहुदन्तक। बृहस्पति ने इसे तीन सहस्त्र अध्यायों में संक्षिप्त किया। उशनस् ने बृहस्पति इस ग्रन्थ का संक्षेप कर एक सहस्त्र अध्यायों का एक संस्करण निकाला। यह महत्वपूर्ण बात है कि कौटिल्य ने अपने अर्थशास्त्र

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

में बृहस्पति, बाहुदन्तीपुत्र विशालाक्ष और उशनस् का अधिकारिक विद्वानों के रूप में उल्लेख किया है। महाभारत में भी कणिकनीति, विदुरनीति और इसी प्रकार के कई अन्य अध्याय हैं, जिनमें अर्थशास्त्र के लिए महत्वपूर्ण सामग्री मिलती है। धर्मशास्त्र और अर्थशास्त्र परस्पर निकट का सम्बन्ध रखकर विकसित हुए और याज्ञवल्क्य तथा नारद के ब्राह्मणवाद में यह व्यवस्था की गई है कि इन दोनों में किसी प्रकार का विवाद होने पर धर्मशास्त्र की व्यवस्था अन्तिम होगी। अत: स्वाभाविक है कि जीवन में सफलता और लाभ पर किसी प्रकार का महत्त्व न देते हुए धर्मशास्त्र पाप और नैतिकता के प्रश्नों को उठाता है। इसके विपरीत अर्थशास्त्र जीवन में सफलता और लाभ को सर्वोच्च महत्त्व प्रदान करता है और कर्त्तव्य और नैतिकता को लक्ष्य की प्राप्ति में सहायक मानता है। अर्थशास्त्र एक सम्मानित शास्त्र था और भास, कालिदास, भारवि, माघ और कतिपय अन्य कवियों ने अपने आप को इसका उत्कृष्ट विद्वान माना है। केवल बौद्ध धर्मावलम्बियों ने इस शास्त्र की भर्त्सना की है, क्योंकि यह नैतिकता को गौण स्थान प्रदान करता है। महाभारत में बृहस्पति को इस शास्त्र का संस्थापक माना है और भास ने भी बार्हस्पत्य अर्थशास्त्र का उल्लेख किया है। कौटिल्य ने भी पुराने सिद्धान्तों के बारे में लिखा है और इन सारी बातों से यही सिद्ध होता है कि बृहस्पति इस शास्त्र के संस्थापक थे।

1. अर्थशास्त्र

संस्कृत में कौटिल्य का अर्थशास्त्र, (1400 ई० पू०) वात्स्यायन का कामसूत्र और भरत का नाट्यशास्त्र, तीनों बहुत ही महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ हैं, क्योंकि इनसे भारतीय जीवन के व्यावहारिक पक्ष की जानकारी मिलती है। जिस अर्थशास्त्र की हम यहाँ चर्चा कर रहे हैं, वह 15 अधिकरणों और 180 प्रकरणों में विभाजित है। अध्यायों का आगे विभाजन किया गया है। गद्य भागों के अन्त में एक श्लोक दिया गया है जिसमें उस अंश का सारांश है। प्रथम अधिकरण में राजकुमार की शिक्षा के विषय में बताया गया है, जिसमें सांख्य, योग, लोकायत, वेद तथा वेदांगों का अध्ययन शामिल है। राजा से दुर्वह कर्तव्यों का निर्वाह करने की अपेक्षा की गई है और उसे शासन चलाने में मन्त्रीगण तथा गुप्तचर सहायता प्रदान करते हैं। दूसरे अधिकरण में अधीक्षकों की चर्चा की गई है, क्योंकि इनके माध्यम से सारा शासन चलाया जाता है। तीसरे में कानून तथा चौथे में पुलिस द्वारा बदमाशों के दमन के बारे में बताया गया है। इसमें एक बहुत ही दिलचस्प बात यह है कि ठगने वाले डाक्टरों और व्यापारियों की बदमाशों की तरह ही भर्त्सना की गई है और कृत्रिम मूल्य-वृद्धि, मिलावट तथा गलत माप-तोल को रोकने के लिए उपाय सुझाए गए हैं। पाँचवें अधिकरण में राज्य के सात तत्वों और अन्तर्राज्य संबन्धों

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

की चर्चा की गई है। छठे अधिकरण में शान्ति और उद्योग का वर्णन है। सातवें अधिकरण में कार्यों के छः सम्भव ढंग सुप्रसिद्ध षाड्गुण्य का वर्णन है। आठवें में राजा के दुर्गुण बताए गए हैं। नौवाँ तथा दसवाँ युद्ध के बारे में है। ग्यारहवें में यह बताया गया है कि किस प्रकार वैरी की सेना में भेदभाव पैदा कर उन्हें नष्ट किया जा सकता है। बारहवें अधिकरण में यह बताया गया है कि अपने साम्राज्य का किस प्रकार विस्तार किया जाय, तेरहवें में सेना से घिरे नगर को कब्जे में कर लेने के बारे में बताया गया है। चौदहवें अध्याय में विष के वीभत्स प्रयोग के बारे में बताया गया है। पन्द्रहवें और अन्तिम अध्याय में कार्य की योजना और चर्चा के दौरान उपयोग में लाए गए बत्तीस सिद्धान्तों का क्रमिक प्रतिपादन किया गया है।

अर्थशास्त्र को राजनीति की एक नियमित पुस्तक मानना गलत होगा। इसमें की गई सभी चर्चाओं का आधार ब्राह्मणवाद के विचार और विश्वास हैं। लेखक को राजतंत्र के उद्गम अधिकार और शक्ति का सम्बन्ध तथा भाग्य और मानवीय प्रयत्नों सम्बन्धी चर्चाओं से कोई सरोकार नहीं है। अर्थशास्त्र के अनुसार प्रशासन का होना बहुत ही आवश्यक है, क्योंकि बिना इसके अराजकता हो जायगी, जिसमें बलशाली कमजोर को नष्ट कर देगा। वर्णाश्रम की व्यवस्था से समाज और व्यक्ति का जीवन सुव्यवस्थित हो जाता है और धर्म, अर्थ और काम की प्राप्ति में भी सहायता मिलती है। अर्थशास्त्र राजा से यह अपेक्षा रखता है कि वह व्यवस्था बनाए रखे तथा समाज के कल्याण को ध्यान में रखते हुए उसकी रक्षा करें। अर्थशास्त्र विदेशी आक्रमण अवश्यम्भावी मानता है और इसे प्रोत्साहित भी करता है, परन्तु आन्तरिक शान्ति बनाए रखने के लिए कहता है। अर्थशास्त्र अपनी मान्यताओं और वांछित फल की प्राप्ति के लिए साधनों के प्रयोग में बहुत ही दृढ़ है। ऐसा प्रतीत होता है कि अर्थशास्त्र इस सिद्धान्त को मानता है कि लक्ष्य की प्राप्ति के लिए साधनों का अच्छाबुरा होना महत्त्वपूर्ण नहीं।

अनेक विद्वान अर्थशास्त्र को गद्य सूत्र समझते हैं, जिसमें साथ-साथ उसका भाष्य दिया गया है। परन्तु यहाँ पर सूत्र और भाष्य में अन्तर करना सम्भव नहीं है। किसी भी अध्याय की चर्चा की समाप्ति पर समाहार के रूप में श्लोक दिए गए हैं। यहाँ पर स्वर एक अधिकारी विद्वान का है, और किसी भी समस्या पर पूर्ववर्ती विचारकों के विवादास्पद विचारों पर चर्चा करने के बाद उस पर निर्णय दिया गया है, जो कि सामान्यतया कौटिल्य का अपना निर्णय होता है। यत्र-तत्र कुछ जटिल वाक्य रचनाओं को छोड़ कर सामान्यतया इस ग्रन्थ की भाषा सरल और व्याकरण की दृष्टि से शुद्ध है। पारिभाषिक शब्दावली का प्रयोग करने के कारण अर्थ कई स्थानों पर दुरूह हो गया है, परन्तु सारे ग्रन्थ में इन्होंने विवेक तथा व्यवहार कुशलता का परिचय दिया है, जोकि कुशल प्रशासक के गुण होने

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आवश्यक हैं। इसका लेखक विष्णुगुप्त चाणक्य माना गया है, जो चन्द्रगुप्त मौर्य का ख्यातिप्राप्त मंत्री था। यह भी निश्चित नहीं है कि उनका नाम कौटिल्य या कौटल्य था। कौटिल्य उन्हें कुटिल राजनीतिज्ञ होने के कारण कहा जाता था और कौटिल्य उनके गोत्र का नाम है। एक विचार यह भी है कि लेखक तक्षशिला में राजनीति का प्राचार्य था और यह इस बात का द्योतक है कि अनेक राजनीतिक और प्रशासनिक समस्याओं के प्रति उनके विचार विशुद्ध सैद्धान्तिक हैं। परन्तु पुस्तक में ऐसे संदर्भ हैं जिनसे यह प्रतीत होता है कि लेखक पाटलिपुत्र के इर्द-गिर्द के क्षेत्र की स्थिति से पूरी तरह से परिचित था। और इस संबन्ध में राष्ट्रीय विपदा के रूप में उसके बाढ़ों के उल्लेख को लिया जा सकता है। पुराणों और मुद्राराक्षस से विदित होता है कि चाणक्य चन्द्रगुप्त मौर्य का मंत्री था और वह नन्दवंश के उन्मूलन के लिए उत्तरदायी था। परन्तु मेगस्थनीज ने, जो काफी समय भारत में रहा, कहीं भी चाणक्य या उसकी उपलब्धियों का उल्लेख नहीं किया है। अर्थशास्त्र में उल्लिखित विधान छोटे राज्य के लिए उपयोगी हो सकते हैं, एक बड़े साम्राज्य के लिए नहीं। स्टाइन ने अर्थशास्त्र और मेगस्थनीज के विवरण में समानता खोजने का प्रयत्न किया है, परन्तु उससे कोई खास परिणाम प्राप्त नहीं हुए, क्योंकि महत्त्वपूर्ण विवरणों में कोई खास समानता नहीं है। यह बहुत ही आश्चर्यजनक बात है कि अर्थशास्त्र में पाटलिपुत्र की लकड़ी की किलाबन्दी का कहीं भी उल्लेख नहीं किया है, जबकि उसमें पत्थर के निर्माण कार्यों का विवरण अवश्य दिया हुआ है। इस संबंध में कोई निष्कर्ष निकालना खतरे से खाली नहीं है।

मैगस्थनीज ने अनेक ऐसे मौर्यकालीन रीति-रिवाजों के बारे में बताया है, जिनका अर्थशास्त्र में कोई उल्लेख नहीं है। अनेक विद्वान, जो चाणक्य को चन्द्रगुप्त का अमात्य नहीं मानते, साहित्यिक आधार पर अर्थशास्त्र को 300 ई० की रचना मानते हैं। दण्डी इसे प्राचीन रचना नही मानते। कालिदास को इसकी जानकारी थी। जैन रचनाएँ, **नन्दीसूत्र** और **अनुयोगाद्वारसूत्र** जो 500 ई० की रचनाएँ हैं, चाणक्य तथा कौटिल्य से परिचित थे। **कामसूत्र** जो सम्भवत: 400 ई० की रचना है, अर्थशास्त्र के बाद की रचना लगता है। इन सभी तथ्यों से इस बात की पुष्टि होती है कि अर्थशास्त्र 300 ई० की रचना है।

2. नीतिशास्त्र

कामन्दकीय नीतिसार अर्थशास्त्र पर आधारित है, परन्तु इसका संशोधित रूप नहीं है। अर्थशास्त्र के दूसरे से चौथे अध्यायों में दिए गए प्रशासनिक ब्यौरे तथा अन्तिम दो अध्यायों के कुछ विषयों को इसमें छोड़ दिया गया है। नीतिसार उपदेशात्मक नैतिकता के विषय में बताता है जबकि अर्थशास्त्र को इसमें

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कोई रूचि नहीं। इसके विपरीत विदेश नीति के कतिपय सिद्धान्तों की इसमें विस्तार से चर्चा की गई है। इसकी तिथि संदिग्ध है। पंचतन्त्र, कालिदास और दण्डी को इसका ज्ञान प्रतीत नहीं होता। परन्तु भवभूति अपने मालतीमाधव में प्रधानपात्र का नाम कामन्दकी रखते हैं। वामन को, जो आठवीं शताब्दी में हुए, इसका ज्ञान था। और अतः नीतिसार को सातवीं शताब्दी की रचना माना जा सकता है।

सोमदेवसूरि कृत नीतिवाक्यामृत में राजा के कर्तव्यों को वताया गया है। विषय प्रतिपादन की दृष्टि से यह अर्थशास्त्र से प्रभावित है, परन्तु भावना की दृष्टि से इनमें समानता नहीं है। शाब्दिक अर्थ की दष्टि से यह एक नीति अध्यापक की कृति है राजनीतिज्ञ की नहीं। निस्सन्देह लेखक जैन है, परन्तु इस रचना में ब्राह्मण-वादी विचारधारा, जाति और उनके कर्तव्य तथा सिद्धान्तों को वताया गया है। राजा के लिए लोकायत नीति की अनुशंसा करने में इन्होंने यथार्थवादी दृष्टिकोण से काम लिया है। राजा के लिए तपश्चर्या को यह मूर्खतापूर्ण समझते हैं। कौटिल्य सूत्र शैली में रचना करते हैं जवकि कामन्दकि सरल श्लोकों में रचना करते हैं, सोमदेव सारगर्भित छोटे वाक्यों में स्पष्ट अभिव्यक्ति करते हैं। उनका गहन अध्ययन उनकी रचनाओं से परिलक्षित होता है।

हेमचन्द्र (1088-1172 ई०) की लघुअर्हन्नीति, जैसे नाम से स्पष्ट है, प्राकृत में एक वड़े ग्रन्थ का सारांश हैं। इसकी रचना श्लोकों में की गई है और युद्ध, दण्ड, कानून और तपश्चर्या के वारे में इसमें वताया गया है। इस रचना से यह स्पष्ट है कि जैन राजनीतिज्ञ ब्राह्मणवाद पर अत्यधिक निर्भर थे। उन्होंने मनु के अट्ठारह विधानों को स्वीकार किया है और युद्ध तथा अनैतिक प्रथाओं की भर्त्सना में उनकी जैन विचारधारा परिलक्षित होती है।

अन्य ब्राह्मणवाद के ग्रन्थों में भोज का युक्तिकल्पतरु, चण्डेश्वर का नीति-रत्नाकर और शुक्रनीति का उल्लेख किया जा सकता है।

3. अन्य शास्त्र

अर्थशास्त्र का कई अन्य छोटे-छोटे शास्त्रों से सम्बन्ध है। धनुर्वेद का विक्रमादित्य, सदाशिव और सारंगदत्त से सम्बन्ध माना गया है। इन नामों पर जो रचनाएँ हैं, वे इससे पहले की नहीं हो सकतीं। शिल्पशास्त्र या वास्तुविद्या में कई रचनाएँ छद्म नामों से हैं जैसे मयमत, सनत्कुमार वास्तुशास्त्र मानसार और श्रीकुमार का शिल्परत्न। हस्त्यायुर्वेद में हाथी शास्त्र का ज्ञान ऋषि पालकाप्य और अङ्ग के राजा रोमपाल के बीच वार्तालाप के रूप में दिया गया है। नारायण की मातङ्गलीला का सार भी यही है और अपेक्षाकृत आधुनिक है। अश्वशास्त्र का सम्वन्ध गण के अश्वायुर्वेद से जयदत्त और दिनकर के

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अश्ववैद्यक से वर्धमान की योगमञ्जरी और नकुल की अश्वचिकित्सित से है। भोज के शालिहोत्र में 138 श्लोकों में अश्वों और उनकी बीमारियों का वर्णन है। अगस्तिमत, बुद्धभट्ट की रत्नपरीक्षा और नारायण पण्डित की नवरत्नपरीक्षा का सम्बन्ध रत्नों के विज्ञान से है। चौरशास्त्र बहुत ही दिलचस्प है और इस विषय पर हमारे पास षण्मुखकल्प है। नाट्यशास्त्र में संगीत और नाटक के विषय में बताया गया है और इस सम्बन्ध में हमारे पास शार्ङ्गदेव का संगीत-रत्नाकर और दामोदर का संगीतदर्पण हैं। ये रचनाएँ अपने आप में बहुत महत्त्व-पूर्ण हैं। सोमदेव का रागविबोध बहुत समय बाद की रचना है। इसमें रागों के विषय में बताया गया है और लेखक की रचनाओं को टिप्पणियों सहित दिया गया है।

चित्रकला के सम्बन्ध में अधिक साहित्य नहीं है। केवल विष्णुधर्मोत्तर में एक अध्याय इस विषय पर लिखा गया है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

IV.6 कामशास्त्र

काम तीसरा पुरुषार्थ है और इस विषय के लेखकों ने इस पर बड़ी शालीनता से विचार किया है। नागरक अर्थात् परिष्कृत रुचि वाले और सुसंस्कृत व्यक्ति के साथ-साथ गणिकाओं, राजकुमारियों और अन्य उच्च पदाधिकारियों की कन्याओं को इसका अध्ययन करने की अनुमति दी गई है। इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि कामशास्त्र लिखनेवाले लेखक अर्थशास्त्र से भी सुपरिचित हों।

1. कामसूत्र

कामसूत्र इस शास्त्र का बहुत ही महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है और इसके लेखक वात्स्यायन मल्लनाग हैं। इस रचना में चाणक्य के अर्थशास्त्र का निकटता से अनुकरण किया गया है और लेखक इस सम्बन्ध में बहुत सावधान है, क्योंकि तीसरे पुरुषार्थ काम का उपयोग अन्य दो पुरुषार्थों—धर्म और अर्थ को ध्यान में रखकर किया जाना है। अर्थशास्त्र इस सिद्धान्त पर विश्वास करता है कि युद्ध में जो कुछ भी किया जाय वह सही है। कामसूत्र इस सिद्धान्त को प्रेम के क्षेत्र में भी ले जाता है। अतः कामसूत्र केवल शैली और विषय प्रतिपादन की दृष्टि से ही अर्थशास्त्र से मेल नहीं खाता, अपितु दोनों की नैतिक संहिता भी एक जैसी प्रतीत होती है। कामसूत्र के सात भाग हैं। पहले भाग में मनुष्य के तीन लक्ष्यों, शास्त्र के उद्देश्यों, सुसंस्कृत व्यक्ति के लक्षण और इसी प्रकार की अन्य बातें बताई गई हैं। बाद के अध्यायों में यह बताया गया है कि कुमारी, विवाहित महिला और गणिकाओं के साथ किस प्रकार सम्बन्ध स्थापित करने चाहिए। इसमें वैवाहिक उत्सवों के विषय में भी बताया गया है। अतः यह गृह्यसूत्र से प्रभावित प्रतीत होता है। इस रचना का सामाजिक महत्त्व वस्तुतः विचारणीय है।

अश्वघोष और कालिदास दोनों ने ही कामशास्त्र के बारे में अपनी जानकारी को अभिव्यक्त करते हैं, परन्तु निश्चयात्मक रूप से यह कहना कठिन है कि यह

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ज्ञान वात्स्यायन के कामसूत्र का ही है। केवल सुबन्धु ने मल्लनाग का उल्लेख किया है और उसकी रचना का अनुसरण भी किया है। माघ, भवभूति और वराहमिहिर भी निश्चित रूप से इस कृति को जानते थे। इसमें आंध्र और आभीरों के राजाओं के रूप में उल्लेख करने से या कुन्तल शातकर्णि सातवाहन, जिसने गलती से अपनी रानी को मार डाला था, का उल्लेख करने से किसी निष्कर्ष पर नहीं पहुँचा जा सकता। इस ग्रन्थ को चौथी शताब्दी ई० में रखा गया है, जो ठीक नहीं प्रतीत होता, क्योंकि इसकी रचना अर्थशास्त्र के बाद हुई और कालिदास को इसकी जानकारी नहीं थी। यह पाँचवीं से सातवीं शताब्दी के बीच का ग्रन्थ हो सकता है।

2. अन्य ग्रन्थ

इस शास्त्र पर कामसूत्र पहली कृति नहीं है। वैदिक विद्वान श्वेतकेतु पहला लेखक था जिनकी रचना को पाञ्चाल बाभ्रव्य ने सात अध्यायों में संक्षिप्त किया था। पाटलीपुत्र की गणिकाओं के अनुरोध पर दत्तक ने इन सात अध्यायों में से छठे अध्याय को विस्तृत विवेचन के लिए चुना। बाद में, चारायण, सुवर्णनाभ, घोटकमुख, जोनर्दीय, गोणिकापुत्र और कुचुमार ने अन्य अध्यायों को विकसित किया। ये लेखक ऐतिहासिक व्यक्ति प्रतीत होते हैं, क्योंकि अर्थशास्त्र और महाभारत में इनका उल्लेख किया गया है। अश्वघोष ने भी कामशास्त्र के किसी ग्रन्थ के बारे में अपने ज्ञान का परिचय दिया है।

कामसूत्र पर यशोधर ने जयमङ्गला नामक प्रख्यात टीका लिखी। यह वीसलदेव (1243-61 ई०) के काल में लिखी गई थी। इस शास्त्र पर ज्योतिरीश्वर का पञ्चसायक 1200 ई० से पहले हुए कोक्कक का रतिरहस्य, जयदेव की रतिमञ्जरी, और सोलहवीं शताब्दी के कल्याणमल्ल की अनंगरंग आदि अन्य रचनाएँ हैं। रतिशास्त्र नामक एक कृति भी है जिसका रचयिता नागार्जुन को माना गया है, परन्तु उसके बारे में कोई जानकारी उपलब्ध नहीं हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

IV.7 मोक्षशास्त्र

ऋग्वेद के दार्शनिक सूक्तपुरुषसूक्त (X-90), हिरण्यगर्भसूक्त (X.121), नासदीयसूक्त (X.129) और दूसरे सूक्त जो विश्वकर्मा को सम्बोधित हैं, साथ ही दीर्घतमस् मामतेय (I.164), वामदेव (14.26) और अन्य चिन्तकों के जो मन्त्रदर्शन हैं, वे न केवल दार्शनिक विचार धारा के आदिकाल के द्योतक हैं, अपितु दार्शनिक विचारधारा की अभिव्यक्ति की प्रारम्भिक अवस्था का भी निर्देश करते हैं। इसमें अथर्ववेद से प्राप्त वह सब सामग्री भी सम्मिलित की जा सकती है जिसमें भारतीय दर्शन के पारिभाषिक शब्द उपलब्ध है, जैसे स्कम्भ, काल (XIX.53), ब्रह्मन् (XI.8) तथा इसी प्रकार के दूसरे सूक्त। ये न्यूनाधिक रूप में सम्बन्धित कवियों के उत्प्रेरित कथन थे। ब्राह्मण ग्रन्थों में कर्मकाण्ड का विधान होते हुए भी, इन कवियों ने ज्ञान को महत्त्व देकर दार्शनिक चिन्तन की प्रक्रिया आरम्भ की और इस चिन्तन की खोज में विश्लेषण और आत्मिक तत्त्वों का सूत्रपात किया। आरण्यक ग्रन्थों में दार्शनिक यथार्थता को प्राप्त करने के लिए आत्मचिन्तन करने के लिए कहा गया है। उपनिषदों में आकर हमें वास्तविक दर्शन का ज्ञान होता है। इनमें यथार्थता का स्वरूप, सृष्टि का उद्भव और यथार्थता से मानव का सम्बन्ध आदि समस्याओं पर विचार किया गया है। वस्तुतः उपनिषद् हमारा प्रथम क्रमबद्ध दार्शनिक साहित्य है। उपनिषदों के अठारह सिद्धान्त बाद में विकसित भारतीय दार्शनिक चिन्तन की प्रारम्भिक अवस्था के द्योतक हैं। परन्तु यहाँ जो विचार व्यक्त किए गए हैं, वे अस्त-व्यस्त अवस्था में हैं। अभी भारतीय सम्प्रदाय का युग आरम्भ नहीं हुआ था। इस युग का सूत्रपात होने पर वस्तुतः विभिन्न शास्त्रीय दार्शनिक सम्प्रदायों में उपनिषदों की सामग्री को ही व्यवस्थित रूप दिया गया। पूर्वकालीन सामग्री को व्यवस्थित करने का काम बहुत समय पहले आरम्भ हो गया था और इसके अंकुर कल्पसूत्रों में देखे जा सकते हैं। परन्तु बेल्वलकर का तर्क है कि अनेक ब्रह्म सूत्र ऐसे रहे होंगे, जिन्होंने उपनिषदों के

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वेदान्तिक चिन्तन को संहिता बद्ध किया होगा जिन्हें बाद में वेदान्त के नाम से जाना गया। सूत्रों तक की समस्त साहित्य-रचना भगवान् बुद्ध से पहले की मानी जाती है और बुद्ध धर्म के साहित्य में भी ब्राह्मण युद्धों में निहित दार्शनिक चिन्तन के तब तक के विकास की झाँकी मिलती है। ब्रह्मजालसुत्त से विदित होता है कि उस समय अनेक प्रकार के भ्रामक दार्शनिक सिद्धान्त प्रचलित थे। इस प्रकार के वातावरण में सम्प्रदाय बने और उनके साहित्य का निर्माण हुआ। सभी सम्प्रदायों का स्वरूप लगभग एक समान है। सर्वप्रथम सूत्रकार ने इन सम्प्रदायों की विचार-धारा को संक्षिप्त सूत्रों में संहितावद्ध किया। इसके बाद भाष्यकार ने अपने बृहद्-भाष्य में इन सूत्रों पर टीका लिखी और फिर वार्त्तिककारों और संग्रहकारों ने पूर्व लेखकों के विचारों को स्पष्ट तथा संक्षिप्त किया। इस प्रकार निर्मित साहित्य प्रचुर मात्रा में है।

1. पूर्वमीमांसा

दर्शन की पद्धति की अपेक्षा पूर्वमीमांसा वैज्ञानिक व्याख्या करने वाला शास्त्र कहा जा सकता है। पूर्वमीमांसा को अध्वरमीमांसा, धर्ममीमांसा या यज्ञमीमांसा भी कहते हैं। ये नाम कर्मकाण्ड-पद्धति के महत्त्व को निर्दिष्ट करते हैं। वैदिक यज्ञ आगमों में उल्लिखित विधि विधान से सम्पन्न करने आवश्यक हैं, क्योंकि यही एक ऐसा यज्ञ है जो यजमान को मनुष्य के सर्वोच्च लक्ष्यस्वरूप परम इच्छित फल, स्वर्ग को प्राप्त करा सकता है। आगमों के अनुसार यज्ञ करना सर्वश्रेष्ठ धर्म है और इस धर्म को स्पष्ट करने में केवल वेद अधिकृत है। परन्तु यज्ञ का सही ढंग से किया जाना मुख्यत: वेदों की सही व्याख्या करने में निहित है। पुरोहितों ने वेदों की व्याख्या की और यज्ञ-सम्बन्धी विज्ञान के विकास के साथ-साथ पूर्वमीमांसा सम्प्रदाय को भी आगे बढ़ाया। पूर्वमीमांसा सम्प्रदाय का आधार जैमिनिसूत्र है। इसके बारह अध्यायों में समस्त यज्ञशास्त्र तथा व्याखया के नियम दिए गए हैं। उपवर्ष और शबरस्वामी ने इन सूत्रों पर टीका की है। शबरस्वामी बौद्ध दर्शन को जानते थे। उनका आत्मा सम्बन्धी सिद्धान्त रामानुज के सिद्धान्त के अनुरूप प्रतीत होता है। प्रभाकर ने शबरभाष्य के व्याख्यानात्मक प्रबन्ध पर बृहती की और कुमारिल ने श्लोकवार्तिक, तन्त्रवार्तिक और टुप्टीका की रचना की। कुमारिल ने बौद्ध धर्म की कटु आलोचना की है। वे द्रविड़ भाषाएँ भी जानते थे और इनके विषय में एक उल्लेखनीय बात यह है कि वे दूसरी भाषाओं से लिए गए शब्दों को उसी प्रकार अपनाने के लिए कहते थे, जैसे वे संस्कृत के ही हों। प्रभाकर और कुमारिल की विचार विभिन्नता से ही मीमांसा के गुरु और भाट्ट सम्प्रदायों का जन्म हुआ। मुरारि तीसरे लेखक हैं जो कुमारिल तथा प्रभाकर दोनों से भिन्न मत रखते हैं, परन्तु उनकी रचना उपलब्ध

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नहीं है। मण्डनमिश्र ने मीमांसानुक्रमणी और विधिविवेक की रचना की। वाचस्पतिमिश्र ने न्यायकणिका लिखी जो विधिविवेक परएक टीका है। अपने तत्त्वविन्दु ग्रन्थ में वे कुमारिल के विचारों को स्पष्ट करते हैं। इस पद्धति के वाद की रचनाओं में माधवाचार्य का न्यायमालाविस्तार (चौदहवीं शताब्दी), आपोदेव का मीमांसान्यायप्रकाश, लौगाक्षिभास्कर का अर्थसंग्रह और नारायण भट्ट का मानमेयोदय उल्लेखनीय कृतियाँ हैं। धर्मशास्त्र पर मीमांसा का अत्यधिक प्रभाव है, क्योंकि धर्मशास्त्र के सिद्धान्तों को स्पष्ट करने में मीमांसा का प्रामाणिक रूप से निरन्तर उपयोग किया जाता रहा है।

2. उत्तरमीमांसा

रूढ़िगत विचारधारा के अनुसार पूर्वमीमांसा और उत्तरमीमांसा दोनों दर्शन की एक ही पद्धति का निर्देश करते हैं। जैकोबी के अनुसार कुमारिल और शंकर के कारण ये दोनों सम्प्रदाय अलग हो गए। उत्तरमीमांसा को ब्रह्ममीमांसा के नाम से भी पुकारा जाता है, क्योंकि इस सम्प्रदाय के अनुसार जीवन की अन्तिम उपलब्धि ब्रह्म की प्राप्ति है। इसे शारीरिकमीमांसा भी कहते हैं क्योंकि ब्रह्म मानव के शरीर में वास करने लगा है। उत्तरमीमांसा में एक ऐसे सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया है जिसका आविर्भाव उपनिषदों के मुख्य सिद्धान्तों से हुआ है। बादरायण के ब्रह्मसूत्र में इसी प्रकार के प्रयत्नों का उल्लेख किया गया है। वादरायण ने अपने पूर्ववर्तियों के रूप में अनेक दार्शनिकों जैसे जैमिनि, आत्रेय, अश्मरथ्य, औडुलोमि, काशकृत्स्न, कार्ष्णाजिनि आदि का उल्लेख किया है। जमिनि और वादरायण दोनों ने सूत्रों में अपने विषय में उल्लेख किया है जो कि संस्कृत के लेखकों के लिए सामान्य प्रक्रिया है। बादरायण के सूत्रों से ऐसा प्रतीत होता है कि वे सांख्य, वैशेषिक, बौद्ध, अर्हत् पाशुपतों और पाञ्चरात्रों के विरुद्ध थे। सम्भवत: इन्होंने ही अन्यत्व और अनन्यत्व के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया होगा, क्योंकि जाने-अनजाने इन्होंने अनन्यत्व शब्द का प्रयोग किया है। परन्तु बादरायण के सूत्रों में शंकर द्वारा लोकविश्रुत मायावाद का कोई उल्लेख नहीं मिलता। सम्भवत: भगवद्गीता में अनेक ब्रह्मसूत्रों (XIII.4) के उल्लेख हुए होंगे, किन्तु यदि ऐसा हुआ भी हो, तो आज वे विलुप्त हो गए हैं। बादरायण के सूत्रों पर अनेक भाष्य लिखे गए जिनमें शंकर, भास्कर, रामानुज, वल्लभ, माधव तथा कुछ अन्य लेखकों के भाष्य उपलब्ध हैं।

गौड़पाद जो प्रबल जनश्रुति के अनुसार शंकर के गुरु, गोविन्द के गुरु थे, कारिकाओं का उल्लेख करना भी यहाँ युक्तिसंगत होगा। यह रचना माण्डूक्य उपनिषद् पर आधारित है और बौद्धों के शून्यवाद से अत्यधिक प्रभावित प्रतीत होती है। वाल्लेसर ने गौड़पाद के अस्तित्व की ऐतिहासिकता को चुनौती देने का

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जो प्रयत्न किया है वह निरर्थक है, क्योंकि गौड़पाद से ही शंकर ने अपने सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। शंकरभाष्य (788-800 ई०) बहुत ही पाण्डित्यपूर्ण, युक्तियुक्त और प्रभावोत्पादक ढंग से लिखा हुआ है और इसमें मायावाद के पक्ष में तर्क देकर मायावाद के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया है। अनन्तगिरि द्वारा लिखित शंकरजय और माधव द्वारा लिखित शंकरदिग्विजय नामक ग्रन्थ में लिखी गई शंकराचार्य की जीवनियाँ बहुत ही अविश्वसनीय हैं। शंकर को अनेक ग्रन्थों का प्रणेता बताया गया है, परन्तु इन अनेक ग्रन्थों में केवल उपनिषद् भगवद्गीता, और ब्रह्मसूत्र पर लिखे भाष्य तथा उपदेशसाहस्री और आत्मबोध ही प्रामाणिक कहे जा सकते हैं। शंकराचार्य ने जिस विदग्धता से न केवल उपनिषदों में, अपितु भगवद्गीता और ब्रह्मसूत्र में सामंजस्य स्थापित किया है वह प्रशंसनीय है। संस्कृत गद्य पर उनका असाधारण अधिकार था। इन्होंने बहुत ही गम्भीर तार्किक विचारों को प्रसाद गुण सम्पन्न सरल शैली में व्यक्त किया है। इस विषय में पतञ्जलि, वात्स्यायन या शबर जैसे किसी भी भाष्यकार की इनसे तुलना नहीं की जा सकती।

शंकर के शिष्य पद्मपाद ने पञ्चपादिका की रचना की और उस पर प्रकाशात्मन् ने टीका लिखी। वाचस्पति मिश्र ने प्रसिद्ध भामती नामक टीका लिखी जिस पर अनेक टीकाकारों ने टीकाएँ लिखीं। पञ्चपादिका और भामती की टीकाओं के आधार पर शंकरोत्तर वेदान्त के विवरण और भामती नामक दो सम्प्रदाय चले। वेदान्त की तर्क शैली ग्रन्थों में श्रीहर्ष का खंडनखंडखाद्य महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है, जिसमें सभी प्रकार के ज्ञान की निरर्थकता और शंकर के दृष्टिकोण की सार्थकता सिद्ध की गई है। इस सम्प्रदाय के बारे में अनेक ग्रन्थों की रचना हुई जिनमें सदानन्द का वेदान्तसार और धर्मराज की वेदान्तपरिभाषा प्रमुख लोकप्रिय पुस्तक हैं।

रामानुज (1080-1137 ई०) ने उत्तरमीमांसा के एक पृथक् सम्प्रदाय का प्रवर्तन किया और विशिष्टाद्वैत और भक्ति सिद्धान्त का प्रतिपादन करते हैं। उन्होंने श्रीभाष्य नाम से ब्रह्मसूत्र की टीका लिखी। इसके अलावा उन्होंने गीताभाष्य, वेदार्थसंग्रह, वेदान्तसार और वेदान्तदीप आदि ग्रन्थ भी लिखे। केवलाद्वैतवाद या शांकर मायावाद के स्थान पर रामानुज ने विशिष्टाद्वैतवाद का प्रचार किया। रामानुज का दर्शन शंकर की दार्शनिक आधारभूमि से भिन्न है और उनके सारे ग्रन्थों में वस्तुतः शंकर के सिद्धान्तों की आलोचना है।

ब्रह्मसूत्र पर निम्बार्क का वेदान्तपरिजातसौरभ, वल्लभ का (1376-1430 ई०) अणुभाष्य और मध्व या आनन्दतीर्थ (1197-1276 ई०) का भाष्य अन्य महत्त्वपूर्ण टीकाएँ हैं। वल्लभ का सिद्धान्त शुद्धाद्वैत और मध्वा का द्वैत कहलाता है।

वेदान्त पर साहित्य रचना काफी समय बाद तक होती रही और योगवसिष्ठ

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इनमें विशेष रूप से उल्लेखनीय है। यह ग्रन्थ काफी बड़ा है और इसमें छः अध्याय हैं। यह ग्रन्थ विभिन्न दार्शनिक विचारों का अद्‌भुत मिश्रण है और असाधारण काव्यात्मक गुणों से सम्पन्न है।

3. न्याय

यह सम्भव है कि भाष्य करने की पूर्वमीमांसा की पद्धति से ही न्याय के सिद्धान्तों का भी आविर्भाव हुआ हो। गौतम के न्यायसूत्रों में सोलह पदार्थों का सम्यक् विवेचन है। पदार्थ शब्द का अर्थ यहाँ तात्त्विक महत्त्व का नहीं है, इसका सम्बन्ध प्रमाण से है। न्याय एक तर्कशास्त्र है जो कि शास्त्रार्थ के लिए बहुत ही आवश्यक है। न्याय में जिन तीन विषयों का विवेचन किया गया है वे है प्रमाण, प्रमाणों की वैधता और हेत्वाभास। न्याय दर्शन के तात्त्विक अर्थ जानने के लिए कणाद के वैशेषिकसूत्र जैसे सहयोगी दर्शनों का अध्ययन करना भी आवश्यक है। न्याय सूत्रों पर पहला प्रामाणिक भाष्य न्यायभाष्य के नाम से पक्षिलस्वामी वात्स्यायन ने लिखा। शैली और विषय प्रतिपादन में यह ग्रन्थ महाभाष्य के समान है। अनन्तर हम उद्योतकर (छठी शताब्दी) की न्यायवार्तिक, वाचस्पति मिश्र (850 ई०) की न्यायवार्तिकातात्पर्यटीका और उस पर दसवीं शताब्दी के उदयन की टीका तात्पर्यटीकापरिशुद्धि पाते हैं। तथा इस सम्बन्ध में अन्य महत्त्वपूर्ण रचनाएँ कुसुमाञ्जलि और बौद्धधिक्कार विशेष रूप से पठनीय हैं, क्योंकि पहले ग्रन्थ में उन्होंने ईश्वर के अस्तित्व को सिद्ध किया है और दूसरे में उन्होंने बौद्धों पर प्रहार किया है।

ब्राह्मण धर्म का पालन करने वालों के अलावा अन्य लोगों ने भी न्याय के क्षत्र में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। प्रमुख बौद्ध दार्शनिक दिङ्नाग ने प्रमाण-समुच्चय और न्यायप्रवेश की रचना की। धर्मकीर्ति (सातवीं शताब्दी) ने अपनी रचना न्यायबिन्दु में उद्योतकर के विरुद्ध दिङ्नाग का समर्थन किया। इस सम्बन्ध में माणिक्यनन्दिन् का परीक्षामुखसूत्र और हेमचन्द्र (ग्यारहवीं शताब्दी) की प्रमाणमीमांसा भी उल्लेखनीय रचनाएँ हैं। जयन्त (नौवीं शताब्दी) ने न्याय-मञ्जरी ग्रन्थ लिखा। न्यायसूत्रों का भाष्य करते हुए लेखक ने बौद्धों और जैनों, दोनों पर प्रहार किया। भासर्वज्ञ का न्यायसार शैव प्रवृत्तियों, न्याय और वैशेषिक दर्शनों का मिश्रण है। वरदराज के तार्किकरक्षा ने बाद में बहुत प्रसिद्धि पाई और गंगेश (तेरहवीं शताब्दी) की तत्त्वचिन्तामणि ने न्याय के क्षेत्र में बहुत महत्त्वपूर्ण परिवर्तन किया। गंगेश की कृति पर बर्द्धमान, जयदेव और रघुनाथ शिरोमणि ने टीकाएँ लिखीं। गदाधर और मथुरानाथ ने टीकाएँ लिख कर गंगेश के सिद्धान्तों को और भी विकसित किया। यह वास्तव में नव्यन्यायदर्शन है। विद्वानों का यह मत कि नव्यन्याय मध्ययुगीन व्याख्या-दर्शन है, जिसमें एकमात्र परिभाषा का

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ही महत्त्व है, सही नहीं है। सूक्ष्मता का आधिक्य इनमें अवश्य है, किन्तु इन्होंने विचार एवं अभिव्यक्ति की संक्षिप्तता को परिवर्तित किया है।

4. वैशेषिक

कणाद के वैशेषिक सूत्रों का निर्माणकाल गौतम के सूत्रों की भाँति अनिश्चित है। दोनों सूत्रों में कुछ विषय एक समान हैं। अश्वघोष की रचना से ज्ञात होता है कि वे परमाणु को अन्तिम सत्य के रूप में मानने वाले वैशेषिक दर्शन से परिचित हैं। वे आत्मा की वास्तविक क्रियाशीलता में विश्वास रखते हैं और कहते हैं कि विभिन्न परिवेश में कार्य-कारण के आधार पर उस पर अलग-अलग प्रभाग पड़ता है। वैशेषिक सूत्रों को प्रशस्तपाद ने पदार्थधर्मसंग्रह में स्पष्ट किया है। यह रचना बहुत ही महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि इसमें कई महत्त्वपूर्ण बातों का समावेश किया गया है। जहाँ तक तार्किक चिन्तन का प्रश्न है, प्रशस्तपाद दिङ्नाग से प्रभावित होते हैं। श्रीधर ने प्रशस्तपाद पर न्यायकन्दली नामक टीका लिखी। उदयन की किरणावली भी प्रशस्तपाद पर लिखी एक टीका है। शंकर मिश्र ने जो टीका उपस्कार नाम से लिखी, वह इस सूत्र पर औपचारिक टिप्पणी मात्र है।

नव्यन्याय और वैशेषिक दोनों विचारधाराओं पर आधारित अनेक प्रसिद्ध रचनाएँ हैं, जिनमें शिवादित्य (बारहवीं शताब्दी) की सप्तपदार्थि, केशवमिश्र (तेरहवीं और चौदहवीं शताब्दी) की तर्कभाषा लौगाक्षिभास्कर (पन्द्रहवीं शताब्दी) की तर्ककौमुदी और अन्नमभट्ट (सोलहवीं शताब्दी) का तर्कसंग्रह उल्लेखनीय हैं।

5. सांख्य

कपिल के सांख्य-दर्शन का मूल वैदिक साहित्य और उपनिषदों में पाया जाता है, विशेषकर कठ और श्वेताश्वतर में सांख्य सिद्धान्त के स्पष्ट सन्दर्भ उपलब्ध होते हैं। प्रकृति और पुरुष और तीन गुणों का सिद्धान्त यहाँ प्रतिपादित किया गया है और इन्हीं के आधार पर बाद में सांख्य दर्शन का विकास हुआ। सांख्य और योग की एकबद्धता भी यहाँ परिलक्षित होती है। सांख्य द्वैत मूलक दर्शन है जो दो मूलतत्त्वों को स्वीकार करता है—प्रकृति अर्थात् कर्त्ताश्रय अचेतन वस्तु और पुरुष अर्थात् कर्माश्रय चेतन प्राणी। प्रकृति-पुरुष का संयोग ही जगत की उत्पत्ति का कारण है। यह जगत् प्रकृति का रूपान्तरण है और आत्मा विकास के क्रम से बाहर है। बौद्ध साहित्य और महाभारत में उन विविध विचारधाराओं का रूचिकर वर्णन किया गया है जिनके आधार पर सांख्य दर्शन आगे बढ़ा। कपिल, आसुरि, पंचशील, वर्षगण्य इस मत के प्रवर्तकों में से कुछ नाम हैं, परन्तु इनके ग्रन्थ हमें उपलब्ध नहीं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सांख्यदर्शन पर उपलब्ध होने वाली प्राचीनतम कृति ईश्वरकृष्ण (चौथी शताब्दी) की सांख्यकारिका है। सांख्यकारिका को सुवर्णसप्तति भी कहते हैं। सुवर्णसप्तति एक ऐसा नाम है जिस इर्दगिर्द ईश्वरकृष्ण और वसुबन्धु की किंवदन्ती गुंथी है। ये दोनों एक दूसरे की आलोचना करते हैं। परिमार्थ (557-69) ने इन कारिकाओं का चीनी भाषा में अनुवाद किया। इन कारिकाओं की अनेक विद्वानों ने टीका की। माठर, गौड़पाद और वाचस्पति मिश्र की टीकाएँ उपलब्ध हैं। षष्टितन्त्र से उसके जटिल सन्दर्भों और उपाख्यानों को हटा दिया जाए तो बाकी जो ग्रन्थ रह जाता है, उसका सारांश ही कारिकाएँ हैं। इस दर्शन पर कुछ और ग्रन्थ हैं जैसे सांख्यसूत्र, सांख्यसार और तत्त्वसमास जो बहुत बाद के हैं और उनका कोई दार्शनिक महत्त्व नहीं। विज्ञानभिक्षु की रचना सांख्यप्रवचन बहुत ही महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि इसमें सांख्य और वेदान्त में मेल स्थापित करने का प्रयत्न किया गया है।

6. योग

योगदर्शन भी उतना ही प्राचीन है जितना कि ऋग्वेद। उपनिषदों में भी यत्र-तत्र हमें इसके स्पष्ट सन्दर्भ मिलते हैं। योग सांख्य की तत्त्वमीमांसा को स्वीकार करता है। इसमें केवल ईश्वर को और जोड़ा गया है और इसका मूल विषय मस्तिष्क और शरीर पर पूर्ण नियन्त्रण प्राप्त करने के साधनों से सम्बन्धित है। योग ब्राह्मणवादियों और अब्राह्मणवादियों दोनों के लिए समान रूप से ग्राह्य है। पतञ्जलि को योगसूत्रों का रचयिता माना गया है। व्यास ने अपने योगभाष्यों में इन सूत्रों की टीका की है। वाचस्पति मिश्र तथा विज्ञानभिक्षु ने योगभाष्य पर टीकाएँ लिखीं और जनश्रुति के आधार पर इन सूत्रों पर भोज ने राजमार्तण्ड की रचना की। योग की कई शाखाओं में विकास हुआ, जिनमें हठयोग एक शाखा है और यह शाखा स्वात्मारामयोगीन्द्र के हठयोगप्रदीपिका से सम्बन्धित है।

7. पाञ्चरात्र

वैष्णव विचारधारा की एक शाखा पाञ्चरात्र ने प्रचुर मात्रा में साहित्य की रचना की जिन्हें संहिता कहते हैं और इनमें अहिर्बुध्न्य संहिता, ईश्वरसंहिता और बृहद्ब्रह्मसंहिता जैसे ग्रंथों का उल्लेख किया जा सकता है। हमारे पास भक्ति सम्प्रदाय से संबन्धित साहित्य भी है। इस सम्बन्ध में नारद का भक्तिसूत्र और शांडिल्य का भक्तिसूत्र विशष रूप से उल्लेखनीय है। कश्मीरी शैवदर्शन पर भी विपुल मात्रा में साहित्य रचना हुई जिसमें वसुगुप्त का शिवसूत्र और कल्लट की स्पन्दकारिका विशेष रूप से महत्वपूर्ण हैं। प्रत्यभिज्ञा सम्प्रदाय से सम्बन्धित रचनाएँ हैं—सोमानन्द की शिवदृष्टि (नौवीं शताब्दी) और उत्पलदेव

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

की ईश्वरप्रत्यभिज्ञासूत्र। विभिन्न तन्त्रों का भी अलग-अलग साहित्य है जिनमें उल्लेखनीय हैं—कुलचूडामणित, न्त्रकुलार्णव, ज्ञानार्णव तंत्रराज, महानिवार्ण और वीरमहेश्वर।

8. चार्वाक

चार्वाक दर्शन अर्थात् भौतिकवाद का आरम्भ उपनिषदों में उल्लिखित यदृच्छावाद में देखा जा सकता है। प्रारम्भिक दार्शनिक विचार के रूप में हमें स्वभाववाद, अदृष्टवाद और यदृच्छावाद में दर्शन होते हैं। कार्यकारण सिद्धान्त को पूर्णतः अस्वीकार कर यदृच्छावाद इस सिद्धान्त के मूल पर प्रहार करता है। चार्वाक दर्शन का दूसरा नाम लोकायत भी है जो इसके प्रचार-प्रसार तथा लोकप्रियता को बताता है। शंकर ने इसके सिद्धान्तों के विषय में बताया है जो इसकी प्राचीनता सिद्ध करते हैं।

वृहस्पति इस दर्शन के संस्थापक और सूत्र रचयिता माने जाते हैं। मैत्री-उपनिषद् में वृहस्पति को भ्रामक उपदेशक बताकर उसकी भर्त्सना की गई है। इसमें वृहस्पति द्वारा अपने सिद्धान्त के प्रतिपादन में दिए गए विचारों और उस पर लिए गए भाष्य का उल्लेख किया गया है। इस प्रकार इन ग्रंथों की रचना के बारे में कोई शंका नहीं की जा सकती। संर्वदर्शनसंग्रह में इन सिद्धान्तों का सारांश दिया गया है और इस मत के सिद्धान्तों के ज्ञान के लिये एकमात्र यही आधार है। चार्वाक ने वेदों की प्रामाणिकता का विरोध किया है और ब्राह्मणिक व्यवसाय की निन्दा की है। चार्वाक ने विवेक के उपयोग पर विशेष वल दिया है।

9. बौद्ध धर्म

पालि वौद्ध धर्मावलम्वियों की राजभाषा थी, परन्तु वाद में वौद्ध धर्मावलम्वी संस्कृत में रचना करने लगे। संस्कृत में लिखे उनके धर्मग्रंथों जैसे उदानवर्ग, धर्मपद, एकोत्तरागम, मध्यमागम और विनय की अपूर्ण प्रतियाँ उपलब्ध हैं। इन ग्रंथों का रचनाकाल संदिग्ध है और उन्हें तीसरी शताब्दी की रचनाओं के रूप में मान्यता दी गई है। इस सम्बन्ध में महावस्तु जो महासांघिक के लोकोत्तरवादी सम्प्रदाय की विनय पुस्तक है, विशेषरूप में उल्लेखनीय है। इन रचनाओं में बुद्ध का जीवन चरित्र और अनेक जातक कथाएँ उपलब्ध हैं। बुद्धानुस्मृति सामान्य काव्य शैली में लिखित एक बुद्ध-स्त्रोत है। सर्वास्तिवाद सम्प्रदाय की रचना ललित-विस्तार में भी बुद्ध भी जीवनी दी गई है। यह गद्य में लिखी गई है और इसमें कहीं कहीं पद्य भी हैं। नवीं शताब्दी में इसका तिब्वती में अनुवाद हुआ और बोरो बुद्धुर के कलाकार इससे परिचित थे। सद्धर्मपुण्डरीक संस्कृत की एक अच्छी रचना है और इसमें बोधिसत्व के सिद्धान्त प्रतिपादित किए गए हैं। लङ्कावतारसूत्र

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्य महत्त्वपूर्ण रचना है और इसमें शून्यवाद और विज्ञानवाद में सिद्धान्त दिए गए हैं। नागार्जुन की माध्यमिककारिका अन्य प्रमुखर चना है और अपनी विचार-धारा तथा वेदान्त सिद्धान्त के इतिहास के लिए यह बहुत महत्त्वपूर्ण है। विज्ञानवाद सम्प्रदाय ने जिस साहित्य की रचना की उसमें वसुवन्धु रचित गाथासंग्रह और अभिधर्मकोश का उल्लेख किया जा सकता है।

10. जैन धर्म

संस्कृत साहित्य में जैनों ने भी कम योगदान नहीं किया है। उमास्वामी (दूसरा नाम उमास्वाति) तत्त्वार्थाधिगमसूत्र (छठवीं शताब्दी) और सामन्त-भद्र की आप्तमीमांसा विशेष उल्लेखनीय हैं। ऐसी भी रचनाएँ हैं, जिनकी कुमारिल ने कटु आलोचना की है। सबसे महत्त्वपूर्ण हरिभद्र (आठवीं शताब्दी) की रचनाएँ हैं, जिन्होंने षड्दर्शनसमुच्चय लोकत्तत्वनिर्णय, योगदृष्टिसमुच्चय इत्यादि रचनाएँ कीं। इन्होंने मुख्यतः नीतिशास्त्र पर लिखा। हेमचन्द्र ने भी संस्कृत में योगसूत्र और कई अन्य रचनाएं कीं। मल्लिषेण (1292 ई०) ने स्याद्वादमञ्जरी में जैन स्याद्वाद के सिद्धान्तों का विद्वत्तापूर्ण विवेचन किया है। निस्सन्देह विपुल साहित्य की रचना हुई है। यहाँ कुछ रोचक रचनाएँ बताई गई हैं।

स्वाभाविक है कि इस क्षेत्र में अनेक दार्शनिक विचारधाराएँ हैं। अतः सभी विचारधाराओं का संक्षिप्त विवेचन करने का प्रयत्न किया जाना चाहिए। हरिभद्र (आठवीं शताब्दी) की रचना षड्दर्शनसमुच्चय में बौद्ध, नैयायिक, सांख्य, वैशेषिक पूर्व मीमांसक और चार्वाक के सिद्धान्तों का विचार किया गया है। सर्वदर्शनसिद्धान्तसंग्रह में उन सभी विचारधाराओं का सारांश दिया गया है जिनकी जानकारी लेखक को थी। सर्वदर्शनसंग्रह काफी बाद की रचना है और इसका लेखक माधव बताया जाता है। सर्वमतसंग्रह इसी प्रकार की एक अन्य रचना है, जिसके लेखक तथा रचना काल का कोई निश्चय नहीं है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

IV.8 वैद्यकशास्त्र

आदिकालीन समाज में पुरोहित, जादू-टोनेवाला तथा वैद्य एक ही व्यक्ति होता था और जादू-टोना की उसमें मुख्य भूमिका थी। अथर्ववेद जिसमें भारतीय चिकित्सा पद्धति की प्रारम्भिक अवस्था दिखाई देती है—सम्मोहन विद्या से युक्त है। अथर्ववेद का तीन प्रकार का उद्देश्य आशीर्वाद, शाप और प्रसन्न करने से सम्बन्धित है और इसमें उपचार की समस्या के प्रति इसका दृष्टिकोण स्पष्ट होता है। बीमारियों और रोगों का कारण भूत-प्रेत माने जाते थे और रोगी के उपचार के लिए इन दुष्ट आत्माओं को भगाना पड़ता था। शरीर विज्ञान का अध्ययन किया गया था, जो सम्भवतः यज्ञशास्त्र की उपज हो सकती है, जिसमें पशुबलि का विधान था। आयुर्वेद को अथर्ववेद का उपाङ्ग मानकर उसके साथ सम्बद्ध कर दिया जाए तो कोई असंगति नहीं होगी। इसमें जिन आठ विषयों पर विचार किया गया है वे हैं: बृहच्छल्यचिकित्सा, सामान्यशल्यचिकित्सा, कार्यचिकित्सा, भूतविद्या, कौमारभृत्य, विषविद्या, रसायन और बाजीकरण। पतञ्जलि ने इतिहास और पुराण के साथ वैद्यक का वर्णन किया है। वाकोवाक्य आत्रेय, काश्यप, हारीत, अग्निवेश और भेड प्रारम्भिक लेखक हैं और उनके नाम से जो संहिताएँ हैं, वे उनकी रचनाओं के सम्पादित रूप हैं। बौद्ध साहित्य और खासकर महावग्ग में भी भारतीय चिकित्सा पद्धति का विवरण दिया गया है और तक्षशिला इस शास्त्र का केन्द्रीय स्थान रहा है, जहाँ इस शास्त्र का आरम्भ हुआ। बाल रोगों के विशेषज्ञ जीवक आत्रेय के शिष्य बताए गए हैं। यहाँ हमें शल्य चिकित्सा के औजारों के बारे में भी सूचना मिलती है तथा उपचार के रूप में गरम पानी से स्नान और प्राथमिक औषधों के बारे में भी जानकारी मिलती है। मठों में रहने वाले बौद्ध-धर्मावलम्बियों के लिए इस शास्त्र का विकास करना बहुत ही आवश्यक हो गया था।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

1. चरक संहिता

चरक संहिता सबसे प्राचीन ग्रन्थ है। चरक कनिष्क के वैद्य थे और कहा जाता है कि जब राजा कनिष्क की रानी बहुत गम्भीर रूप से बीमार पड़ी, तब चरक ने उसकी चिकित्सा की। वर्तमान चरक संहिता आठवीं या नौवीं शताब्दी के कश्मीरी दृढ़बल द्वारा संशोधित संस्करण है। इसमें जिन विभिन्न स्थानों का उल्लेख है, वे विभिन्न विषयों से सम्बद्ध हैं, जैसे आहार, रोग, रोग विज्ञान, शरीर विज्ञान, भ्रूण विज्ञान, निदान, विशेष एवं सामान्य चिकित्सा विज्ञान। महत्त्वपूर्ण बात है कि युवा वैद्य उदात्त भावना और समर्पित भाव से काम करते थे। वैद्यों को आदेश दिया गया है कि रोगी की सम्पत्ति के बारे में किसी प्रकार की बुरी भावना अपने मन में न लाए और घर के भेद बाहर न बताएँ। चरक को सांख्य, न्याय और वैशेषिक का ज्ञान था। यह रचना गद्य और पद्य दोनों में है तथा अरबी में इसका अनुवाद आठवीं शताब्दी में हो गया था।

2. सुश्रुत संहिता एवं भेड संहिता

चरक की भाँति दूसरा ख्यातिप्राप्त विद्वान् सुश्रुत है। महाभारत के अनुसार ये विश्वामित्र के पुत्र थे और नागार्जुन ने इनके काम को आगे बढ़ाया। नौवीं तथा दसवीं शताब्दी तक इनकी ख्याति कम्बोडिया तथा अरब देशों तक पहुँच गई थी। जैय्यट, गयदास, चक्रपाणिदत्त (ग्यारहवीं शताब्दी) और दल्लण (तेरहवीं शताब्दी) ने इनकी रचना पर टीकाएँ लिखीं। चन्द्रट ने सुश्रुत की संहिता का संशोधन किया। वाराणसी के राजा दिवोदास के अधीन सुश्रुत ने अध्ययन किया। चरक संहिता की भाँति इसमें जो विभिन्न स्थान दिए गए हैं वे हैं—सूत्र-स्थान, निदान-स्थान, शरीर-स्थान चिकित्सा-स्थान, कल्प-स्थान, और उत्तरतन्त्र। जहां तक व्यावसायिक नैतिकता का सम्बन्ध है, सुश्रुत ने वैद्यों से बहुत उच्च स्तर बनाए रखने की अपेक्षा की है। इसमें एक रोचक बात यह है कि वैद्यों से कहा गया है कि वे लाल कपड़े पहनें।

भेड संहिता या भेड संहिता की एक अपूर्ण पाण्डुलिपि उपलब्ध है। इसकी रचना श्लोक छन्द में है और गद्य भी कहीं-कहीं हैं। भेड संहिता में सुश्रुत संहिता का उल्लेख है तथा इसमें जो तथ्य दिए गए हैं वे चरक संहिता से निम्न परम्परा पर आधारित हैं। हार्नल का विश्वास है कि आत्रेय पद्धति का एक तीसरा पाठान्तर याज्ञवल्क्यस्मृति, विष्णुस्मृति, विष्णुधर्मोत्तर और अग्निपुराण में छिटपुट रूप में उपलब्ध है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

3. अष्टाङ्गहृदय

चिकित्सा शास्त्र से सम्बन्धित एक और नाम उल्लेखनीय है—वाग्भट्ट। उनका काल सुश्रुत से बाद का है। चिकित्सा शास्त्र पर लिखने वाले दो वाग्भट हैं। सिंह गुप्त के पुत्र वाग्भट्ट द्वारा रचित अष्टाङ्गसंग्रह और अष्टाङ्गहृदय संहिता हैं। कनिष्ठ वाग्भट्ट ने वरिष्ठ वाग्भट्ट की रचना से लाभ उठाया है। कनिष्ठ लेखक ने विशुद्ध छन्दोबद्ध रचना की जबकि वरिष्ठ वाग्भट्ट ने गद्य और पद्य दोनों का उपयोग किया। इत्सिंग ने एक ऐसे नाम का भी उल्लेख किया है जिसने चिकित्सा शास्त्र के आठों विषयों पर लिखा है। कनिष्ठ लेखक का किसी न किसी रूप में वरिष्ठ लेखक से सम्बन्ध रहा है। कनिष्ठ लेखक की रचना का तिब्बती में अनुवाद हुआ। दोनों लेखकों ने चरक और सुश्रुत से उद्धरण दिए हैं।

4. काशगरपाण्डुलिपि

बोवर ने 1890 में काशगर में एक पाण्डुलिपि पाई जिसमें औषध से सम्बद्ध परिच्छेद हैं। इसकी पूर्ण संभावना है कि यह चौथी शताब्दी ई० की है। ये परिच्छेद छन्दों में लिखे गए हैं, जहाँ प्राय: बड़े छन्दों का प्रयोग किया गया है। एक परिच्छेद लहसुन और उसके गुणों से सम्बन्धित है। एक अन्य अनुच्छेद दीर्घायु प्राप्त करने के रसायन से सम्बद्ध हैं और इससे भी अधिक रुचिकर नवनीतिक अनुच्छेद है—जो पहले की रचनाओं का सार है। इसके सोलह उप-परिच्छेद हैं और चूर्ण, काढा, तेल, रसायन एवं बाल रोग आदि से सम्बद्ध है, जिनमें आत्रेय, क्षारपाणि जातुकर्ण, पराशर, भेड, हारीत एवं सुश्रुत का उल्लेख किया गया है। इसकी भाषा लोक प्रचलित संस्कृत है जिसमें प्राकृत का काफी मिश्रण है।

5. अन्य कृतियाँ

इन्दुकर (आठवीं या नवीं शताब्दी) के पुत्र माधवकर की रुग्विनिश्चय रोग विज्ञान पर एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण रचना है। रुग्विनिश्चय के बाद वृन्द की रचना है सिद्धियोग या वृन्दमाधव। यह अनुमान लगाया गया है कि माधव का वास्तविक नाम वृन्द है, परन्तु इसका समुचित प्रमाण नहीं है। इस सन्दर्भ में चक्रपाणिदत्त (1060 ई०) का चिकित्सासारसंग्रह उल्लेखनीय है। मिल्हण ने 1224 ई० में चिकित्सामृत की रचना की जिसमें 2500 श्लोक हैं। शार्ङ्गधर संहिता अफीम एवं पारे के प्रयोग, तथा नाड़ी का रोग निदान में उल्लेख करती है। इन प्रयोगों के महत्त्वपूर्ण तथ्य का स्रोत फारसी एवं अरबी माना जाता है। यहाँ जिन अन्य ग्रन्थों का उल्लेख कर सकते हैं वे हैं तीसट (चौदहवीं शताब्दी) का चिकित्साकलिका, भावमिश्र (सोलहवीं शताब्दी) का भावप्रकाश तथा लोलिम्बराज

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(सत्रहवीं शताब्दी) का वैद्यजीवन है।

रसायन विज्ञान भी भारतीय चिकित्सापद्धति की एक रुचिकर शाखा है। यह आशा की जाती है कि रसायन के प्रयोग से स्थायी यौवन तथा अत्यधिक दीर्घायु, यहाँ तक कि अदृश्यता की सिद्धि भी प्राप्त हो सकती है। अलबेरुनि (1030 ई०) ने इस विज्ञान की निन्दा की तथा इसे व्यर्थ कहा। इस सन्दर्भ में नागार्जुन की रसरत्नाकर, रसार्णव एवं रसरत्नसमुच्चय का उल्लेख किया जा सकता है।

हमें चिकित्सा विज्ञान के कोश भी मिलते हैं। धन्वन्तरिनिघण्टु शायद अमरकोश से प्राचीन है। सुरेश्वर का शब्दप्रदीप 1075 ई० और नरहरि का राजनिघण्टु 1235 से 50 ई० के मध्य रचा गया था। मदनपाल (1374 ई०) की मदनविनोदनिघण्टु औषधशास्त्र का अच्छा कोष है तथा पथ्यापथ्यनिघण्टु आहार विज्ञान एवं पाकशास्त्र से सम्बद्ध है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

IV.9 ज्योतिष एवं गणित

यज्ञ की प्रथा ने वैदिक लोगों के लिए गणित-ज्योतिष का विकास आवश्यक कर दिया था। वेदों, ब्राह्मणों एवं उपनिषदों में पञ्चाङ्ग, नक्षत्र, तथा अधिक-मास के विषय में हम निश्चित रूप से वर्णन पाते हैं। ज्योतिष वेदाङ्ग के दो विवरण सुरक्षित हैं और यहाँ वर्ष में तीन सौ छियासठ दिन माने गए हैं, अयनान्त सूर्य तथा चन्द्र के उस समय पर स्थान का भी ज्ञान होता है। गार्गी संहिता कुछ खण्डों में सुरक्षित है, और इसके आगे का विकास बतलाती है। यह युग विज्ञान का प्रारम्भ सूचित करता है, अतः उस समय जो निर्णय प्राप्त हुए हैं वे संशोधनीय हैं। ये रचनाएँ सिद्ध करती हैं कि दक्षिण अयनान्त धनिष्ठा नक्षत्र के प्रारम्भ में होता है। यह तथ्य अपने आप में हमें कोई तिथि निश्चयपूर्वक ज्ञात करने में सहायता नहीं देता।

1. पञ्चसिद्धान्त

वराहमिहिर सन् 550 ई० में **पञ्चसिद्धान्तिका** में पाँच सिद्धान्तों का उल्लेख करता है। इन पाँचों में पैतामहसिद्धान्त पहले का है, तथा अन्य रोमक एवं पौलिश तथा सूर्य एकदम नई प्रवृत्तियाँ दिखलाते हैं। अन्य विद्वान इन पर ग्रीक प्रभाव पाते हैं। वराहमिहिर ने जिन सिद्धान्तों का उल्लेख किया है उनमें से कोई भी अपने मूल रूप में संरक्षित नहीं है। ब्रह्मसिद्धान्त विष्णुधर्मोत्तर पुराण का अंग है और ब्रह्मगुप्त का स्फुटब्रह्मसिद्धान्त इस पर आधारित है। लाट ने रोमक-सिद्धान्त का संशोधन किया। सूर्यसिद्धान्त मूल सिद्धान्त का आधुनिक रूप है।

2. अन्य रचनाएँ

आर्यभट्ट का जन्म 476 ई० में हुआ था और वह कुसुमपुर का निवासी था। उसने आर्यभटीय की रचना की जिसमें दस अवतरण आर्या छन्दों में हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दशगीतिका सूत्र में उनकी संख्यात्मक अंकन पद्धति है तथा आर्याष्टशत गणित, कालक्रिया एवं गोल से सम्बद्ध है। आर्यभट्ट का मत था कि पृथ्वी एक गोला है जो अपनी धुरी पर घूमता है। एक अन्य आर्यभट्ट ने 950 ई० में आर्यसिद्धान्त की रचना की जिसमें संख्यात्मक अंकन पद्धति भिन्न है। लाट तथा आर्यभट्ट के अतिरिक्त वराहमिहिर, सिंह प्रद्युम्न एवं विजयनन्दिन का उल्लेख भी करता हैं। ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्म या स्फुटसिद्धान्त 628 ई० में लिखा। ब्रह्मगुप्त अन्य लेखकों की तुलना में अत्यधिक सुव्यवस्थित एवं पूर्ण है और वह आर्यभट्ट की आलोचना करता है। भास्कराचार्य एक अन्य महत्त्वपूर्ण लेखक हैं जिन्होंने 1150 ई० में सिद्धान्तशिरोमणि की रचना की जिसमें चार अनुच्छेद हैं।

3. गणित

शुल्वसूत्र विभिन्न आकार एवं विस्तार की वेदियों के निर्माण का उल्लेख करता है, और वेदियों के आकार-प्रकार के विषय में अत्यधिक सावधानी का भी उल्लेख करता है। ज्यामिति विज्ञान का प्रारम्भ यहीं होता है। वे आयतों एवं वर्गों की समता तथा विकर्ण का भुजाओं से सम्बन्ध का उल्लेख करते हैं। पाइथागोरस के प्रमेय का बहुत साधारण शब्दों में उल्लेख किया गया है।

आर्यभट्ट शायद गणित का पहला लेखक है जिसने अपनी पुस्तक के गणितीय भागों में क्षेत्रफल, आयतन, श्रेढ़ी एवं बीजीय सर्वसामिका का विवरण दिया है। गणित से सम्बद्ध एक अन्य लेखक ब्रह्मगुप्त है, परन्तु उसकी पुस्तक मुख्यरूप से साधारण अंकगणितीय प्रश्नों जैसे वर्गमूल एवं घनमूल, श्रेढ़ी, वृत्त के तत्त्वों, शून्य तथा साधारण, बीजीय सर्वसामिका का विवरण देती है। महावीराचार्य (नवीं शताब्दी की गणितसारसंग्रह ब्रह्मगुप्त की पुस्तक की तुलना में अधिक प्राथमिक स्वरूप की पुस्तक है। श्रीधर की त्रिशती का उल्लेख करना भी आवश्यक है जिसमें द्विघाती समीकरण का विवरण था। भास्कराचार्य भारतीय गणित का अन्तिम महान् लेखक है। उसने लीलावती बीजगणित, ग्रहगणित एवं गोल की रचना की थी। भास्कराचार्य स्पष्ट एवं सूक्ष्म है और उसने अपने मत को सावधानी से स्पष्ट किया है। भास्कराचार्य के बाद इस क्षेत्र में कोई अन्य महान् लेखक नहीं हुआ।

4. फलित ज्योतिष

वराहमिहिर बहुत से विशेषज्ञों जैसे असित, देवल, गर्ग, नारद एवं पराशर का उल्लेख करता है और इसलिए उसने अपनी महान् रचना द्वारा ज्योतिष की अपने से पूर्व की सब रचनाओं को निस्तेज कर दिया था। वराहमिहिर ज्योतिष को तीन शाखाओं में विभाजित करता है; तन्त्र जो गणितीय एवं गणितज्योतिषीय

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आधारों से सम्बद्ध है, होरा जो जन्मपत्रियों से सम्बद्ध है, तथा संहिता जो प्राकृतिक गणितज्योतिष से सम्बद्ध है। बृहत्संहिता उसे एक महान् विद्वान एवं महाकवि प्रदर्शित करती है जिसका भाषा एवं छन्द पर अच्छा अधिकार है। वराहमिहिर की ज्योतिष की होरा शाखा का अधिक विकास हुआ और हमें बाद के ग्रन्थ मिले हैं जिनमें यवनजातक उल्लेखनीय है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

IV.10 अलंकारशास्त्र

प्रारम्भिक वैदिक युग में कवियों ने उत्कृष्ट काव्य की रचना की और उपनिषदों में हम प्राय: साधारण प्रगीतात्मक शब्दों में अत्यन्त उच्च विचार पाते हैं, परन्तु अलङ्कारशास्त्र से सम्बद्ध किसी ग्रन्थ का उल्लेख नहीं है। यास्क ने ऋग्वेद के सूक्तों को वर्गों में विभाजित किया है, जैसे—वर्णनात्मक, विवेचनात्मक एवं आत्मकथनात्मक।

ऋग्वेद के सूक्तों में बहुत सारे शब्दालङ्कार एवं अर्थालङ्कार प्रयुक्त हुए हैं। इनमें मनुष्य के विभिन्न भावों के निरूपण का पूरा प्रयास किया गया है। रात्रि, उषस्, पर्जन्य को सम्बोधित सूक्त, संवाद सूक्त, तथा द्यूत सूक्त इस विचारबिन्दु के उदाहरण हैं। ऋग्वैदिक कवि, मौलिकता, स्वत: प्रवृत्ति, माधुर्य एवं सुसंस्कृत मूल्यों की योग्यता वाले गीतों को ही महत्त्वपूर्ण समझते हैं। काव्यशास्त्र की साहित्यिक आलोचना का अध्ययन वास्तव में इसी सामग्री पर आधारित है। यह सत्य है कि पाणिनि नटसूत्र का उल्लेख करते हैं, परन्तु अलङ्कारसूत्र का नहीं। यास्क उपमा पर विचार-विमर्श करते हैं और काश्यप एवं वररुचि का उल्लेख करते हैं, जो ऐसे ग्रन्थों के लिए उत्तरदायी प्रतीत होते हैं।

1. नाट्यशास्त्र

काव्यशास्त्र से सम्बद्ध सर्वप्रथम विश्वसनीय विवरण भरत के नाट्यशास्त्र में मिलता है। नाट्यशास्त्र मूल रूप से एक नाट्यशास्त्रीय रचना है और यह एक लम्बी परम्परा की अपेक्षा रखता है। ऐसा प्रतीत होता है इस पुस्तक को प्रामाणिकता दिलाने् के लिए पौराणिक मनीषी भरत का नाम इससे सम्बद्ध किया गया है। नाट्यशास्त्र हमें रस-सिद्धान्त का स्पष्ट विवरण देता है। यह चार अलङ्कारों उपमा, रूपक, दीपक एवं यमक को मान्यता देता है। इसमें छन्द एवं उनके प्रयोग पर भी विचार-विमर्श किया गया है। इसमें शब्दालङ्कारों एवं अर्थालङ्कारों के

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भेद प्रदर्शित नहीं किए गए हैं। इसमें यमक के दस भेद एवं उपमा के दस भेद वर्णित हैं। यमक का एक विलक्षण इतिहास है, क्योंकि इसे काव्यशास्त्र के भरत, भट्टि, भामह, रुद्रट के ग्रन्थों में एवं अग्निपुराण के काव्यात्मक खण्ड में महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। परन्तु भामह यमक के केवल पाँच भेद मानकर इसके महत्त्व को कम कर देते हैं और आनन्दवर्धन एवं मम्मट इनमें कोई भी रसात्मक गुण नहीं पाते हैं। नाट्यशास्त्र दस गुणों एवं दस दोषों का भी उल्लेख करते है। भरत का मूलपाठ प्राय: अस्पष्ट है और आज की स्थिति में अशुद्ध भी है। इसके फलस्वरूप टीकाकारों ने भरत के मतों की विविध व्याख्याएँ की हैं। भरत के टीकाकारों में लोल्लट, शंकुक, भट्टनायक एवं अभिनवगुप्त का उल्लेख किया जा सकता है। अभिनवगुप्त ने नाट्यशास्त्र पर लिखित अपनी टीका अभिनवभारती में विस्तृत टिप्पणियाँ की हैं, जो काव्यशास्त्र की दृष्टि से बहुत मूल्यवान हैं।

2. काव्यादर्श एवं काव्यालंकार

काव्यादर्श के तीन परिच्छेदों में दण्डी ने रीति या मार्ग के सिद्धान्त पर विचार-विमर्श किया है, एवं महाकाव्य, चम्पू, मुक्तक, कुलक, कोश, संघात, कथा एवं आख्यायिका की परिभाषाएँ दी हैं, और अलङ्कार पर भी विचार-विमर्श किया है। यह रुचिकर है कि दण्डी रस को सर्वाधिक महत्त्व नहीं देते। और ऐसा प्रतीत होता है कि वह इस रसवत अलङ्कार में ही अन्तर्भूत करते हैं। दण्डी के गुण एवं अलङ्कार के सिद्धान्त एवं अलङ्कार के वर्गीकरण से यह प्रकट होता है कि वह भामह से पूर्व हुए थे।

ऐसा प्रतीत होता है कि भामह काव्यालङ्कार में दण्डी से काफी आगे बढ़ गए हैं। भामह के काव्यालङ्कार में छः परिच्छेद हैं। भामह प्रथम परिच्छेद में काव्य के उद्देश्य, परिभाषा एवं भेदों का उल्लेख करते हैं। द्वितीय परिच्छेद में गुणों का, तृतीय परिच्छेद में अलङ्कारों का, चतुर्थ एवं पंचम परिच्छेदों में दोषों का परिचय करवाते हैं। और षष्ठ परिच्छेद में काव्य में व्याकरण सम्बन्धी स्पष्टता के लिए कवियों को व्यावहारिक परामर्श देते हैं। वह अलङ्कारों को काव्य का आवश्यक अंग मानते हैं। दण्डी ने जो शैलियाँ मानी हैं उन्हें वह नहीं मानते, परन्तु कथा एवं आख्यायिका के भेद को स्वीकार करते हैं। भामह मेधावी अनुयायी हैं जिनकी आलोचना दण्डी ने की है। भामह के अनुसार वक्रोक्ति सम्पूर्ण काव्य का सामान्य तत्त्व है। वह स्वभावोक्ति को कोई भी महत्त्व नहीं देते, जो दण्डी—आदि की दृष्टि में महत्त्वपूर्ण अलङ्कार ह। जब हम भामह और दण्डी में तुलना करते हैं तो भामह में सुव्यवस्थित करने की प्रवृत्ति, अत्यधिक रूपों को मानने की प्रवृत्ति तथा अत्यावश्यक तत्त्व पर केन्द्रित होने की इच्छा पाते हैं। यदि दण्डी को रीति सम्प्रदाय का लेखक माना जाए, जिसे वामन ने बाद में विकसित किया तो

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भामह को अलङ्कार सम्प्रदाय से सम्बद्ध मान सकते हैं। एक ग्रन्थ के बाद दूसरे ग्रन्थ में अलङ्कारों पर विचार-विमर्श हुआ है। उनके स्वरूप की परिभाषा दी गई है, उनके विभिन्न प्रकारों पर विचार-विमर्श किए गए हैं, उनमें से कुछ को छोड़ दिया गया है और प्रायः कुछ नए अलङ्कारों को जोड़ा गया है।

3. काव्यालङ्कारसूत्र

काव्यलङ्कारसूत्र के लेखक वामन को रीति सम्प्रदाय का प्रवक्ता माना गया है। काव्यालङ्कार सूत्र में पाँच अधिकरण हैं और फिर प्रत्येक अधिकरण को दो या तीन अध्यायों में विभक्त किया गया है। इस प्रकार इस रचना में कुल बारह अध्याय हैं। प्रथम अधिकरण में वह रीति को काव्य की आत्मा घोषित करते हैं। द्वितीय में दोषों का, तृतीय एवं चतुर्थ में गुणों एवं अलङ्कारों का, और पंचम अधिकरण में वह कुछ परम्पराओं का उल्लेख करते हैं जो कवि के लिए मानने योग्य हैं।

4. ध्वन्यालोक

संस्कृत काव्यशास्त्र के क्षेत्र में यह एक युगप्रवर्तक रचना है। आनन्दवर्धन के अनुसार कविता में सांकेतिक अर्थ— ध्वनि सर्वदा सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण होती है, और इस उद्देश्य के लिए वह शब्द की तीसरी शक्ति व्यंजना को दो परिचित अभिधा एवं लक्षण के अतिरिक्त स्वीकार करते हैं। आनन्दवर्धन की रचना के दो भाग हैं—कारिका एवं वृत्ति। इस बात पर मतभेद हैं कि आनन्दवर्धन ने दोनों भागों—कारिकाओं एवं वृत्ति की रचना की। ऐसा माना जाता है कि ध्वन्यालोक का लेखक एक सहृदय था। आनन्दवर्धन काव्य के अन्य सभी तत्त्वों—गुण, अलङ्कार आदि को सांकेतिक अर्थ (ध्वनि) की अपेक्षा अप्रधान मानते हैं। वह रस एवं अलङ्कार को भी ध्वनित मानते हैं। वह ध्वनि के विभिन्न रूपों का विश्लेषण करते हैं, तथा उनके उदाहरण देते हैं। अन्य लेखकों के रीति सिद्धान्त के सादृश्य में आनन्दवर्धन ने संघटना सिद्धान्त को विकसित किया। आनन्दवर्धन के अनुसार महाभारत में शान्त तथा रामायण में करुण रस है। आनन्दवर्धन में हमें रस एवं ध्वनि की धारणा का बहुत सुन्दर सामञ्जस्य मिलता है। बाद के लेखकों पर आनन्दवर्धन का बहुत प्रभाव है। आनन्दवर्धन प्रथम लेखक हैं जिन्होंने प्राकृत छन्दों की सुन्दरता एवं उनके महत्त्व की ओर संकेत किया है। ध्वन्यालोक पर अभिनवगुप्त ने अपनी प्रख्यात टीका लोचन लिखी है, जो काव्यशास्त्र के क्षेत्र में अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है। काव्य के ध्वनि सम्प्रदाय शैली को प्रारम्भ करने का श्रेय आनन्दवर्धन को है। वह स्वयं स्वीकार करते हैं कि बहुत आचार्यों ने ध्वनि को स्वतन्त्र सिद्धान्त नहीं माना। कुछ ने इसके अस्तित्व को नहीं माना, और

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कुछ ने इसे लक्षण में अन्तर्भूत कर दिया।

5. वक्रोक्तिजीवित

कुन्तक ने अपने ग्रन्थ वक्रोक्तिजीवित के अन्तर्गत चार उन्मेषों में वक्रोक्ति सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। वक्रोक्ति सिद्धान्त का उद्भव भामह की कृति में पाया जाता है, जो इसे सम्पूर्ण काव्य का सामान्य तत्त्व मानते हैं। किन्तु, कुन्तक ने इस सिद्धान्त का बहुत व्यवस्थित विस्तार किया। उसके अनुसार वक्रोक्ति काव्य की आत्मा है और इसके कई प्रकार हैं। इन्होंने अपने ग्रन्थ में महाकवियों द्वारा प्रयुक्त वक्रोक्ति के विभिन्न प्रयोगों का बहुत गम्भीरता से अध्ययन किया हैं। वक्रोक्ति का प्रयोग एक वाक्य, शब्द क्रिया, विभक्ति और यहाँ तक कि अव्यय में भी किया है और काव्य में वक्रोक्ति के प्रयोग का प्रयास वैदग्ध्यपूर्ण है।

6. काव्यमीमांसा

राजशेखर की पुस्तक काव्यमीमांसा बहुत ही रोचक है। यह अट्ठारह अध्यायों में विभक्त है। इसमें काव्यपुरुष तथा साहित्यविद्यावधू के विदर्भ में हुए विवाह का वर्णन किया गया है। विभिन्न प्रकार के कवियों, कवि के लिए आवश्यक अध्ययन, कवि की दिनचर्या आदि विषयों पर विचार-विमर्श किया गया है। राजशेखर प्राकृत को बहुत मधुर मानता है और वह इसे अत्यधिक महत्त्व देने के पक्ष में है। काव्यमीमांसा मुख्यतः कवि के मार्गदर्शन के लिए व्यावहारिक नियमावलि है, उसके बाद यह एक काव्यशास्त्र आलोचनात्मक ग्रन्थ है। राजशेखर के ग्रन्थ का महत्त्व उस समय के समाज पर उसके द्वारा व्यक्त विचारों में है।

7. व्यक्तिविवेक

महिमभट्ट का व्यक्तिविवेक एक पाण्डित्यपूर्ण रचना है जो दृष्टिकोण में आनन्दवर्धन की आलोचना करता है। महिमभट्ट ध्वनि को नहीं मानता है क्योंकि उसका मत है कि इसे सर्वदा अनुमान में अन्तर्भूत किया जा सकता है। काव्य में अर्थ या भाव को प्रत्यक्ष या तात्कालिक रूप से प्रकट नहीं किया जा सकता क्योंकि इन दोनों के पहले अनुमान आता है। वह औचित्य को अधिक महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त समझता है।

8. काव्यप्रकाश

मम्मट (ग्यारहवीं शताब्दी) की काव्यप्रकाश काव्यशास्त्र के सिद्धान्तों को पहले के लेखकों की सामग्री का संश्लेषण करके प्रस्तुत करने का एक प्रयास है। अपने दस उल्लासों में उसने काव्य-परिभाषा, शब्द-शक्ति, ध्वनि-सिद्धान्त, रस,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गुण, दोष एवं अलङ्कारों पर विचार किया है। इस ग्रन्थ के दो भाग हैं—कारिका एवं वृत्ति। इन दोनों भागों की रचना मम्मट ने ही की है, इस पर मतभेद है। मम्मट का विवरण सुव्यवस्थित एवं लगभग सर्वांगीण है। उसकी विद्वत्ता उसके विवरण से स्पष्ट है और परम्परा उसे विद्या देवी का अवतार मानती है। काव्य-प्रकाश का प्रभाव एवं लोकप्रियता उस पर की गई बहुत-सी टीकाओं से स्पष्ट है।

9. साहित्यदर्पण

विश्वनाथ (चौदह शताब्दी) का साहित्यदर्पण काव्यप्रकाश का बहुधा अनुकरण करता है, परन्तु इसमें नाटक एवं नाट्यशास्त्र पर विचार विमर्श भी है। वह चार रीतियों को मानता है—वैदर्भी, गौड़ी, पाञ्चाली एवं लाटी। अलङ्कारों के विचार-विमर्श में वह रुय्यक से प्रभावित हुआ है। साहित्यदर्पण में दस परिच्छेद हैं—प्रथम में काव्य परिभाषा, द्वितीय में वाक्य की परिभाषा एवं शब्द शक्ति, तृतीय में रस एवं भाव, चतुर्थ में ध्वनि और उसके प्रकार, पंचम में व्यंजनावृत्ति, षष्ठ में नाट्यशास्त्र, सप्तम में दोष, अष्टम में गुण, नवम् में रीति, एवं दशम में शब्दालङ्कार एवं अर्थालङ्कार। विश्वनाथ केवल दूसरी श्रेणी का आचार्य है।

10. रसगंगाधर

जगन्नाथ (सत्रहवीं शताब्दी) ने अपना बृहदाकार ग्रन्थ रसगंगाधर लिखा जो कि उसकी गम्भीर विद्वत्ता एवं सूक्ष्मदर्शिता को प्रकट करता है। उसने काव्य की पूर्ववर्ती परिभाषाओं के दोषों के निराकरण के लिए काव्य की परिभाषा को संशोधित किया है। काव्य का उद्देश्य अन्तःसुख प्रदान करता है। रसगंगाधर में जगन्नाथ ने स्वरचित उदाहरण दिए हैं, और ये उसे एक उत्कृष्ट कवि सिद्ध करते हैं। काव्य में उत्कृष्ट आनन्द स्थिति की धारणा अज्ञानान्धकार का निराकरण करती है। उसका यह सिद्धान्त यह सिद्ध करता है कि उस पर वेदान्त का प्रभाव है। जगन्नाथ काव्यशास्त्र के क्षत्र में अन्तिम महान् लेखक है।

11. औचित्यविचारचर्चा एवं कविकण्ठाभरण

अन्य उल्लेखनीय रचनाओं में क्षेमेन्द्र की औचित्यविचारचर्चा एवं कवि-कण्ठाभरण हैं। प्रथम रचना में क्षेमेन्द्र का कथन है कि काव्य सौन्दर्यतत्त्व औचित्य पर निर्भर करता है और यह सिद्धान्त रस के विकास में काफी योगदान देता है। वह सत्ताईस प्रकारों का उल्लेख करता है जिनमें औचित्यतत्त्व माना जा सकता है या उसका उल्लंघन हो सकता है। इस रचना का महत्त्व उद्धृत उदाहरणों एवं टिप्पणियों के कारण है। कुन्तक एवं क्षेमेन्द्र दोनों काव्यशास्त्र के अन्य लेखकों से भिन्न हैं, क्योंकि इन दोनों ने अपने को साहित्य का महान् आलोचक सिद्ध किया है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

द्वितीय रचना कविकण्ठाभरण में काव्यकला अर्थात् कवि बनने का ढंग, उद्धृत करने का सिद्धान्त एवं उसका औचित्य, काव्य सौन्दर्य एवं इसके विविध पहलू तथा विविध कलाओं का उल्लेख है जिन्हें कवि को जानना चाहिए।

काव्यशास्त्र पर बहुत से ग्रन्थ हैं। वे सब इस मत से सहमत प्रतीत होते हैं कि सुन्दर कविता के लिए प्रतिभा, व्युत्पत्ति एवं अभ्यास आवश्यक हैं। कवि को सांसारिक ज्ञान अवश्य होना चाहिए, उसे कोशों एवं छंदःशास्त्र से परिचित होना चाहिए, उसे संगीत, नृत्य तथा चित्रकला जैसी ललित कलाओं में निपुण होना चाहिए और उसे कामशास्त्र एवं अर्थशास्त्र से भी परिचित होना चाहिए। राजशेखर कारयित्री प्रतिभा एवं भावयित्री प्रतिभा का उल्लेख करता है जो काव्य की रचना एवं उसकी प्रशंसा करने के लिए अत्यन्त आवश्यक हैं। अन्य कृतियों से उद्धरण लेने में इन्हें कोई आपत्ति नहीं है यदि ये निपुणता से लिए जाए। आनन्दवर्धन का यह कथन उचित ह कि कवियों की कल्पना संसार को एक नया रूप दे देती है, जैसे कि ऋतु वृक्षों को नई सुन्दरता एवं ताजगी दे देती है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

V

उपसंहार

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उपसंहार

इस इतिहास में हमने 1500 ई० पू० से 1700 ई० के मध्य भारत में भारतीयों द्वारा लिखे गए संस्कृत-साहित्य से परिचय प्राप्त करने का प्रयत्न किया है। इस काल में अनेक आक्रमण एवं महान् राजनैतिक परिवर्तनों के होते हुए भी संस्कृत की सभी शाखाओं में यथेष्ट साहित्य की रचना हुई, जिसका सर्वेक्षण पिछले पृष्ठों में किया गया है। यह उल्लेखनीय है कि यह सर्वेक्षण न तो सर्वांगपूर्ण है और न ही बहुत अधिक विस्तृत। यहाँ प्रत्येक रचना का उल्लेख करना न तो अपेक्षित है और न संभव ही।

ऋग्वैदिक काल में इस देश के आर्य एवं आर्येतर मिलकर रहते थे, परस्पर सहयोग देते थे। वे ही तत्कालिक साहित्य, चिन्तनधारा एवं संस्कृति के सृजन के लिये जिम्मेदार थे। आदान-प्रदान एवं आत्मसात्करण का क्रम ऋग्वैदिक काल में ही प्रारंभ हो चुका था। हम देखते है कि उपनिषत्काल में याज्ञवल्क्य, शाण्डिल्य जैसे ब्राह्मणों ने, जनक, अश्वपति कैकेय, प्रतर्दन जैसे क्षत्रियों ने तथा सयुग्व रैक्व आदि शूद्रों ने तत्कालीन साहित्य एवं चिन्तनधारा को अपना योगदान दिया था। यह विशेष रूप से ध्यान देने योग्य है कि स्त्रियाँ भी इसमें पीछे नहीं थीं क्योंकि ऋग्वेद में अपाला, विश्वारा, घोषा जैसी स्त्री-ऋषियों के सूक्तों की चर्चा है तथा उपनिषदों में मैत्रैयी, गार्गी, वाचकण्वी आदि स्त्रियाँ-दार्शनिक परिचर्चा में भाग लेती देखी जाती हैं। प्राचीन काल में शीला, विजयाङ्का, सुभद्रा, प्रमुदेवी, इन्दुरेखा, मरूला, मोरिका के समान अन्य अनेक प्रसिद्ध कवयित्रियों का उल्लेख भी मिलता है।

लौकिक संस्कृत साहित्य के अनेक ऐसे नाटकार एवं कवि उल्लेखनीय हैं, जो विभिन्न वर्गों एवं जातिय के थे। यहाँ निर्विवाद रूप से भास, धावक, शूद्रक आदि कवियों के नाम गिनाए जा सकते हैं। एक सामान्य सर्वेक्षण से स्पष्ट हो जाएगा कि इसके (संस्कृत-साहित्य के) सृजन में राजाओं, मन्त्रियों, राज-कर्मचारियों

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तथा राजाश्रित विद्वानों का योगदान रहा है।

संस्कृत-साहित्य में एक अपूर्व विविधता है। विशुद्ध साहित्यिक दृष्टि से विचारने पर हमें पता चलता है कि इसमें काव्यशास्त्र में वर्णित विविध विधाओं जैसे महाकाव्य, नाटक, गीतिकाव्य नीतिकथा और प्रेमाख्यान साहित्य आदि समाविष्ट हैं। इससे भी महत्त्वपूर्ण बात यह है कि इसमें चिकित्सा एवं शल्यशास्त्र, विधि, गणित, गणित ज्योतिष एवं फलित ज्योतिष, दर्शन तथा इतिहास जैसे विभिन्न विषयों पर भी पर्याप्त साहित्य उपलब्ध है। यह वैविध्य मोहक तो है ही, साथ-साथ चौंकाने वाला भी है। संस्कृत साहित्य को राजकुचक्र की प्रेमकथा-संग्रह अथवा निरर्थक धार्मिक ब्राह्मण गल्प कहकर निन्दा करना अविवेकपूर्ण है।

इस लम्बे समय में प्रायः सभी धर्मों तथा सम्प्रदायों ने संस्कृत भाषा का उपयोग धार्मिक एवं लौकिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए किया है। वैदिक धर्म, कर्मकाण्डी ब्राह्मण, पौराणिक हिन्दू धर्मावलम्बी तथा जैनी साधुओं ने संस्कृत को अपना विचार वाहन बनाया। यहाँ बौद्ध लेखकों में अश्वघोष, धर्मकीर्ति दिङ्नाग तथा जैन लेखकों में हरिभद्र तथा हेमचन्द्र के नाम लिए जा सकते हैं। संस्कृत में तन्त्र-साहित्य भी प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है। संस्कृत के सम्बन्ध में यह धारणा बनाना कि यह एक विशिष्ट धर्म की भाषा है, अनुचित होगा। सभी दर्शन-सम्प्रदायों ने भी संस्कृत का उपयोग मुक्त रूप से किया है। फलतः विभिन्न दार्शनिक मत-मतान्तरों के होते हुए भी, उनके समर्थकों मे संबन्धित दर्शन-साहित्य पर्याप्त मात्रा में संस्कृत में उपलब्ध होता है।

इस लम्बी अवधि में विभिन्न जातियों एवं धर्मों से सम्बन्धित राजाओं का संस्कृत को संरक्षण प्राप्त होता रहा है। इस संदर्भ में मौर्य, शुंग तथा गुप्त राजाओं, शक-क्षत्रपों तथा उत्तर में हर्षवर्धन और दक्षिण में सातवाहन, पाण्ड्य तथा चोलों के नाम लिए जा सकते हैं जिन्होंने संस्कृत को मुक्त रूप से अपनाया। यहाँ तक कि मुगलों ने भी इसे अपनाया ओर इस प्रसंग में पण्डितराज जगन्नाथ का नाम उल्लेखनीय है। ब्रिटिश काल में संस्कृत अध्ययन-अध्यापन की ओर विशेष ध्यान दिया गया तथा संस्कृत-शिक्षण को एक नई प्रेरणा मिली। इस तरह आरम्भ से ही संस्कृत को राजकीय संरक्षण प्राप्त होता रहा है।

यह कहना अतिशयोक्ति नही होगी कि भारतवर्ष के सभी क्षेत्रों जैसे कश्मीर, बंगाल मगध, विदर्भ, केरल ने अपने अपूर्व एवं विशिष्ट योगदान द्वारा संस्कृत साहित्य को समृद्ध बनाया है। इस प्रकार संस्कृत समग्र भारतवर्ष की भाषा थी। नाटकों एवं शिलालेखों के संकेतों के अनुसार यद्यपि संस्कृत कुछ ही लोगों की बोलचाल की भाषा थी, किन्तु निश्चित रूप से विशाल जन-समूह इस भाषा को सरलता से समझता था। इस संक्षिप्त सर्वेक्षण से यह स्पष्ट होना चाहिये कि संस्कृत भाषा एवं साहित्य के सृजन में समग्र भारतवर्ष का योगदान रहा है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

संस्कृत में हमारी मूल्यवान् पारम्परिक सम्पदा सुरक्षित है। अतएव उन लोगों के द्वारा संस्कृत के सम्यक् अध्ययन-अध्यापन की आवश्यकता है, जिनके इतिहास, संस्कृति एवं उपलब्धियों का विश्लेषण यह भाषा करती है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

परिशिष्ट 1 —लेखकानुक्रमणिका

अग्गवंगस IV.3.5
अतिशालि IV.3
अत्रि IV.4.3
अनङ्गहर्ष मातृराज III.7.21
अनन्त III.2.10, III.3.6
अनुभूति स्वरूप IV.3.4, IV 10.1
अन्नमभट्ट IV.7.4
अभिनन्द III.5.12
अभिनवगुप्त III.7.12,13,22
अभिनवबाण III.7.22
अमरसिंह IV.1
अमरू III.6.2, III.6.5
अरिसिंह III.4.4
अश्वघोष III,1.2,III.5,
III.5.1, 2, 4, 5, 12
III.7.1, IV.5,6,1, 2
IV.7.4
आनन्द III.2.10
आनन्दगिरि IV.7.2
आनन्दवर्धन III.6.7, III.7.10
IV. 10. 1. 4
आपस्तम्ब IV. 4. 3
अपोदेव IV. 7. 1
आर्यदेव III. 5.2
आर्यभट्ट IV. 2, 3
आर्यशूर III. 5. 2
इन्द्रगोमिन् IV. 3. 4
ईश्वरकृष्ण IV. 7. 4
उग्रभूति IV. 3. 4
उत्पलदेव IV. 7. 7
उदयन IV. 7. 3, 4
उद्योतकर III. 3, 2, IV. 7. 3
उमास्वति IV. 7. 10
उशनस् IV.4.3
कच्चायन IV.3.4, 5
ककसेनवारिराज III.5.12
कपिल IV.7.5
कमलाकर IV.4.4
कमलीश्वर IV.3.4
कल्याणमल्ल IV.6.2
कल्लट IV.7.7
कल्हण III.4.3
III.5.12
कविराज III.3.2, III.5.12
कात्यायन IV.1.2,IIV.3.2
कामन्दकि IV.5.2

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कालिदास III.3.2, 3, III.4.3
III.5.3, 4, 5, 6, 7, 9, 10,
12, III.6.2, 4, 6, III 7. 3.
6, 16, 17, 20, IV. 1, 2,
IV. 5,2, IV 6.1
काश्यप IV. 3. 4
कुन्तक III. 7. 22, IV. 10. 5
कुमारदास III. 5. 9
कुमारलात III. 1.2
कुमारिल III. 1.1, 3, III. 7.1,
IV. 7. 10
कृष्णमित्र III. 7. 22
कृष्णलीलाशुक IV. 3. 3
केदारभट्ट IV. 2
केशवमिश्र IV. 7.4
केशवस्वामिन् IV. 1
कैय्यट IV. 3. 2
कोक्कक IV. 6. 1
कौटिल्य IV. 4, 4, IV.5. 1
क्षेमेन्द्र III. 2.1, 3, 6, 7, 8,
III. 4. 3, III. 5. 12,
IV. 6. 10, IV. 2,
IV. 10. 11
क्षीरस्वामिन् IV. 1
गङ्गादास IV. 2
गङ्गेश IV. 7. 3
गण IV. 5. 3
गदाधर IV. 7. 3
गुणचन्द्र III. 7. 12, 22
गुणाढ्य III. 2. 1, 3, III. 3. 2, 3
III. 7. 11
गोवर्धन III. 6. 7
गौड़पाद IV. 7. 2, 5
गौतम IV. 7. 4
घटकर्पर III. 6. 9
चक्रपाणिदत्त IV. 8. 5
चण्डपाल III. 7. 22
चण्डेश्वर IV. 4. 4
चण्डीश्वर IV. 5. 2
चन्द्र IV. 3. 4, 5
चन्द्रगोमिन् III. 5. 2
चरक IV. 8. 1
चरितसुन्दरगणि III. 5. 12
चिदम्बर III. 5. 12
जगन्नाथ III. 5. 1.2,
IV. 10. 10
जयदत्त IV. 5. 3
जयदेव III. 6. 4, 7, III. 7. 22,
IV. 6. 2, IV. 7. 3
जयन्त IV. 7. 3
जयरथ III. 2. 3, III. 5. 12
जयसिंह सिद्धराज IV. 3. 4
जयादित्य IV. 3. 3
जल्हण III. 4. 4, III. 6. 7
जिनेन्द्रबुद्धि III. 5. 10, IV. 3.3
जीमूतवाहन IV. 4. 4
जैमिनि IV. 7. 1, 2
जोनराज III. 4. 4
ज्योतिरीश्वर IV. 6. 2
तिसट IV. 8. 5
दक्ष IV. 4. 3
दण्डिन् III. 2. 3, III. 3, III. 3. 1,
III. 5. 8, IV. 2, IV. 5. 2,
IV. 10. 1, 2
दामोदर III. 6. 9, 4, 5, 3
दिङ्नाग III. 7. 9, IV. 7. 3
दिनकर IV. 5. 3
दुर्गसेन IV. 3. 4

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

देव IV. 3. 3
देवण्णभट्ट IV. 4. 4
देवप्रभसूरि III. 5. 12
धनञ्जय III. 7. 10, IV. 1
धनपाल III. 2. 3, III. 3. 5, IV. 1
धर्मकीर्ति III. 3. 2, IV. 7. 3
धर्मराज IV. 7. 2
धावक III. 7. 17
नकुल IV. 5. 3
नरहरि IV. 8. 5
नागार्जुन IV. 6. 2, IV. 7. 9,
IV. 8. 5
नागेशभट्ट IV. 3. 3
नागोजिभट्ट IV. 3. 2
नारायण III. 2. 1, 2, III. 3. 6,
IV. 5. 3
नारायणभट्ट IV. 7. 1
निम्बार्क IV. 7. 2
नीलकण्ठ IV. 4. 4
पतञ्जलि III. 1. 1, 2, III. 2. 1,
III. 3. 2, III. 5, IV. 3. 2,
IV. 5, IV 7. 6, IV. 8
पद्मनाभभट्ट IV. 3. 4
पद्मपाद IV. 7. 2
परमार्थ IV. 7. 5
पाणिनि I, III. 1. 1, 2, III. 2. 1,
III. 6. 7, IV. 2, 3,
IV. 3, 2, 3, 4
पिङ्गल III. 5, IV. 2
पुरुषोत्तमदेव IV. 1
पूज्यपाददेवनन्दिन् IV. 2. 4
प्रकाशात्मन् IV. 7. 2
प्रभाकर IV. 7. 1
प्रभुदेवी IV. 6. 7
प्रशस्तपाद IV. 7. 4
प्राज्यभट्ट III. 4. 4
वल्लालसेन III. 2. 10
वादरायण IV. 7. 2
वाण III. 1, III. 2. 3,
III. 3, III. 3. 2, III. 4, 5.
III. 4. 1, 3, III. 5.7, 1.
III. 6. 5, 7, III. 7. 17, 22
विल्वमङ्गल III. 6. 7
विल्हण III. 4. 2, III. 6. 2
बुद्धभट्ट IV. 5. 3
बुद्धस्वामिन् III 2. 4
बृहस्पति IV.5
बौधायन III. 7. 22
ब्रह्मगुप्त IV. 9. 2, 3
भट्टनायक IV. 10. 1
भट्टनारायण III. 7. 10, IV. 6. 2
भट्टि III. 5. 8, IV. 10. 1
भट्टोजिदीक्षित IV. 3. 3
भरत IV. 5. 1, IV. 10. 1
भर्तृहरि III. 5. 7, III. 6. 1, 2,
IV. 3. 3
भवभूति III. 5. 12, III. 7. 3, 14,
15, 16, 19, 20, IV. 2,
V. 5. 2, IV 6. 1
भामह III. 3. 1, III. 5. 8,
IV. 10. 1, 2
भारवि III. 3. 2, III. 5. 7, 10, 12,
IV. 2
भास III. 2. 3, III. 3. 2, 3,
III. 7. 2, IV. 5
भासर्वज्ञ IV. 7. 3
भास्कराचार्य IV. 9. 2, 3
भावमिश्र IV. 8. 5

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भोज III. 3. 6, III. 7. 12, 22,
IV. 5. 2, IV. 5. 3
भौमक III. 5. 12
मङ्ख III. 3. 2, III. 5. 12, IV. 1
मण्डनमिश्र IV. 7. 1
मथुरानाथ IV. 7. 3
मदनपाल IV. 4, 4, IV. 8. 5
माधव IV. 7. 2
मनु IV. 4. 1, IV. 5. 2
मम्मट IV. 6. 1
मल्लिषेण IV. 7. 10
महावीराचार्य IV. 9. 3
महिमभट्ट IV. 10. 7
महेन्द्रविक्रमवर्मन् III. 7. 8
मयूर III. 6. 5
माघ III. 5. 8, 10. IV. 3. 3
IV. 6. 1
माठर IV. 7. 5
माणिक्यनन्दिन् IV. 7. 3
माणिक्यसूरि III. 5. 12
मातृगुप्त III. 5. 12
मातृचेट III. 5. 2
माधव IV. 7. 1, 2, 10
मानतुङ्ग III 6. 7
मायूराज III. 7. 22
मित्रमिश्र IV. 4. 4
मुरारि III. 7. 9, 22 IV. 7. 1
मेण्ठ III. 3. 2, III. 5. 12
मेदिनिकार IV. 1
मेरुतुङ्ग III। 2. 10
मैत्रेयरक्षित IV. 3. 3
मोग्गलायन IV. 3. 5
यशोधरा IV. 6. 2
यशोवर्मन् III. 7. 22
यादवप्रकाश IV. 1
यास्क IV. 1, 3, 10
रघुनन्दन IV. 4. 4
रघुनाथशिरोमणि IV. 7. 3
रविचन्द्र III. 6. 2
राजशेखर III. 2. 10, III. 5,
9, 12 III 7. 20, 22,
IV. 10. 6
रत्नकार III. 5. 12
रामचन्द्र III. 7. 12, 22, IV. 3. 3
रामानुज III. 1. 1, 3, IV,
IV. 7. 1, 2
रायमुक्तामणि IV. 1
रावण IV. 3. 5
रुद्रट IV. 10. 11
लक्ष्मणभट्ट III. 3. 6
लक्ष्मीधर IV. 4. 4
लङ्केश्वर IV. 3. 5
लिखित IV. 4. 3
लीलाशुक III. 6. 7
लोल्लट IV. 10. 1
लोलिम्बराज IV. 8. 5
लौगाक्षिभास्कर IV. 7. 4
वरदराज IV. 3. 3, IV. 7. 3,
III 2. 10
वररुचि III. 6. 9, IV. 2,
IV. 3. 3, 4, 5, IV. 10
वराहमिहिर III. 4. 3, IV. 2,
IV. 6. 1, IV. 9. 1, 2,
IV. 9. 4
वर्धमान IV. 5. 3, IV. 7. 3
वल्लभ IV. 7. 2
वल्लभदेव III. 2. 8, III. 6. 7
वसुगुप्त IV. 7. 7

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वसुनाग III. 7. 22
वसुबन्धु III. 1. 2, IV. 7. 5, 9
वाक्कूट III.6.7
वाक्पतिराज III.3.2, III.4.1
वाग्भट IV.3.3
वाचस्पति IV.1, IV.4. 4, IV.7.1, 2, IV.7.3, 5
वात्स्यायन III.5, IV.5.1, IV.6.1, IV.7.3
वामन III.5.9, III.6.2, III.7.10, IV.3.3, IV.5.2, IV.9.3
वामनभट्टबाण III.7.22
वाल्मीकि III.1, III.1.2, III.3.2, III.5.1, 12, III.7.16
विक्रमादित्य IV.1, IV.5.3
विजयाङ्क III.6,8
विज्जक III.7.22
विज्ञानभिक्षु IV.7.5, 6
विमलसूरि III.2
विशाखदत्त III.7.11, 12
विशाखदेव III.7.13
विशालाक्ष IV.5
विश्वनाथ IV.10.9
विश्वेश्वर IV.4.4
वृन्द IV.8.5
वैतालभट्ट III.6.9
वैसभूपाल III. 6. 2
व्याडि IV. 1, IV. 3. 2
व्यास III. 1. 1, IV. 7. 6
शबरस्वामी IV, IV. 7. 1
शङ्कर III. 1. 1, 3, III. 6. 2, IV, IV. 7. 2
शङ्करमिश्र IV. 7. 4
शङ्कुक IV. 10. 1
शङ्ख IV. 4. 3
शम्भु III. 4. 4
शाकटायन IV. 3. 1, 4
शाकल्य IV. 3
शान्तदेव IV. 3. 3
शान्तिदेव III. 5. 2
शाण्डिल्य IV. 7. 7
शार्ङ्गदेव IV. 5. 3
शार्ङ्गधर III. 6. 7
शारदातनया III 7. 22
शाश्वत IV. 1
शिवदास III. 2. 8, 10
शिवस्वामी III. 5. 12
शिवादित्य IV. 7. 5
शीलभट्टारिका III. 6. 7
शुक III. 4. 4
शूद्रक III. 7. 2, 3
शेषनाग IV. 3. 5
शौनक III. 7. 22, IV. 3
श्रीकुमार IV. 5. 3
श्रीधर III 6. 7, IV. 7. 4, IV. 9. 3
श्रीधरदास III. 6. 7, V.7
श्रीवश III. 4. 4
श्रीहर्ष III. 5. 10, 11, III. 6. 7, III. 7. 17, 18, IV. 72
सम्वर्त IV. 4. 3
सदानन्द IV. 7. 2
सदाशिव IV. 5. 3
सन्ध्याकरनन्दिन् III. 4. 4
सर्वज्ञमित्र III. 6. 7
सर्ववर्मन् IV. 3. 4
सर्वानन्द IV. 1
सायन्तभद्र IV. 7. 10

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सातवाहन III. 3. 3
सर्वज्ञदेव III. 3. 3, IV. 5. 3
सिद्धसेनदिवाकर III. 6. 7, IV. 7. 3
सुबन्धु III. 1. 1, III. 2. 3, III. 3, III. 3. 2, III. 5. 10, 12, IV. 6. 1
सुभद्र III. 6. 7
सुरेश्वर IV. 8. 5
सुश्रुत IV. 8. 2
सोमदेव III. 2. 1, III. 2. 3, 7 III. 6, III. 5.12, IV. 5.3
सोमदेवसूरि III. 2. 3, IV. 5. 2
सोमानन्द IV. 7. 7
सोमेश्वरदत्त III. 4. 4
स्वात्मारामयोगिन्द्र IV. 7. 6
हरदत्तसूरि III. 5. 12
हरिचन्द्र III. 3. 2, 3, III. 5. 12
हरिभद्र IV. 7. 10
हर्षदेव IV. 3. 4
हलायुध III. 5. 12, IV. 1, IV. 3.4
हाल III. 6. 7
हेमचन्द्र III. 4. 4, III. 5. 12, IV. 3. 4, IV. 3. 5, IV. 5. 2, IV. 7. 3, IV. 7. 10
हेमाद्रि IV. 4. 4

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

परिशिष्ट 2 —ग्रन्थानुक्रमणिका

अगस्तिमत IV. 5. 3
अग्निपुराण III. 1. 3; IV. 1;
IV. 8. 2; IV. 10.1
अणुभाष्य IV. 7. 2
अथर्ववेद I, II; II. 2, 5,
III. 1. 1, 3,
III. 7, IV; IV. 7,
IV. 8
अद्भुत ब्राह्मण II. 5
अनङ्गरङ्ग IV. 6. 2
अनङ्गसेनाहरिनन्दी III. 7. 22
अनर्घराघव III. 7. 19
अनेकार्थकोश IV. 1
अनेकार्थशब्दकोश IV. 1
अनेकार्थसमुच्चय IV. 1
अनुक्रमणी IV. 2
अणुयोगद्वार सूत्र IV. 5. 1
अभिज्ञानशाकुन्तल III. 5. 2, 3;
III. 5. 6;
III. 6. 1;
III. 7. 5. 6
अभिधर्मकोश IV. 7.9
अभिधानचिन्तामणि IV. 1
अभिधानरत्नमाला IV. 1
अभिनवराघव III. 7. 22
अभिषेक III. 7. 2
अभिसारिकावंचितक III. 7. 13
अमरकोश IV. 1; IV. 8. 5
अमरुशतक III. 6. 2, 3
अर्जुनरावणीय III. 5. 12
अर्थशास्त्र III. 1. 1; III. 2. 1,
III. 4. 3; IV. 4. 1,
IV. 5; IV. 5. 1, 2;
IV. 6. 1, 2
अर्थसंग्रह IV. 7. 1
अवदान III. 5. 2, 12
अविमारक III. 7. 2
अवेस्ता I, II. 1, 2
अष्टाध्यायी I, IV. 3. 1
अष्टमहाश्रीचैत्यस्तोत्र III. 6. 7
अश्ववैद्यक IV. 5. 3
अश्वचिकित्सा IV. 5. 3
अश्वायुर्वेद IV. 5. 3
अहिर्बुध्न्यसंहिता IV. 7. 7
आत्मबोध IV. 7. 2
आदित्यपुराण III. 1. 3

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आपस्तम्ब गृह्यसूत्र II. 8
आपस्तम्ब धर्मसूत्र II. 8; III. 1. 3
आपस्तम्बशुल्वसूत्र II. 8,
आपस्तम्ब श्रौतसूत्र II. 8
आप्तमीमांसा IV. 7. 10
आयुर्वेद IV. 8
आरण्यक I; II; II. 2. 6; III. 5; IV; IV. 7
आर्यभटीय IV. 9. 2
आर्यसिद्धान्त IV. 9. 2
आर्यासप्तशती III. 6. 7
आश्चर्यचूडामणि III. 7. 22
आश्वलायन गृह्यसूत्र III. 1; IV. 4, IV. 4. 2
आश्वलायनश्रौतसूत्र II. 8
ईश्वरप्रत्यभिज्ञानसूत्र IV. 7. 7
ईश्वरसंहिता IV. 7. 7
ईश-उपनिषद् II. 3; II. 7
उणादिसूत्र IV. 3
उत्तररामचरित III. 7. 1, 4, 16
उत्पलिनी IV. 1
उदयसुन्दरीकथा III. 3. 6
उदानवर्ग IV. 7. 9
उदात्तराघव III. 7. 22
उन्मादवासवदत्त III. 7. 22
उपदेशसाहस्री IV. 7. 2
उपस्कार IV. 7. 4
उपनिषद् I. 2; II. 2, 3, 7, 8; III. 1. 2; III. 2; III. 3; IV. I. 3, 2; III. 5; III. 6. 9; IV, IV. 5; IV. 7; IV. 7. 2, 5, 6, 8; IV. 9; IV. 10
उभयाभिसारिका III. 7. 7
उरुभङ्ग III. 7. 2
ऋक्प्रातिशाख्य IV. 2, 3
ऋग्वेद I; II; II. 1, 2, 3, 4, 5; III. 1. 2; III. 2; III. 4, III. 5; III. 6. 9; III. 7; IV. 2; IV. 3; IV. 4. 1; IV. 5; IV. 7; IV. 7. 6,8; IV. 10
ऋतुसंहार III. 5. 1; 3
एकाक्षरकोश IV. 1
एकोत्तरागम IV. 7. 9
ऐतरेय ब्राह्मण II. 5
ऐतेरेय उपनिषद् II. 7
औचित्य विचार चर्चा IV. 10. 11
कंसवध III. 7. 22
कठोपनिषद् II. 7
कठ संहिता II. 3
कथार्णव III. 2. 10
कथासरित्सागर III. 2. 1, 3, 7, 8; III. 3. 4
कपिष्ठल संहिता II. 3, IV. 3. 1
कप्फणाभ्युदय III. 5. 12
कमलिनीकलहंस III. 7. 22
कर्णसुन्दरी III. 4. 1; III. 7. 22
कर्पूरमञ्जरी III. 7. 20
कलाविलास III. 6. 10
कल्पनामण्डितिका III. 1. 2; III. 5. 1
कल्याणमन्दिरस्तोत्र III. 6. 7
कल्याणसौगन्धिका III. 7. 22
कविकण्ठाभरण IV. 10. 11

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कविरहस्य III. 5. 12
कवीन्द्रवचन-समुच्चय III. 6. 7
काठक गृह्यसूत्र II. 8
कात्यायन शुल्वसूत्र II. 8
कात्यायन श्रौतसूत्र II. 8
कादम्बरी III. 3. 2, 4
कादम्बरीकथासार III. 5. 12
कामन्दकीय नीतिसार III. 2. 2
कामसूत्र III. 5; III. 5. 1;
IV. 5. 1;
IV. 6. 1, 2
काव्यमीमांसा IV. 10. 6
काव्यादर्श III. 3. 1; IV. 10. 2
काव्यप्रकाश IV. 10. 8, 9
काव्यानुशासन III. 7. 7
काव्यालङ्कार IV. 10. 2
काव्यालङ्कारसूत्र IV. 10. 3
काशिकावृत्ति III. 5. 2, 9, 10;
IV. 3. 3
किरणावलि IV. 7. 4
किरातार्जुनीय III. 5. 7;
III. 7. 22
कुट्टनीमत III. 6. 10
कुन्दमाला III. 7. 9
कुमारपालचरित III. 4. 4
कुमारसंभव III. 5. 3, 4, 5;
III. 6. 4,
III. 7. 22
कुलचूडामणितन्त्र IV. 7. 7
कुलार्णव IV. 7. 7
कुसुमाञ्जलि IV. 7. 3
कूर्मपुराण III. 1. 3
कृष्णलीलामृत III. 6. 7
केनोपनिषद् II. 7
कौमुदी महोत्सव III. 7. 22
कौमीतकि उपनिषद् II. 7
कौषीतकि ब्राह्मण II. 5
खण्डन-खण्ड-खाद्य IV. 5. 11,
IV. 7. 2
खादिर गृह्यसूत्र II. 8
गद्यचिन्तामणि III. 4. 5
गणपाठ IV. 3. 3
गणितसारसंग्रह IV. 9. 3
गरुड पुराण III. 1. 3
गाथा संग्रह IV. 7. 9
गार्गी संहिता IV. 9
गीतगोविन्द III. 6. 4, 7
गीताभाष्य IV. 7. 2
ग्रहगणित IV. 9. 3
गोल IV. 9. 3
गौड़वह III. 3. 2; III. 4. 1
गौतम गृह्यसूत्र II. 8
घटकर्पर III. 6. 6
चण्डीशतक III. 3. 2;
III. 6. 7
चण्डीस्तोत्रगाथा III. 5. 1
चतुःशतिका III. 5. 2
चतुर्मणि III. 7. 7
चतुर्वर्गचिन्तामणि III. 6. 10
IV. 4. 4
चान्द्रव्याकरण IV. 3. 4
चरक संहिता IV. 8. 1, 2
चरियापिटक III. 5. 2
चाणक्यनीति III. 6. 9

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चारुचर्याशतक III. 6. 10
चिकित्साकलिका IV. 8. 5
चिकित्सामृत IV. 8. 5
चिकित्सासार संग्रह IV. 8. 5
चित्रभारत III. 7. 22
चित्रोत्पलावलंवितक III. 7. 22
चिन्तामणि IV. 4. 4
चैतन्यचन्द्रोदय III. 7. 22
चौरञ्चाशिका IV. 6. 3
छन्दःसूत्र IV. 2
छन्दानुशासन IV. 2
छन्दःमञ्जरी IV. 2
छन्दोविचिति III. 3. 1, 2;
IV. 2
छलिताराम III. 7. 22
छान्दोग्य उपनिषद् II. 6; II. 7
जयमङ्गल IV. 6. 2
जातक III. 1. 1;
III. 2. 1
जातकमाला III. 5. 2
जानकीपरिणय III. 7. 22
जानकीहरण III. 5. 9
जामदग्न्यजय III. 7. 22
जिनेन्द्रव्याकरण IV. 3. 4
जीवनधरचम्पू III. 3. 6
जैमिनीय ब्राह्मण II. 2. 5
जैमिनीय श्रौतसूत्र II. 8
ज्ञानार्णव IV. 7. 7
तत्वचिन्तामणि IV. 7. 3
तत्वसमास IV. 7. 5
तत्वार्थाधिगमसूत्र IV. 7. 10
तन्त्रराज IV. 7. 7
तपतीसंहरण III. 7. 22
तर्ककौमुदी IV. 7. 4
तर्कभाषा IV. 7.4
तर्कसंग्रह IV. 7. 4
ताड्यमहाब्राह्मण II. 2. 5
तापसवत्सराजचरित III. 7. 21
तार्किकरक्षा IV. 7. 3
तिलकमञ्जरी III. 2. 3; III. 3. 5
तैत्तिरीय आरण्यक II. 6
तैत्तिरीय ब्राह्मण II. 5
तैत्तिरीय संहिता II. 3
त्रिपिटक III. 1. 1, 2
त्रिपुरदाह III. 7. 22
त्रिशती IV. 9. 3
त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित III. 5. 12
थेरगाथा III. 6. 8
थेरीगाथा III. 6.8
दशकुमारचरित III. 2. 3;
III. 3.1, 4
दशगीतिकासूत्र IV. 9. 2
दशरूपक III. 7. 22
दशरथजातक III. 2
दशावतारचरित III. 5. 12
दुर्घटवृत्ति IV. 3. 3
दूतघटोत्कच III. 7. 2
दूतवाक्य III. 7. 2
दृष्टान्तशतक III. 6. 9
देवी चन्द्रगुप्त III. 7. 12
देवीशतक III. 6. 7
द्राह्यायण श्रौतसूत्र II. 8
द्रौपदीस्वयंवर III. 7. 22
दैव IV. 3. 3

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

द्विरूपकोश IV. 1
धातुपाठ IV. 1; IV. 3. 3
धातुप्रदीप IV. 3. 3
धनुर्वेद IV. 5. 3
धन्वन्तरि निघण्टु IV. 8. 5
धर्मनिवन्ध IV. 4. 4
धर्मपद IV. 7. 9
धर्मबिन्दु IV. 7. 10
धर्मरत्न IV. 4. 4
धर्मशर्माभ्युदय III. 5. 12
धूर्त-विट-संवाद III. 7. 7
ध्वन्यालोक IV. 10. 4
नन्दीसूत्र IV. 5. 1
नलचम्पू III. 3. 6
नलविलास III. 7. 22
नवसाहसाङ्कचरित III. 4. 1
नागानन्द III. 5. 10;
III. 7. 17, 18
नाट्यदर्पण III. 7. 12
नाट्यशास्त्र III. 3. 2; IV. 2;
IV. 3. 5; IV. 5. 1, 3;
IV. 10. 1
नाममाला IV. 1
नामलिङ्गानुशासन IV. 1
नारदस्मृति IV. 4. 3
निघण्टु IV. 1
निदानकथा III. 5. 1
निदानसूत्र IV. 2
निरुक्त II. 1; IV. 1
निर्णयसिन्धु IV. 4. 4
निर्णयभीम III. 7. 22
नीतिप्रदीप III. 6. 9
नीतिरत्न III. 6. 9
नीतिवाक्यामृत IV. 5. 2
नीतिशतक III. 6. 9
नीतिसार III. 6. 6, 9
IV. 5. 2
नीलमतपुराण III. 4. 3
नृपावलि III. 4. 3
नेपालमाहात्म्य III. 2. 3
नैषधचरित III. 5. 11.
न्यायकणिका IV. 7. 1
न्यायकन्दली IV. 7. 4
न्यायप्रवेश IV. 7. 3
न्यायबिन्दु IV. 7. 3
न्यायभाष्य IV. 7. 3
न्यायमञ्जरी IV. 7. 3
न्यायमालाविस्तार IV. 7. 1
न्यायवार्तिक IV. 7. 3
न्यायवार्त्तिकतात्पर्यटीका IV. 7. 3
न्यायसार III. 5. 10
न्यायसूत्र IV. 7. 3
न्यायावतार IV. 7. 3
न्यास IV. 3. 3
पउमचरिया III, 1. 2
पञ्चतंत्र III. 2; III. 2. 1
II. 4; III. 3. 4. III. 6. 1;
IV. 5; IV. 5. 2
पञ्चपादिका IV. 7. 2
पञ्चसायक IV. 6. 2
पञ्चसिद्धान्तिका IV. 9.1
पथ्यापथ्यनिघण्टु IV. 8. 5
पदपाठ IV. 3
पदार्थधर्मसंग्रह IV. 7. 4

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पद्यकादम्बरी III. 5. 12
पद्मप्राभृतक III. 7. 7
पराशर स्मृति IV. 4.3
परिभाषेन्दुशेखर IV. 4. 3
परीक्षामुखसूत्र IV. 7. 3
पञ्चविंशब्राह्मण II. 5
पञ्चरात्र III. 7. 2
पद्मपुराण III. 1. 3
पादताडितक III. 7. 7
पाण्डवचरित III. 5. 12
पाण्डवानन्द III. 7. 22
पायलच्छी नाममाला IV. 1
पारसिप्रकाश IV. 1
पारस्कर गृह्यसूत्र II. 8
पार्वतीपरिणय III. 3. 2; III. 7. 22
पुराण II 1; II.4, III, 1.2,
III. 1.3; IV. 5. 1
पुरुषकार IV. 3. 3
पुष्पदूषितक III. 7. 22
पृथ्वीराजविजय III. 4. 4
पैतामहसिद्धान्त IV.9.1
पौलिश IV.9.1
प्रक्रियाकौमुदी IV. 3. 3
प्रचण्डपाण्डव III. 7. 20
प्रतिज्ञाचाणक्य III. 7. 22
प्रतिज्ञानिरुद्ध III. 7. 22
प्रतिज्ञायौगन्धरायण III. 7. 2
प्रतिमा III. 7. 2
प्रमाणसमुच्चय IV. 7. 3
प्रमाणमीमांसा IV. 7. 3
प्रबन्धकोश III. 2. 10
प्रबोधचन्द्रोदय III. 7. 22
प्रबोधचिन्तामणि III. 2. 10
प्रश्नोपनिषद् II. 7
प्रसन्नराघव III. 7. 22
प्राकृतकामधेनु IV. 3. 5
प्राकृतप्रकाश IV. 3. 3, 5
प्राकृतलक्षण IV. 3. 5
प्राकृतव्याकरणसूत्र IV. 3. 5
प्रियदर्शिका III. 7. 17
प्रौढमनोरमा IV. 3. 3
फिटसूत्र IV. 3. 3
वार्हस्पत्य अर्थशास्त्र IV. 5
वालरामायण III. 7. 20
वालभारत III. 7. 20
वालाववोध IV. 3. 4
वाहुदन्तक IV. 5
वीजगणित IV. 9. 3
वुद्धचरित III. 5. 1, 2, 5
वुद्धानुस्मृति IV. 7. 9
वृहत्कथा III. 2. 1, 3;
III. 3. 2;
III. 7. 11
कश्मीरी वृहत्कथा III. 2. 5
वृहत्कथाश्लोकसंग्रह III. 2. 4
वृहद् ब्रह्म संहिता IV. 7. 7
वृहत् संहिता III. 4. 3; IV. 2;
IV. 9. 4
वृहती IV. 7. 1
वृहदारण्यकोपनिषद् II. 7; IV. 4. 2
वृहस्पति स्मृति IV. 4. 3
वोधिचर्यावतार III. 5. 2
वौद्धधिक्कार IV. 7. 3
वौधायन गृह्यसूत्र II. 8; IV. 4

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बौधायन शुल्वसूत्र IV. 8
ब्रह्मपुराण III. 1. 3
ब्रह्मवैवर्त पुराण III. 1. 3
ब्रह्माण्ड पुराण III. 1. 3
ब्राह्मण I. 2; II. 2; II. 5;
II. 1. 1; III. 3. 1;
III. 4; III. 5; III. 6. 9;
IV; IV. 2; IV. 3; IV. 9
ब्रह्मसिद्धान्त IV. 9. 1, 2
ब्रह्मसूत्र IV. 7. 2
ब्राह्मण सर्वस्व IV. 4. 4
भक्तामरस्तोत्र III. 6. 7
भक्तिसूत्र IV. 7. 7
भगवदज्जुकीय III. 7. 22
भगवद्गीता III. 1; IV. 7. 2
भगवन्तभास्कर IV. 4. 4
भरतद्वात्रिंशिका III. 2. 10
भविष्य पुराण III. 1. 1, 3
भागवत पुराण III. 1. 3
भाणशृङ्गारभूषण III. 7. 22
भामती IV. 7. 2
भामिनीविलास III. 5. 12
भावप्रकाश IV. 8. 5
भावप्रकाशिका III. 7. 22
भारत मञ्जरी III. 5. 12
भारतचम्पू III. 3. 6
भुवनाभ्युदय III. 4. 1
भृगुसंहिता IV. 4. 1
भेडसंहिता IV. 8. 2
भोजप्रबन्ध III. 2. 10
मत्तविलास III. 7. 8
मत्स्य पुराण III. 1. 3
मदन पारिजात IV. 4. 4
मदनरेखा कथा III. 2. 10
मदनविनोद निघण्टु IV. 8. 5
मदालसाचम्पू III. 3. 6
मध्यमव्यायोग III. 7. 2
मध्यसिद्धान्त कौमुदी IV. 3. 3
मध्यमागम IV. 7. 9
मनुस्मृति IV. 4. 1. 1, 3; IV. 5
मल्लिकामकरन्द III. 7. 22
मल्लिकामारुत III. 7. 22
महानारायण उपनिषद् II. 7
महाभारत II. 1; III. 1. 1, 2;
III. 2; III. 2. 2;
III. 3. 2, 7; III. 4. 3;
III. 5, III. 5. 1, 7, 10, 12
III. 6. 9; III. 3. 2; 6, 10,
20, 22; IV. 4, IV. 4. 1,
IV. 7. 5, IV. 10. 4
महाभारतमंजरी III. 2. 6
महाभाष्य IV. 3. 2; IV. 3. 3;
IV. 6. 2
महायानश्रद्धोत्पाद III. 5. 1
महावग्ग II. 2; III. 5. 1, IV. 8
महावीरचरित III. 7. 14, 16, 19
महाव्युत्पत्ति IV. 1
महीपालचरित III. 15. 2
मातङ्गलीला IV. 5. 3
माधवीयधातुवृत्ति IV. 3. 3
माध्यमिकसूत्र IV. 7. 9
माण्डूक्य उपनिषद् II. 7
मानमेयोदय IV. 7. 1
मानवगृह्यसूत्र II. 8

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मानव धर्मसूत्र IV. 4. 1
मानसार IV. 5. 3
मायापुष्पक III. 7. 22
मायामत IV. 5. 3
मार्कण्डेय पुराण III. 1. 3
मालतीमाधव III. 7. 14, 16; IV. 5. 2
मालविकाग्निमित्र III. 5. 3; III. 7. 4, 5 III. 7. 17
मिताक्षरा IV. 4. 2
मीमांसानुक्रमणी IV. 7. 1
मीमांसान्यायप्रकाश IV. 7. 1
मुकुटताडितक III. 7. 22
मुण्डक उपनिषद् II. 7
मुद्राराक्षस III. 6. 1; III. 7. 11; IV. 5. 1
मृगावतीचरित III. 5. 12
मृच्छकटिक III. 3. 1; III. 7. 2 III. 3. 6; III. 7. 9
मेघदूत III. 4. 3; III. 5. 3, 6; 3. 6; III. 7
मोहपराजय III. 7. 22
मोहमुद्गर III. 6. 10
मैत्रायणी उपनिषद् II. 7
मैत्रायणी संहिता II. 7
यजुर्वेद I; II; II. 3, 5; III. 7; IV. 7. 14; IV. 2; IV. 4. 2
यवनजातक IV. 9. 4
यशस्तिलक III. 2. 3, III. 3. 6; III. 5. 12
यशोधराचरित III. 5. 12
याज्ञवल्क्यस्मृति IV. 4. 2
युक्तिकल्पतरु IV. 5. 2
योगदृष्टि समुच्चय IV. 7. 10
योगमञ्जरी IV. 5. 3
योगभाष्य IV. 7. 6
योगवसिष्ठ IV. 7. 2
योगसूत्र IV. 3. 2; IV. 7. 6
योगसूत्र (जैन) IV. 7. 10
रघुवंश III. 4. 3 ; III. V. 1, 3; V, 9
रघुविलास III. 7. 22
रतिमंजरी IV. 6. 2
रतिरहस्य IV. 6. 2
रतिसार IV. 6. 2
रत्नपरीक्षा IV. 5. 3
रत्नावली III. 3. 2; III. 7. 10, 17, 20
रसगङ्गाधर IV. 10. 10
रसरत्नसमुच्चय IV. 8. 5
रसरत्नाकर IV. 8. 5
रसायनशास्त्र IV. 9. 5
रसार्णव IV. 8. 5
रागविबोध IV. 5. 3
राघवनैषधीय III. 5. 12
राघवपाण्डवीय III. 3. 2; III. 5. 12
राघवाभ्युदय III. 7. 22
राजतरङ्गिणी III. 4. 3
राजतरङ्गिणी (जैन) III. 4. 4
राजनीतिसमुच्चय III. 6. 9
राजावलिपताका III. 4. 4
राजेन्द्रकर्णपूर III. 4. 4
रामचरित III. 5. 12

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रामपालचरित III. 4. 4,
III. 5. 12
रामाभ्युदय III. 7. 22
रामायण III; III. 1. 2;
III. 2. 3
III. 3. 2; III. 4. 3; III. 5;
III. 5. 1, 6, 12;
III. 7. 2, 9, 16,
20, 22; IV. 10. 4
रामायणचम्पू III. 3. 6
रामायणमञ्जरी III. 2. 6; III. 5. 12
रावणवध III. 5. 8
रावणार्जुनीय III. 5. 12
रुक्मिणीपरिणय III. 7. 22
रुग्विनिश्चय IV. 8. 5
रोमक सिद्धान्त IV. 9. 1
रोहिणी मृगाङ्क III. 7. 22
लङ्कावतारसूत्र IV. 7. 9
लघु-अर्हन्नीति IV. 5. 2
लघुसिद्धान्तकौमुदी IV. 3. 3
ललित विस्तर IV. 7. 9
लाट्यायन श्रौतसूत्र II. 8
लिङ्गपुराण III. 1. 3
लिङ्गानुशासन IV. 3. 4
लीलावती IV. 9. 3
लोकतत्वनिर्णय IV. 7. 10
वक्रोक्तिजीवित IV. 10. 5
वज्रसूची III. 5. 1
वराह पुराण III. 1. 3
वाक्यपदीय III. 6. 1;
IV. 3. 3
वाजसनेय संहिता II. 3
वायु पुराण III. 1. 3
वाररुचसंग्रह IV. 3. 3
वार्तिक IV, 3, 2
वाल्मीकि सूत्र IV. 3. 5
वासवदत्ता III. 3. 2;
III. 5. 10
विक्रमाङ्कदेवचरित III. 4. 2;
III. 6. 2
विक्रमोर्वशीय III. 5. 3;
III. 7. 5;
III. 7. 21
विदग्धमाधव III. 7. 22
विद्धशालभञ्जिका III. 7. 20
विधिविवेक IV. 7. 1
विनय IV. 7. 9
विष्णुधर्मोत्तरपुराण IV. 5. 3;
IV. 8. 2; IV. 9. 1
विष्णुस्मृति IV. 5; IV. 8. 2
विश्वप्रकाश IV. 1
वीणावासवदत्ता III. 7. 22
वीरचरित III. 2. 10
वीरमहेश्वर IV. 7. 7
वीरमित्रोदय IV. 4. 4
वृत्तरत्नाकर IV. 2
वृद्धचाणक्य III. 6. 9
वृन्दमाधव IV. 8. 5
वृषभानुजा III. 7. 22
वेतालपञ्चविंशतिका III. 2. 2, 4,
8, 10
वेद I; II. 5, 8; III. 1. 3;
IV. 7; IV. 9
वेदाङ्ग I; II; II. 5; IV. 9

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वेदान्तदीप IV. 7. 2
वेदान्तपरिभाषा IV. 7. 2
वेदान्तपारिजातसौरभ IV. 7. 2
वेदान्तसार IV. 7. 2
वेदार्थसंग्रह IV. 7. 2
वेणीसंहार III. 7. 10
वैजयन्ती IV. 1
वैद्यजीवन IV. 8. 5
वैराग्यशतक III. 6. 1
व्यक्तिविवेक IV. 10. 7
शतपञ्चशतिकास्तोत्र III. 5. 2
शतपथ ब्राह्मण II. 5
शब्दप्रदीप IV. 8. 5
शब्दार्णव IV. 1
शाकटायन व्याकरण IV. 3. 4
शाङ्करजय IV. 7. 2
शाङ्करदिग्विजय IV. 7. 2
शाङ्करभाष्य IV. 7. 2
शाङ्खायन ब्राह्मण II. 5
शाबरभाष्य IV. 7. 1
शारदचन्द्रिका III. 7 22.
शार्ङ्गधरपद्धति III. 6. 7
शार्ङ्गधर संहिता IV. 8. 5
शालिवाहनकथा III. 2. 10
शालिहोत्र IV. 5. 3
शिल्परत्न IV. 5. 3
शिशुपालवध III. 5. 8, 10
शिष्यलेखाधर्मकाव्य III. 5. 2
शिष्यहितन्यास IV. 3. 4
शिवदृष्टि IV. 7
शिवसङ्कल्पोपनिषद् II. 3
शिवसूत्र IV. 7. 7
शुकसप्तति IV. 2. 2; III. 2. 9
शुक्रनीति IV. 5. 2
शृङ्गारतिलक III. 6. 6
शृङ्गारप्रकाश III. 7. 22
शृङ्गारशतक III. 6. 1
श्रीकण्ठचरित III. 3. 2; III. 5. 12
श्रीभाष्य IV. 7. 2
श्रुतबोध IV. 2
श्लेषार्थपदसंग्रह IV. 1
श्लोकवार्तिक IV. 7. 1
श्वेताश्वर उपनिषद् II. 7
षड्विंश ब्राह्मण II. 5
षष्टितन्त्र IV. 7. 5
संसारावर्त IV. 1
संक्षिप्तसारसंग्रह IV. 3. 4; IV. 3. 2
संङ्गीतदर्पण IV. 5. 3
सङ्गीतरत्नाकर IV. 5. 3
सत्तसई III. 6. 7; III. 6. 8
सदुक्तिकर्णामृत III. 6. 7
सद्धर्मपुण्डरीक IV. 7. 9
सनत्कुमारवास्तुशास्त्र IV. 5. 3
समयमातृका III. 6. 10
सम्मुखकल्प IV. 5. 3
सप्तपदार्थी IV. 7. 4
सप्तशती III. 3. 3
सारस्वतीप्रक्रिया IV. 3. 4
सर्वदर्शनसमुच्चय IV. 7. 10
सर्वदर्शनसंग्रह IV. 7. 8, 10
सर्वदर्शनसिद्धान्तसंग्रह IV. 7. 10
सर्वमतसंग्रह III. 7. 10
सांख्यकारिका IV. 7. 5

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सांख्यसार IV. 7. 5
सांख्यसूत्र IV. 7. 5
सामवेद II; II. 4; II. 5;
III. 7
सामविधान ब्राह्मण II. 4
सारिपुत्रप्रकरण III. 5. 1; III. 7. 1
साहित्यदर्पण IV. 10. 9
सिद्धहेमचन्द्र IV. 3. 4
सिद्धान्तकौमुदी IV. 3. 3
सिद्धियोग IV. 8. 5
सिंहासनद्वात्रिंशिका III. 2. 10
सुकृतसङ्कीर्तन III. 4. 4
सुपद्मव्याकरण IV. 3. 4
सुप्रभातस्तोत्र III. 6. 7
सुभद्राधनंजय III. 7. 22
सुभाषितमुक्तावलि III. 6. 7
सुभाषितावलि III. 6. 5, 7
सुवर्णसप्तशती IV. 7. 5
सुरथोत्सव III. 4. 4
सूत्र I; II; IV. 4; IV. 7
सूत्र (जैमिनि) IV. 7. 1
सूत्र (बादरायण) IV. 7. 2
सूत्रालङ्कार III. 5. 1
सूर्यसिद्धान्त IV. 9. 1
सूर्यशतक III. 6. 5
सुवृत्ततिलक IV. 2
सेतुबन्ध III. 3. 3
सेव्यसेवकोपदेश III. 6. 10
सोमपालविलास III. 4. 4
सौन्दरनन्द III. 5. 1, 2, 4
स्पन्दकारिका IV. 7. 7
स्फुटसिद्धान्त IV. 9. 1, 2
स्मृतिकल्पतरु IV. 4. 4
स्मृतिचन्द्रिका IV. 4. 4
स्मृतिरत्नाकर IV. 4. 4
स्रग्धरास्तोत्र III. 6. 7
स्याद्वादमञ्जरी IV. 7. 10
स्वप्नवासवदत्त III. 7. 2, 21
स्वाहासुधाकरचम्पू III. 3. 6
हठयोगप्रदीपिका IV. 7. 6
हयग्रीववध III. 5. 12
हरचरितचिन्तामणि III. 2. 3;
III. 5. 12
हरिवंश III. 1. 1, 3
हरिविजय III. 5. 12
हर्षचरित III. 3. 3, 6
III. 4. 1, 3
हस्त्यायुर्वेद IV. 5. 3
हारावलि IV. 1
हितोपदेश III. 2. 1, 2
हैमव्याकरण IV. 3. 4

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0-In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi